

जिन विजय जीवन कथा

मुनि जिन विजयजी

द्वारा निर्मित

राज कुमारी बाल मन्दिर

गांव रूपाहेली के हितार्थ प्रकाशित

जिन विजय जीवन कथा

अर्थात्

मुनि जिनविजय द्वारा लिखित
अपनी जीवन कहानी



भूमिका स्वरूप—प्रारंभिक भाग



ग्राम रुपाहेली में
मुनि जिन विजयजी
द्वारा निर्मित
महात्मा गांधी स्मृति मन्दिर
अन्तर्गत
राजकुमारी बाल मन्दिर के
हितार्थ प्रकाशित

वि० सं० २०२८-१९७१ ई० सन्

प्रकाशक :

काशीलाल शर्मा

प्रबन्धक :

महात्मा गांधी स्मृति मंदिर

रूपाहेली (भीलवाड़ा)

प्रथमावृत्ति

५०० प्रति

मूल्य

२ रुपये ५० पैसे

मुद्रक :

प्रतापसिंह लूणिया

जॉब प्रिंटिंग प्रेस,

ब्रह्मपुरी, अजमेर ।

१५-८-७१

निवेदन

पूज्य मुनिजी महाराज श्री जिनविजयजी ने अपनी जन्म-भूमि—गांव रूपाहेली में, अपनी स्वर्गीय माता राजकुमारी की पुण्य स्मृति में, एक सुन्दर बाल मन्दिर बनवाया है जिसका वर्णन प्रस्तुत जीवनी के पृष्ठ ४६ पर किया गया है। इस बाल मन्दिर के बनवाने में कोई ३१-३२ हजार रुपये पूज्य मुनिजी ने खर्च किये हैं। यह सुन्दर भवन पूज्य मुनिजी ने रूपाहेली की जनता को समर्पण कर दिया है। प्रस्तुत जीवनी भी पूज्य मुनिजी ने छपवाकर इसी बाल मन्दिर की समर्पित कर दी है।

इसकी जो कुछ आय होगी वह बाल मन्दिर के हितार्थ व्यय की जायगी।

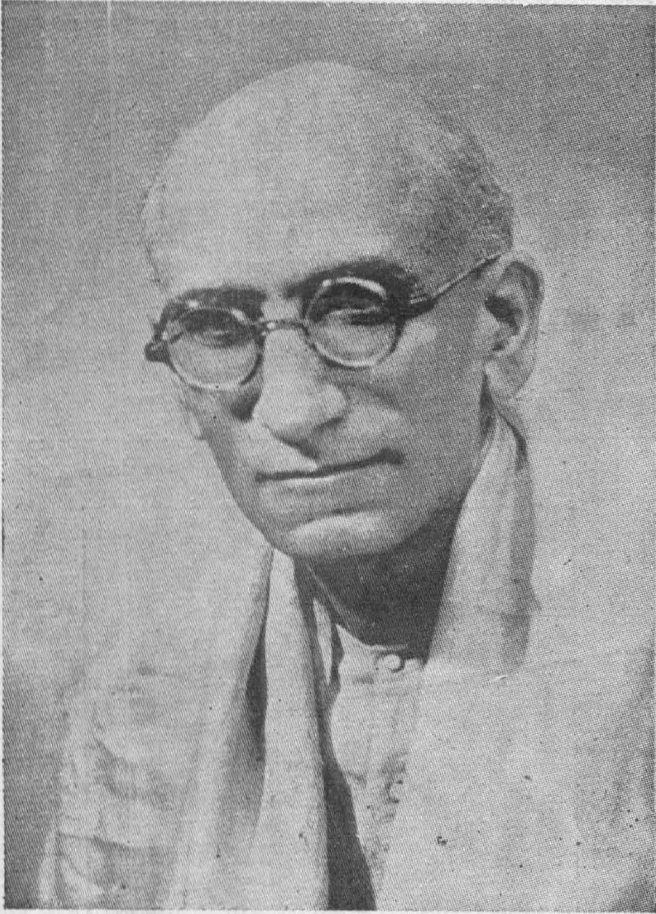
निवेदक

काशीलाल शर्मा

प्रबन्धकर्ता—राजकुमारी बाल मन्दिर

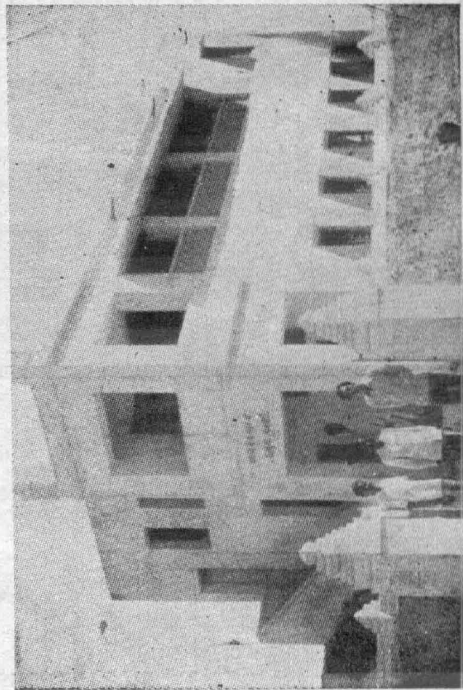
अनुक्रम

१. प्राक्कथन
२. जीवन कथा के संस्मरण लिखने का आद्य प्रसंग १ -
३. जन्म स्थान का परिचय ७ -
४. वंश परिचय ६-१
५. दादा और पिता के जीवन की घटनाएं १७-४
६. आद्य गुरु के सर्व प्रथम दर्शन ४८-७
७. गुरु महाराज के स्वर्ग के बाद ७६-८
८. सुखानन्दजी का प्रवास और भैरवी दीक्षा ८५-१३
९. मंडप्या निवास-जैन यतिवेश धारण १३१-१५।
१०. जैन सम्प्रदाय के स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित होना १५६-१६
११. रूपाहेली के स्वर्गवासी वृद्ध ठाकुर श्री चतुरसिंहजी के कुछ पत्र और आनुषंगिक कुछ उल्लेख १६६-२०।

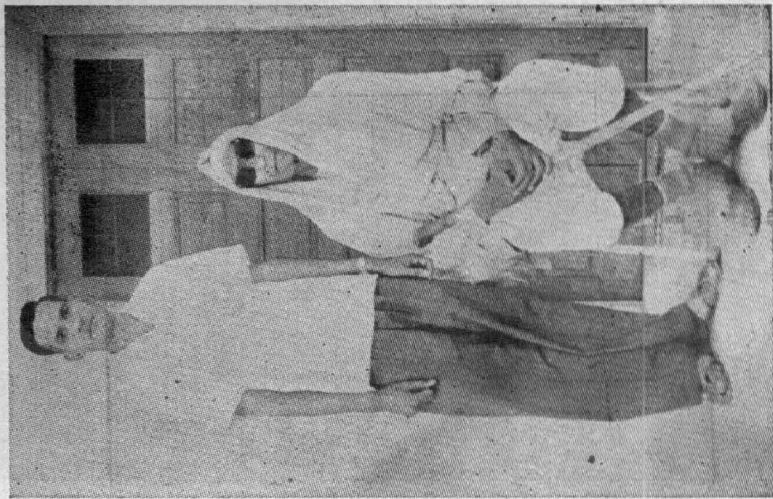


पदमश्री मनीषी
मुनि जिनविजय
(पुरातत्त्वाचार्य)

राजकुमारो बालमंदिर के प्रवेश द्वार के सम्मुख बैठे हुये
मुनिजो तथा प्रबन्धक श्री काशीलाल शर्मा



राजकुमारी बालमन्दिर रूपाहेली



किञ्चित् प्राक् कथन

मेरी अस्त-व्यस्त जीवन कहानी के, प्रस्तुत रूप में, लिखने का विचार कैसे और कब अंकुरित हुआ, इसका कुछ निर्देश इस कथा के आरम्भ में ही कर दिया गया है ।

जब जीवन विषयक इन अतीत संस्मरणों को लेखबद्ध करने का प्रयत्न आरम्भ किया, तब कोई कल्पना नहीं थी कि जीवन की कहानी कितनी लम्बी होगी और इसमें क्या-क्या प्रसंग चित्रित होंगे । मेरे पास वैसी कोई नोंधें या टिप्पणियाँ भी नहीं हैं जिनके आधार पर, मैं कथा का कुछ कलेवर निर्मित कर सकूँ । किसी विषय के लिखने या बोलने का प्रसंग उपस्थित होता है तो, मैं उस विषय में, पहले से कुछ विचारों को मन में संकलित कर लेने का आदी नहीं रहा । लिखना या बोलना चालू करते समय, प्रसंगानुसार जो विचार उपस्थित होते जाते हैं मैं तदनुसार उन्हें लिखता या बोलता रहता हूँ । लिखते समय जो प्रसंग उपस्थित हो जाता है तदनुसार उसके संस्मरणों का चिन्तन होता जाता है और उन संस्मरणों का मन में सिंहावलोकन करते हुए, उन्हें वाक्यबद्ध, पंक्तिबद्ध और क्रमबद्ध करते जाने का मेरा अभ्यास बना हुआ है ।

प्रस्तुत जीवन कथा के प्रसंगों का ज्यों-ज्यों स्मरण होता गया त्यों-त्यों मैं उन प्रसंगों को क्रमबद्ध रूप में लिखता गया । कथा के लिखने के पहले खयाल था कि पूरी जीवन कथा का

संक्षिप्त स्वरूप २००-३०० पृष्ठों में आलेखित हो जायगा, परन्तु ज्यों-ज्यों प्रसंग मन के सन्मुख उपस्थित होते गये त्यों-त्यों उनकी विशालता और विशिष्टता का खयाल होता गया। जिस जीवन के विषय में कोई ममत्व या महत्व का भाव कभी पैदा नहीं हुआ था, उस जीवन ने अनुभव किये हुए विविध प्रकार के संस्मरणों के चिन्तन ने, मन को कुछ मोहान्वित कर दिया और उन अनुभवों को इस प्रकार लेखबद्ध करने को प्रेरित कर दिया। इस दृष्टि से मैं जब सोचने लगा तो मुझे अनुभव होने लगा कि, इस जीवन ने जो विविध प्रकार के अनुभव किये हैं और जिन भिन्न-भिन्न कार्यों के क्षेत्र में विचरणा किया है, उनका स्वरूप तो बहुत विशाल है और वे सब, अब इस जीवन के अन्त समय के निकट पहुँचने पर, लेखबद्ध किये भी जा सकेंगे या नहीं, इसकी कोई कल्पना न होने से, जितने भी जीवन प्रसंगों को मैं प्रारम्भ में लिपिबद्ध कर सका है उन्हीं को, इन पृष्ठों में अंकित कर प्रकाशित कर देना उचित समझा है।

पाठक गण समझ सकेंगे कि कथा का जो अंश उनके हाथ में है वह इस जीवनी का केवल भूमिका रूप ही है। इस अंश में केवल मेरे बाल्यकाल के संस्मरण और सामान्य अनुभवों का उल्लेखन है।

मेरे जीवन प्रवास का वास्तविक स्वरूप सूचित करने वाले, मार्गविचरण का, विविध विवरण तो, इस कथा में वर्णित अन्तिम प्रसंग के बाद ही शुरू होने वाला है।

विक्रम संवत् १९५६ में मैंने जैन धर्म के एक सम्प्रदाय की साधु दीक्षा ग्रहण की। उस समय मेरी उम्र प्रायः १५

वर्ष की थी । दीक्षा ग्रहण के बाद, सम्प्रदाय के नियमानुसार वर्षाकालीन चातुर्मास के सिवाय, शीत काल और ग्रीष्म काल के आठ महिने प्रायः पादभ्रमण करते हुए भिन्न-भिन्न गाँवों और नगरों का प्रवास होता रहा । वि० सं० १९५९ के आश्विन शुक्ला १३ के दिन मैंने यह दीक्षा ग्रहण की । कोई ६ वर्ष तक मैंने इस दीक्षाचर्या का पूर्ण रूप से पालन किया । इन वर्षों में मालवा के धार, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम आदि नगरों का प्रवास किया तथा खान देश, दक्षिण महाराष्ट्र के कई भागों में परिभ्रमण किया ।

बचपन से ही मेरी विद्या पढ़ने की अभिरुचि तीव्र रही । इसी कारण मैंने सुखानन्दजी में पहले भैरवी दीक्षा ग्रहण की, तथा फिर जैन यतिवेश भी धारण किया और फिर उक्त रूप से जैन साधु मार्ग की दीक्षा ली । इस मार्ग के साधु वर्ग में समयानुसार जो विद्याध्ययन की परिपाटी और पद्धति थी, उसका यथेष्ट अनुसरण करते हुए मैंने, यथाशक्य जो कुछ ज्ञान प्राप्त करने जैसा था, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया । लेकिन उन्न और अनुभव के बढ़ने पर मैंने अपनी बुद्धि और रुचि के अनुरूप इस सम्प्रदाय में विशेष ज्ञान प्राप्ति का कोई साधन और संयोग न देखकर, विक्रम संवत् १९६५ के भाद्र-पद में, मैंने इस सम्प्रदाय का वेश छोड़ दिया और किसी अन्य मार्ग की खोज में निकल पड़ा । जब तक मैंने साधुमार्ग का अनुसरण किया तब तक उक्त सम्प्रदाय के कठिन से कठिन आचार व्यवहार का परिपालन किया । आज जो इस मार्ग के साधुओं का जीवन व्यवहार है इसकी अपेक्षा उस

समय का मेरा जीवनयापन बहुत कठिन और तपस्या पूर्ण था ।

मैंने उस जीवन में ऐसी कठिन तपश्चर्या करने का पूर्ण-तया पालन करके अपने को विशिष्ट संयमी व्यक्ति मानने का अहंभाव भी धारण किया । परन्तु मन के विचारों ने करवट बदलते ही एक ही रात में वह सारो तपश्चर्या का श्रीफल उज्जैन की शिप्रा नदी में बहा दिया और मैं एक असहाय, निःसंग, एकाकी, प्राणी की तरह लक्ष्यहीन, विचारमूढ़ और किर्कतव्यभ्रान्त होकर किसी अज्ञात मार्ग की शोध में चल पड़ा ।

चलते-चलते फिर कुछ थक गया तो, संवत् १९६५ के मार्गशीर्ष की शुक्ला ७ मी के दिन, राजस्थान के पाली गाँव की निकट-पहाड़ी पर स्थित जैन मन्दिर के भव्य मण्डप में, मैंने जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के संवेगीमार्गानुयायी एक वृद्ध सरल और संयमी मुनि पन्यास श्री सुन्दर विजयजी गरिण के पास, संवेगीमत की दीक्षा ग्रहण करली । उस दिन से मेरा यह प्रचलित एवं प्रसिद्ध नूतन नाम **जिन विजय** स्थापित हुआ ।

उस दिन के बाद यह प्राणधारी शरीर जिनविजय के नाम से प्रसिद्धि पाता रहा है । पिता का दिया नाम किशनसिंह और माता के मुँह से पुकारा जाने वाला नाम रिणमल सदा के लिये विसर्जित हो गया । भैरवी दीक्षा सूचक किशन भैरव नाम भी स्मृति से विलुप्त हो गया । यतिवेश वाला तथा साधुवेश वाला किशन लाल भी किन्हीं कागजों में शायद दबा पड़ा हो तो अलग बात है, परन्तु व्यवहार से विलुप्त हो

गया । इस छोटे से क्षुद्र जीवन की, एक ही भव में अनेक नाम और अनेक रूप, वेश धारण करने जैसी यह कथा, स्वयं अपने आपको विस्मित करती रहती है । वास्तव में जिनविजय नाम वाली कथा का चित्रण ही इस कहानी का मुख्य लक्ष्यांश है, परन्तु वह तो अभी भावि के गर्भ में प्रसुप्त है । उसका जन्म होगा या नहीं यह विधि के विधान के हाथ की बात है ।

पाठकों को कुछ कल्पना कराने की दृष्टि से इस कहानी के आगे के भाग में जो मुख्य प्रसंग वर्णन योग्य हैं, उनका दिग्दर्शन इस प्रकार है ।

वि० सं० १९६५ में मैंने उक्त प्रकार से संवेगमार्ग की दीक्षा ग्रहण की । १ वर्ष बाद मेरा गुजरात की ओर तीर्थ यात्रा निमित्त प्रवास हुआ । बाद के वर्षों में गुजरात के बड़ौदा, सूरत, पाटण आदि नगरों में ठहरना हुआ । विद्याध्ययन और साहित्यिक प्रवृत्तियों में यथा-योग्य कार्य करने का उत्साह बढ़ता गया । पाटण, सूरत, बड़ौदा के प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ भण्डारों के अवलोकन करने और उनमें छिपे हुये अनेकानेक महत्व के ग्रन्थों का निरीक्षण करने का यथेष्ट अवसर मिला । अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आने का सुयोग भी मिला । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं में लिखित अज्ञात, अप्राप्त, अलभ्य ऐसे अनेक ग्रन्थों का संशोधन, संपादन और प्रकाशन करने के अभीष्ट मनोरथ भी बढ़ने लगे और तदनुकूल कार्य भी होने लगे । इस प्रकार प्रायः सन् १९०९ से लेकर १९१९ तक के १० वर्ष, उक्त संवेगी मार्ग की साधुचर्या का यथा योग्य पालन

करते हुए सन् १९१८ के अन्त में महाराष्ट्र के प्राणस्वरूप मुख्य जागृति केन्द्र पूना नगर में जाना हुआ। वहाँ पर सांस्कृतिक शैक्षणिक एवं राष्ट्रीय जागरण के वातावरण ने तथा लोकमान्य तिलक, सर रामकृष्ण भांडारकर, स्त्रीजाति उद्धारक, तपस्वी महर्षि धोंडो केशव कर्वे आदि प्रसिद्ध पुरुषों के समागम में आने का और उनके साथ विचारों का आदान प्रदान करने का, अकल्पित और अनन्य साधारण लाभ मिला। महात्मा गांधीजी का भी सर्वप्रथम सम्पर्क और समागम पूना रहते हुए ही हुआ।

इससे पूर्व पिछले ४-५ वर्षों में मेरे अपने जीवन के लक्ष्य और उपयोग के बारे में भी अनेक नये-नये विचार और नये-नये संकल्प उठने लगे थे। समाज और देश में चलने वाली विविध प्रकार की राजकीय, सामाजिक और शैक्षणिक क्रान्ति सूचित करने वाली प्रवृत्तियाँ, मेरे मन को भी आन्दोलित करने लगी थी। यद्यपि मैं बाह्य रूप से सम्प्रदायानुसारी मुनिचर्या का ठीक-ठीक पालन करता रहता था, परन्तु आन्तरिक रूप से मेरे मन का तादात्म्य उसके साथ नहीं बना रहता था। साधुमार्गी सम्प्रदाय में रहते हुये मेरा मानसिक विचार क्षेत्र बहुत ही संकुचित था। उस अवस्था तक न मेरा विशेष अध्ययन ही हुआ था, न सम्प्रदायिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के साहित्य का अवलोकन और वाचन आदि करने का ही कोई प्रसंग प्राप्त हो सका था और न अन्य किसी प्रकार के विद्वानों के या विचारकों के समागम में आने का अवसर ही संभव था। अतः वहाँ पर साधुओं के

विकास द्वार रुद्ध स्थानकों में बैठे रहने के कारण, बाहर को दुनिया का कोई खयाल ही उत्पन्न नहीं हो सका था। उस चर्या में कभी किसी प्रकार के अखबार को पढ़ना भी, विकथा के पाठ के जैसा निषिद्ध, माना जाता था। ऐसी स्थिति में मन का कुँठित रहना स्वाभाविक था। परन्तु संवेगमार्ग की इस मुनिचर्या का क्षेत्र बहुत उदार और ज्ञानोपार्जन की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण था। इसलिये ज्यों-ज्यों मेरा अध्ययन बढ़ता गया त्यों-त्यों चिन्तन मनन का क्षेत्र भी विशाल होता गया। जैन अजैन अनेक विद्वानों व विचारकों के सम्पर्क में आने का मार्ग खुला हुआ था। सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ तथा विविध विचारों के अखबारों का पढ़ना तथा देश और समाज की गतिविधियाँ जानने का कर्तव्य सा बना रहता था।

इस प्रकार निरन्तर विकसित होती जाने वाली मनोवृत्ति का, विकास क्षेत्र भी बहुत व्यापक होता गया। परिणाम-स्वरूप, मैं जिस चर्या, जिस सामाजिक वातावरण में रह रहा था, वह मेरे मन को अन्दर ही अन्दर उद्विग्न कर रहा हो ऐसा आभास मुझे होने लगा। ऐसा मनोमन्थन कुछ वर्षों तक चलता रहा। इस बीच अनेक ऐसे विद्वान् मित्रों से भी मिलना होता रहा जो साहित्य, शिक्षा, कला, लेखन, वक्तृत्व आदि गुणों के प्रसिद्ध धनी थे। उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ता गया और मेरे मन में विविध प्रकार के तरंग उछलने लगे। मेरी जीवन कथा का यह समय बहुत ही विचार और मन्थनपूर्ण है। मैं अपने अन्तरंग के आन्दोलन को मूर्तरूप देने की दृष्टि से विविध प्रकार के साहित्यिक, शैक्ष-

गिक, सामाजिक आदि प्रवृत्तियों में भी सक्रिय भाग लेता रहा। इन सब विचारों और कार्यों के परिणाम-स्वरूप, मैंने जीवन के चालू मार्ग को एक नया मोड़ देना निश्चित किया।

महात्मा गांधीजी ने सन् १९२० में जब देश को आजाद करने का बीड़ा उठाया, और उसकी सिद्धि के लिये अंग्रेजी सत्ता की जड़ उखाड़ फेंकने निमित्त, देशव्यापी असहकार आन्दोलन का आह्वान किया तो मैंने भी, उस आन्दोलन के एक सक्रिय सैनिक बनने की इच्छा से, उसके अनुरूप नूतन परिधान धारण करना निश्चित किया, और इतने वर्षों तक अंगीकृत की हुई उस जीवन चर्या और वेश से विमुक्त हुआ।

महात्मा गांधीजी का आदेश और आमन्त्रण पाकर, मैं पूना का अपना कार्यक्षेत्र छोड़कर, गुजरात की इतिहास प्रसिद्ध राजधानी अहमदाबाद में नूतन प्रतिष्ठित राष्ट्रीय विश्वविद्यालय (गुजरात विद्यापीठ) के एक महत्व के ज्ञानमन्दिर का मुख्य उपासक बना।

सन् १९२० की अक्टूबर की तारीख १६ को महात्माजी ने इस महान् विद्यापीठ की स्थापना की और मैं उसी दिन इस विद्यापीठ का सर्वप्रथम सेवक या सैनिक बना।

आठ वर्ष तक मैं विद्यापीठ का एक विशिष्ट सदस्य बना रहा और मेरे विभाग का उत्तम रीति से संचालन करता रहा। इस विभाग का नाम 'गुजरात पुरातत्व मन्दिर' था और मैं इसका मुख्य आचार्य था। इसमें मुझे सर्व श्री काका कालेलकर, डॉ. पण्डित सुखलालजी सिंघवी, पण्डित श्री बेचर-

दासजी दोशी, प्राध्यापक श्री रसिकलाल छोटालाल परीख, तथा दिवंगत, सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान श्री धर्मानन्द कौसाम्बी, मौलाना अबुजफर नदवी आदि जैसे गण्य मान्य विद्वानों का मुझे उत्कृष्ट सहयोग मिला था । इस मन्दिर द्वारा अनेक ग्रंथों का प्रकाशन कार्य किया गया तथा अनेक प्रतिभावान विद्यार्थियों को उच्चकोटि का अध्ययन आदि कराया गया ।

इसी विभाग के विकास की दृष्टि से, महात्माजी की सम्मति और शुभेच्छा का सन्देश लेकर सन् १९२८ के मई मास में मैं योरोप की यात्रा को निकल पड़ा । योरोप में मेरा मुख्य लक्ष्य स्थान जर्मनी था सो १९२८ के अगस्त में मैं जर्मनी पहुँच गया ।

प्रायः एक वर्ष तक जर्मनी की तत्कालीन राजधानी बर्लिन में निवास किया । वहाँ पर 'हिन्दुस्तान हाउस' की स्थापना की । उसकी विशिष्ट योजना लेकर १९२९ के दिसम्बर में, महात्माजी से मिलने अहमदाबाद आया । महात्माजी ने देश को पूर्ण स्वतन्त्रता दिलाने का कार्यक्रम लाहौर की कांग्रेस में निश्चित किया । उसके अनुसार मुझे भी तत्काल वापिस जर्मनी जाने का संकल्प छोड़ना पड़ा । जब महात्माजी ने जगविख्यात नमक सत्याग्रह का विचित्र कार्यक्रम शुरू किया और उसके अनुसार सन् १९३० के मार्च में उन्होंने अहमदाबाद वाले अपने सत्याग्रह आश्रम से अपने आश्रम निवासी सभी प्रमुख अन्तेवासियों को साथ लेकर दांडी गांव के विख्यात नमक केन्द्र को लूटने का उद्घोष करते हुये पद

यात्रा करनी शुरू की। जो दांडीकूच के नाम से सारे विश्व में प्रसिद्ध हुई।

मैं भी मई मास में, महात्माजी ही का अनुसरण करता हुआ, गुजरात प्रांतीय कांग्रेस द्वारा समायोजित एवं नमक सत्याग्रह के लिये सज्जित ७०-७५ चुने हुये सैनिकों का नायक बन कर अहमदाबाद से धरासणा के नमक केन्द्र को लूटने चला। परन्तु अंग्रेजी सरकार ने अहमदाबाद के स्टेशन पर ही अपने साथियों के साथ गिरफ्तार कर ६ महिनों की कड़ी सजा भुगतने का दण्ड देकर क्रमानुसार पहले बम्बई और फिर नासिक की जेल में मुझे भेज दिया। सजा भुगतने पर मैं और मेरे मित्र स्व० श्री कन्हैयालाल मुन्शी एक साथ बम्बई आये। बाद में मैं अपने अहमदाबाद वाले केन्द्र पर पहुँचा।

उसके बाद सन् १९३२ के आरम्भ में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की खास इच्छा से मैं उनके शिक्षणधाम शान्तिनिकेतन चला गया। वहाँ पर जैन संस्कृति और साहित्य के अध्ययन, अध्यापन के निमित्त “जैन चैयर” (जैन शिक्षा पीठ) की स्थापना की। साहित्य के प्रकाशन की दृष्टि से “सिंधी जैन ग्रन्थमाला” नामक विशिष्ट कोटि की ग्रन्थावलि का प्रकाशन कार्य चालू किया। यह ग्रन्थावलि मेरे तत्वावधान में आज पर्यन्त चालू है। भारतीय प्राचीन साहित्य को प्रकाश में लाने वाली यह एक सुप्रतिष्ठित ग्रन्थावलि मानी गई है।

शान्ति-निकेतन से ४-५ वर्ष बाद मैंने अपना कार्यकेन्द्र अहमदाबाद और बम्बई बनाया।

बम्बई रहते समय स्व० श्री मुन्शीजी के साग्रह अनुरोध के कारण सन् १९३९ में भारतीय विद्याभवन की योजना बनाई और बाद में उसके कार्य के संचालन के लिये ऑनरेरि डायरेक्टर का पदभार भी स्वीकार किया। भारतीय विद्याभवन का संचालन करते हुये अनेक प्रकार की साहित्यिक प्रकाशन की प्रवृत्तियाँ शुरू की तथा अनेक विद्यार्थी और विद्यार्थिनीयों को यूनिवर्सिटी की उच्चतम परीक्षा अर्थात् Ph. D. की डिग्री के लिये अध्ययन एवं संशोधन निमित्त विशिष्ट मार्गदर्शन करता रहा, जिसके परिणाम-स्वरूप अनेक प्रतिभावान विद्वान् तैयार हो गये। इस प्रकार कोई १५ वर्ष पर्यन्त भारतीय विद्याभवन की प्रवृत्तियाँ चलाता रहा।

इसी बीच सन् १९५० में चन्देरिया में “सर्वोदय साधना आश्रम” की स्थापना की और नूतन संगठित राजस्थान राज्य सरकार के विशेष आग्रह और आह्वान के कारण, जयपुर में, भारतीय विद्याभवन के अनुरूप, “राजस्थान पुरातत्व मन्दिर अर्थात् राजस्थान ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान) की स्थापना की। सन् १९५० के मई मास में राजस्थान सरकार के तत्कालीन विद्याप्रेमी और विद्वत्ता के पूजक मुख्यमन्त्री श्री हीरालालजी शास्त्री के सादर सानुरोध के कारण मैंने इस नूतन प्रतिष्ठान का संचालन कार्य संभाला। सरकार ने मुझे इसका सम्मान्य संचालक (ऑनरेरि डायरेक्टर) बनाया। मेरी प्रेरणा से सरकार ने इस प्रतिष्ठान के लिये, विशिष्ट भवन जोधपुर में बनाना तय किया और उसका शिलान्यास, स्व० राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसादजी के

कर कमलों द्वारा कराया गया। प्रायः १७ वर्ष तक मैं इस प्रतिष्ठान का निष्ठा पूर्वक संचालन करता रहा। भारत में यह एक अपने प्रकार का प्रतिष्ठान माना गया। इस प्रतिष्ठान में भारतीय प्राचीन साहित्य के हजारों अपूर्व ग्रन्थों का संग्रह किया गया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसी तरह इस प्रतिष्ठान द्वारा अनेक प्राचीन ग्रन्थों का उत्तमतया प्रकाशन कार्य भी किया गया है। मेरे संचालन काल में कोई ८० जितने ग्रन्थ प्रकाश में आये। सन् १९६७ में मैं इस प्रतिष्ठान के कार्यभार से मुक्त हुआ। मुझे यह सूचित करते हुये खेद होता है कि वर्तमान राजस्थान सरकार की अश्लाघनीय उपेक्षाबुद्धि के कारण, आज यह प्रतिष्ठान विनिष्टदशा का दुर्भागी बन रहा है। मुझे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इस प्रतिष्ठान की जीवन-ज्योति के विलय होने की आशंका से मानसिक सन्ताप का अनुभव हो रहा है। दैवेच्छा बलीयसी का स्मरण कर मन को शान्त करना ही अपने बस की बात है।

राष्ट्रीय महातीर्थ चित्तौडगढ़ के समीप चन्देरिया गाँव के समीप जो सर्वोदय आश्रम मैंने स्थापित किया वह मेरी श्रम विषयक अभिरुचि का प्रतीक है। मेरे जीवन निर्माण में जिस तरह ज्ञान विषयक अभिरुचि सतत प्रवहमान रही है उसी तरह श्रम विषयक अभिरुचि भी सतत प्रवहमान रही है। कभी कभी तो ज्ञानाभिरुचि की अपेक्षा श्रमाभिरुचि का प्राबल्य अधिक रहा है। अतिप्रिय अध्ययन, संशोधन और लेखन कार्य करते समय मुझे उपरति हो जाती है, परन्तु श्रम के अर्थात् शारीरिक परिश्रम करते हुये मुझे कभी उपरति नहीं हुई।

शारीरिक परिश्रम के मोह के वश मैंने महत्व के ज्ञानात्मक कार्यों की अनेक बार उपेक्षा की और जिसके कारण मुझे अनेक आर्थिक और सामाजिक लाभों से वंचित रहना पड़ा है, परन्तु मेरा मन सदैव श्रमप्रिय बना रहा है। श्रमजन्य कार्यों में मुझे कभी अरुचि उत्पन्न नहीं हुई। यही कारण है कि मैं जितना आन्तरिक आनन्द चन्देरिया के ग्रामीण आश्रम में रहता हुआ प्राप्त करता रहा उतना आनन्द पूना, बम्बई, अहमदाबाद, शान्ति-निकेतन तथा जयपुर जोधपुर वाले ज्ञानात्मक केन्द्रों में प्राप्त नहीं कर पाया।

यद्यपि मुझे जो कुछ प्रसिद्धि या कार्यसिद्धि प्राप्त हुई वह मेरी ज्ञानाभिरुचि का ही फल है श्रमाभिरुचि से मुझे केवल आन्तरिक संतोष मिलता रहा है। बाकी बाह्य दृष्टी से उसका कोई लाभ या विशेष परिणाम प्राप्त नहीं है।

चन्देरिया में रहते हुये मुझे दो अन्य स्थानों के निर्माण का अवसर मिला जो दोनों चित्तौड़ में निर्मित है। इनमें एक स्थान जिसका नाम मैंने भामाशाह भारतीभवन रखा है। यह सुप्रसिद्ध दानी और वीर भामाशाह के स्मारकरूप है और दूसरा परन्तु विशेष महत्व वाला श्री हरिभद्र सूरि स्मृति मन्दिर है। यह मन्दिर मैंने उन महान् जैनाचार्य के स्मारकरूप में बनाया है जिनके ज्ञान और जीवन कार्य के प्रति मेरी अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति है। मैं उनको एक महान् शास्त्रकार, धर्मोपदेशक, योगविद् और परम् कोटि के आध्यात्मिक तत्त्वदृष्टा मानता हूँ। मेरे अन्धकारपूर्ण और लक्ष्यहीन जीवन मार्ग में, मैंने उन्हें दीपस्तम्भ सा माना है। चित्तौड़ दुर्ग श्री हरिभद्रसूरि का

कार्य क्षेत्र रहा है। अतः मैंने उनके पुण्य स्मारक निमित्त उक्त स्मृति मन्दिर का निर्माण कराया है। मेरी कल्पना इस स्मृति मन्दिर के बारे में बहुत बड़ी थी परन्तु समाज के अन्य जनों का वैसा कोई सहयोग मैं प्राप्त नहीं कर सका अतः किसी तरह इस स्थान का यथा-तथा निर्माण कार्य पूर्ण होकर इसमें विराजमान करने के लिये जो सुन्दर मूर्ति मैंने तैयार करवाई है उसे अब प्रतिष्ठित कर देना ही मेरे जीवन का अन्तिम कार्य है।

कुछ श्रद्धालु और ज्ञानप्रिय जैन बन्धु इस कार्य में रस ले रहे हैं और वे यथा शक्य इस पावन स्मारक को सुप्रतिष्ठित करने का प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। आशा है शीघ्र ही मैं इसको सम्पन्न हुआ देख सकूंगा।

मेरे जीवन का यह ८४ वां वर्ष चल रहा है, प्रस्तुत कहानी तो जीवन के प्रारम्भ के बाल्यकाल के केवल १५ वर्षों के संस्मरण कह रही है जीवन का विशेष कार्यकाल तो उसके बाद ही प्रारम्भ होता है। जिसका किंचित् मात्र दिग्दर्शन मैंने ऊपर अंकित किया है। इस कहानी के लिखने का प्रारंभ तीन वर्ष पूर्व हुआ था, परन्तु यह व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ नहीं सका। ज्यों त्यों करके इस भूमिका रूप भाग का आलेखन पूरा हुआ तो कुछ सज्जनों का सुझाव रहा कि जितना अंश लिखा जा चुका है उसको तो छपा कर प्रकट कर देना चाहिये। इस सुझावानुसार यह अंश प्रेस में दे दिया गया। इसके लिये पण्डित श्री रमेशचन्द्र जी ओझा शाहपुरा निवासी ने अजमेर जाकर प्रेस वगैरह की व्यवस्था करने का प्रयास किया। मेरी आँखें अब ज्योतिक्षीण हो गई

है इसलिये अब मैं स्वयं लिखने पढ़ने में असमर्थ सा हूँ । मैं जो यहाँ चन्देरिया के ग्रामीण आश्रम में रहता हूँ । वहाँ मेरे पास केवल श्रमजीवी व्यक्तियों के सिवाय अन्य किसी शिक्षित व्यक्ति का कोई सहयोग प्राप्त नहीं है जो मेरे ऐसे लेखन, वाचन आदि कार्य में विशिष्ट उपयोगी हो सके । मेरे पास सेवा निमित्त रहने वाले एक विद्यार्थी जिसने केवल हिन्दी की ८ वीं कक्षा तक का ही अध्ययन किया है इसकी प्रतिलिपि आदि करने में यथेष्ट प्रयत्न किया । भाषा की शुद्धि अशुद्धि का मैं खयाल नहीं कर सका । किसी तरह यह कहानी छप जाय ऐसा मेरे परिजनों का खयाल होने से यह प्रयत्न हुआ है । इसके छपने में अजमेर निवासी प्रसिद्ध साहित्य प्रिय और समाज सेवी श्री जीतमल जी लूणियाँ ने प्रेस आदि का सुप्रबन्ध कर दिया जिससे यह कहानी इस रूप में अपना जन्म सूचित कर रही है । इसका जीवन विकास होगा या नहीं यह कहानी कहने वाले की कल्पना से बाहर है । आज तो यह कहानी यहीं समाप्त हो रही है ऐसा सोचकर मैं इन पंक्तियों के आगे पूर्ण विराम का चिन्ह रख रहा हूँ ।

जैसा कि प्रस्तुत कथा के पृष्ठ ६३ पर से सूचित होता है अर्थात् वि० सं० १९५७ के जेष्ठ शुक्ला एकादाशी के दिन मैं सर्व प्रथम अपनी जननी और जन्म भूमि से विदा होकर दुनियां को देखने तथा कुछ सीखने के लिये चल पड़ा । उसी दिन से मेरा जीवन चक्र गतिमान हुआ और इस कहानी के संस्मरणात्मक चित्र मानस पटल पर अंकित होने लगे ।

उस निर्जला एकादशी को व्यतीत हुये आज ७१ वर्ष पूरे हो रहे हैं। यह भी कोई विधि का गुप्त संकेत होगा कि उसी निर्जला एकादशी के दिन मैं अपने जीवन प्रवास की दीर्घ कथा का भूमिका स्वरूप यह प्रारंभिक अंश उसी तिथि को आज पूर्ण कर रहा हूँ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

निर्जला एकादशी
संवत् २०२८ विक्रमी
तारीख ४-६-७१

मुनि जिनविजय
निवास-सर्गेदय आश्रम
चन्देरिया चित्तौड़गढ़

जिनविजय जीवन-कथा

(१)

जीवन कथा के संस्मरण लिखने का आद्य प्रसंग

सन् १९२८ के जून-जुलाई-अगस्त महीनों में, मैं जर्मनी के विख्यात शहर हाम्बुर्ग की युनिवर्सिटी में कुछ साहित्यिक कार्य करने गया था, उस युनिवर्सिटी में भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्ययन अध्यापन के लिये एक शोध विभाग था। उसके अध्यक्ष डा० बालधर शुक्लीग पी० एच० डी० थे, जो जर्मनी के तत्कालीन विद्वानों में जैन साहित्य के सबसे बड़े विद्वान् माने जाते थे। मेरा उनसे बहुत वर्षों पहले ही से विशिष्ट सम्बन्ध बना हुआ था। सन् १९२६ में वे भारत की यात्रा करने आये तब मैं अहमदाबाद के महात्मा गाँधीजी द्वारा विशेष रूप से संस्थापित गुजरात विद्यापीठ के भारतीय संस्कृति विषयक प्रधान केन्द्र 'गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर' का अध्यक्ष था। डा० शुक्लीग उस शोध संस्थान द्वारा होने वाले अध्ययन, अध्यापन, संशोधन, प्रकाशन आदि कार्यों से सुपरिचित थे। अतः वे प्रत्यक्ष रूप में उस संस्थान का परिचय और कार्य का निरीक्षण करने की इच्छा से अहमदाबाद आये और मेरे ही अतिथि विशेष के रूप में तीन-चार दिन वहाँ ठहरे। उस समय उन्होंने मुझे जर्मनी आने और हाम्बुर्ग में अपने यहाँ ठहरने आदि का भी सौहार्द्र भरा आमन्त्रण दिया। यद्यपि उस समय मुझे स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि मैं भी किसी समय, इस जन्म में जर्मनी जा सकूँगा, परन्तु दैवशात् सन् १९२८ में मेरे सन्मुख ऐसा अनन्य प्रसंग उपस्थित हो गया जिससे मैं, महात्माजी की सम्मति से गुजरात विद्यापीठ

से दो वर्ष की छुट्टी लेकर जर्मनी आदि यूरोप के विद्या केन्द्रों का परिचय और सम्पर्क प्राप्त करने के लिये प्रस्थान कर गया ।

फ्रांस, इंग्लेण्ड, बेल्जियम, हॉलैण्ड होता हुआ मैं जर्मनी के विश्व विख्यात बन्दरगाह स्वरूप हाम्बुर्ग पहुँच गया । वहाँ पर डा० शुब्रींग मेरी प्रतीक्षा कर ही रहे थे । उन्होंने बहुत ही सद्भाव और सौहार्द्र पूर्वक मेरे ठहरने आदि का सुप्रबन्ध कर दिया ।

हाम्बुर्ग युनिवर्सिटी में, उस समय डा० शुब्रींग के भारतीय संस्कृति विषयक शोध विभाग में, कई जर्मन और भारतीय स्कॉलर अध्ययन एवं संशोधन का कार्य कर रहे थे । डा० शुब्रींग ने मुझे भी उस कार्य में यथा योग्य भाग लेने और सहयोग देने का अवसर दिया ।

एक दिन डा. शुब्रींग ने अपने अध्येता स्कॉलरों के साथ मुझे चाय पान के लिये निमंत्रित किया । चाय पान के समय अनेक प्रकार के विचारों का आदान प्रदान होता रहा । डा. शुब्रींग ने प्रसंग वश मेरे पूर्व जीवन के विषय में कुछ संक्षिप्त जानकारी चाही ।

इससे पहले इस विषय में कभी किसी विद्वान् ने मुझे वैसी कोई बात पूछी नहीं थी और मैंने भी अपने जीवन के विषय में कभी कोई वैसा विचार नहीं किया था । डा. शुब्रींग के साथ वैसा प्रसंग उपस्थित होने पर, मैंने जैन धर्म के उन अनेक ऐतिहासिक विद्वानों के जीवन संस्मरण विषयक संक्षिप्त परिचय देने वाले प्राचीन उल्लेखों का जिक्र किया । ये उल्लेख उन ग्रन्थकारों के अपने ग्रन्थों में परिचयात्मक प्रशस्ति स्वरूप हैं । इस विषय में डा. शुब्रींग से अनेक बातें होती रहीं । मैंने कुछ संक्षिप्त रूप में अपने जीवन की पूर्वविस्था के प्रसंग उन्हें सुनाये । उस समय डा. शुब्रींग की पत्नी और स्नेहालु पुत्री भी उपस्थित थीं । मेरे पूर्व जीवन के उन संस्मरणों के कुछ नोट भी डा. शुब्रींग करते गये । सबसे अधिक रस उनको उस प्रसंग में आया जिसमें मैंने अपने दादा और पिता के, सन् १८५७ के सैनिक बलवे के समय भाग लेने आदि

का वर्णन सुनाया । डा. शुब्रींग ने मुझसे कहा कि आप अपने पूर्वजों के इन संस्मरणों को लिपिबद्ध करें और हो सके तो संक्षेप में संस्कृत में सरल पद्यात्मक प्रशस्ति के रूप में ग्रथित कर दें ।

डा. शुब्रींग का यह सुझाव मुझे हृदयंगम लगा और उस दिन रात को अपने कमरे में बैठ कर कुछ प्रशस्ति स्वरूप संस्कृत पद्यों का गुंफन करने लगा । प्रारम्भ में जीवन विषयक मुख्य प्रसंगों का सूचन करने वाले सूत्रात्मक श्लोक लिखने लगा । कांट छांट करते हुए उस रात में मैंने ११ अनुष्टुप श्लोक बनाये, जिनमें अपनी जन्मभूमि, अपने वंश, माता-पिता और आद्य गुरु जैन यति का नामोल्लेख सूचित किया ।

दूसरे दिन जब मैं फिर युनिवर्सिटी में डा. शुब्रींग के पास गया तब मैंने उनको वे श्लोक दिखाये, जिन्हें पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि आप इन श्लोकों को अपने सुवाच्य अक्षरों में अच्छे कागज पर लिख कर मुझे भी दे दें । जिससे मैं इनको काच में मढ़ाकर अपने पास रखना चाहता हूँ । मैंने वैसा किया और उन्होंने काच में अच्छी तरह मढ़वा कर मुझे दिखाया । काच में मढ़वाने के पहले मेरे हस्ताक्षर भी उस पर करवाये ।

डा. शुब्रींग ने कहा कि हमारे जर्मनी में ऐसी एक शिष्ट प्रणाली है कि बड़े बड़े विद्वान्, कवि, लेखक वगैरह अपने जीवन विषय के विशिष्ट संस्मरणों को इस प्रकार संक्षेप में लिपिबद्ध करके अपने सहृदयी बन्धुजनों को भेंट स्वरूप देते रहते हैं । उन्होंने अपने पास रखे हुए ऐसे कई पत्रादि भी मुझे बताये ।

उस प्रसंग से मुझे कुछ अपने पूर्व जीवन के संस्मरणों को लिपिबद्ध करने की कल्पना उद्भूत हुई । परन्तु जीवन के ८० वर्ष समाप्त होने तक उसने कोई मूर्त स्वरूप नहीं धारण किया ।

पिछले दो वर्षों में कुछ तो सुपरिचित बन्धुजनों के सुझाव के कारण और कुछ जीवन के अतीत का सिंहावलोकन करते रहने के कारण, कभी कभी] ऐसी इच्छा होती रही है कि इतने लम्बे जीवन के प्रवास में जिन

जिन प्रसंगों और परिस्थितियों से गुजरना पड़ा है किस इच्छा से, कब, किस कार्य में प्रवृत्त होना पड़ा और किस मार्ग पर, कैसे चलना पड़ा इत्यादि विचार अपने ही मन को उद्वेलित करते रहते हैं। मन की इसी सन्तुष्टि के निमित्त आगे के इन पृष्ठों में कुछ संस्मरण लिपिबद्ध किये जा रहे हैं।

ऊपर मैंने जिन ११ श्लोकों का उल्लेख किया है; वे बाद में, सिंधी, जैन ग्रन्थमाला की प्रत्येक पुस्तक के आरम्भ में ग्रन्थमाला सम्पादक प्रशस्ति के शिरोलेख नीचे छपे हुए हैं। उस प्रशस्ति में साहित्यिक जीवन के सूचक और भी अनेक उल्लेख सूचित हुए हैं, परन्तु उन सबको यहां उल्लिखित करने का प्रसंग नहीं है किन्तु प्रारम्भ के वे ११ श्लोक जीवन के मूलभूत, आरम्भिक घटक का सूचन करते हैं, इसलिये उनको इस जीवन गाथा के आरम्भ में उद्धृत करना प्रसंग प्राप्त है।

स्वस्ति श्री मेदपाटाख्यो देशो भारत विश्रुतः ।
 रूपाहेलीति सन्नाम्ना ग्रामस्तत्र सुविश्रुतः ॥१॥
 सदाचार विचाराभ्यां प्राचीन नृपतेःसमः ।
 श्रीमच्चतुरसिहोऽत्र राठोड़ान्वय - भूमिपः ॥२॥
 तत्र श्री वृद्धिसिहोऽभूद् राजपुत्रः प्रसिद्धिमान् ।
 क्षात्रधर्म - धनो यश्च परमार - कुलाग्रणी ॥३॥
 मुञ्ज-भोजमुखा भूपा जाता यस्मिन् महाकुले ।
 किं वर्ण्यते कुलीनत्व तत्कुलजातजन्मनः ॥४॥
 पत्नी राजकुमारीति तस्याभूद् गुणसहिता ।
 चातुर्य-रूप-लावण्य - सुवाकसौजन्य - भूषिता ॥५॥
 क्षत्रियाणीं प्रभापूर्णां शौर्योद्दीप्तमुखाकृतिम् ।
 यां दृष्टैव जनो मेने राजन्यकुलजाह्यसौ ॥६॥
 पुत्रः किशनसिहाख्यो जातस्तयो रतिप्रियः ।
 रणमल्ल इति चान्यद् यन्नाम जननीकृतम् ॥७॥

श्री देवी हूँसनामाऽत्र राजपूज्यो यतीश्वरः ।
ज्योतिर्भेषज्यविद्यानां पारगामी जनप्रियः ॥८॥
अष्टोत्तरशताब्दानामायुर्यस्य महामतेः ।
स चासीद् वृद्धिसिंहस्य प्रीतिश्रद्धास्पदं परम् ॥९॥
तेनाथाप्रतिमप्रेम्णा स तत्सूनुः स्वसन्निधौ ।
रक्षितः, शिक्षितः सम्यक्, कृतो जैनमतानुगः ॥१०॥
दोर्भाग्यात् तच्छिशोर्बाल्ये गुरु-तातौ दिवंगतौ ।
विमूढेन ततस्तेन त्यक्तं सर्वं गृहादिकम् ॥११॥

ऊपर बिये गये संस्कृत श्लोकों का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार है ।

१. स्वस्ति, भारत में मेदपाट अर्थात् मेवाड़ नाम का देश सुविरव्यात है उसमें रूपाहेली नाम का छोटा सा ग्राम अर्थात् बस्ती है ।

२. इस रूपाहेली नामक बस्ती के राठीड़ वंशीय श्री चतुरसिंह नामक स्वामी थे । जो अपने सदाचार और सुविचार के कारण प्राचीन नृपतियों के समान समझे जाते थे ।

३. उस रूपाहेली में वृद्धिसिंह नामक एक कुलवान् सुप्रसिद्ध राजपूत रहते थे जो परमार वंशीय कुल के अग्रणी एवं क्षात्र धर्म के धनी थे ।

४. जिस परमार नामक महान् राजकुल में मुन्ज और भोज जैसे महान् राजा हो गये हैं । उन के कुल में जन्म लेने वाले पुरुष के (अर्थात् श्री वृद्धिसिंह के) कुलीनत्व का क्या दर्शन किया जाय ।

५. उन वृद्धिसिंह के राजकुमारी नामक पत्नी थी । जो चातुर्य, रूप, लावण्य, सुवाणी और सौजन्य आदि गुणों से अलंकृत थी ।

६. जो क्षत्रियाणी की प्रभा से पूर्ण थी और जिसकी मुखाकृति शौर्य से प्रदीप्त थी । जिसको देखते ही लोग समझते थे कि किसी राजन्यकुल में उत्पन्न होने वाली यह स्त्री है ।

७. इनका (अर्थात् वृद्धिसिंह व राज कुमारी का) किशनसिंह नाम का अतिप्रिय पुत्र था, जिस का माता ने (प्यार का) रणमल्ल ऐसा नाम रक्खा था।

८. इस रूपाहेली गाँव में देवी हँस नामक एक राज पूज्य यति रहते थे जो ज्योतिष-शास्त्र और वैद्यकीय विद्या के पारगामी होकर अत्यन्त जनप्रिय थे।

९. वे यतिश्वर बहुत से देशों में भ्रमण करते हुये भारवाड़ से रूपाहेली में आकर रहे थे, ये यतिश्वर अपने गुणों के कारण उक्त परमार वंशीय वृद्धिसिंह के बहुत ही प्रिति पात्र एवं श्रद्धा भाजन बन गये थे।

१०. उन देवी हँस यतिश्वर ने अत्यन्त प्रेम के साथ वृद्धिसिंह के पुत्र किशनसिंह को अपने पास रक्खा और सुशिक्षा द्वारा जैन धर्म का अनुरागी बनाया।

११. दुर्भाग्य से उस बालक किशनसिंह की बाल्यावस्था में ही गुरु (देवी हँसजी) और पिता (वृद्धिसिंह) का स्वर्गवास हो जाने से वह बालक विमूढ़ होकर (अपने देश घर और कुटुम्ब से बिछुड़ कर) यदृच्छा से निकल पड़ा।

—

(२)

जन्मस्थान का परिचय

मेरा जन्मस्थान बड़ी रूपाहेली है, जो भूतपूर्व मेवाड़ राज्य की जागीरी का एक प्रसिद्ध ठिकाना है।

यह गाँव अजमेर, चितौड़ रेल्वे लाइन पर वर्तमान राजस्थान राज्य के भीलवाड़ा जिले की हुरड़ा तहसील का एक अच्छा कस्बा है। इस ठिकाने के भूतपूर्व स्वामी स्वर्गीय विद्वान् ठाकुर साहब श्री चतुरसिंहजी ने अपने पूर्वजों के इतिहास विषयक एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम “वतुर कुल चरित्र इतिहास” है। इस पुस्तक में रूपाहेली गाँव का कुछ प्राचीन वृत्तान्त दिया गया है। जो इस प्रकार है :—

“अजमेर नरेश महाराजा पृथ्वीराज की राज्य सभा में बाघराव नामक एक सामन्त था जिससे गुर्जरादि कृषिकार, जाति के मनुष्य सवाई भोज प्रभृति २४ बगड़ावतों की उत्पत्ति मानते हैं जो बड़े उदार गिने जाते थे। और कृषिकारों में उनकी अद्यावधि प्रतिष्ठा होती है।

उक्त बगड़ावतों का गुरु एक रूपनाथ योगी था जो बड़ा महात्मा गिना जाता था। उसका स्थान अर्थात् रूपनाथ की हवेली इसी ठौर पर थी। अतः ग्राम का नाम भी रूपाहवेली या रूपाहेली प्रसिद्ध हो गया। रूपनाथ तपस्वी एवं वैद्यक शास्त्र में भी प्रवीण था, जिसका प्रमाण उसकी बनाई हुई पुस्तक ग्राम आंगूचा से उपलब्ध होने से मिलता है। अन्त में उक्त योगी ने जीवित समाधि ली थी। जहाँ पर अद्यावधि उसकी पूजा होती है। सारांश, ग्राम रूपाहेली सम्वत् १२८० के आस पास बसाया गया है। जिसको लगभग साढे छः सौ वर्ष हुए हैं।”

इस रूपाहेली ठिकाने के मालिक मेड़तिया राठौड़ वंश के हैं।

इतिहास प्रसिद्ध राव जयमल्ल जी राठीड़ को मेवाड़ के महाराणा ने बदनोर का प्रसिद्ध प्रान्त दिया था। उनके मुख्य वंशज बदनोर के ठिकाने वाले हैं।

जब दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने भारत के हिन्दुओं पर जज़िया नामक कर लगाया तब मेवाड़ राज्य से करके रूप में पुर, मांडल, और बदनोर के प्रान्त ले लिये। उस समय बदनोर के साथ रूपाहेली भी थी।

संवत् १७४७ में यह प्रदेश पुनः मेवाड़ के महाराणा के अधिकार में आया।

संवत् १७६८ में बदनोर के ठाकुर श्यामलदास जी के अष्टम पुत्र ठाकुर साहिबसिंह जी को उनकी विशिष्ट सेवाओं के कारण महाराणा द्वारा कई गाँवों के साथ रूपाहेली भी प्रदान किया गया। उन्ही ठाकुर साहिबसिंह जी के वंशजों का अधिकार इस ठिकाने पर आज तक बना हुआ है।

उक्त रूपाहेली गाँव में पंचांग की गणनानुसार, विक्रम् संवत् १९४४ के माघ शुक्ल १४ के दिन (जनवरी २७ सन् १८८८ ईस्वी) लगभग सूर्योदय के तत्काल बाद मेरा जन्म हुआ।

मेरे पिता परमार वंशीय क्षत्रिय कुल के थे। उनका नाम बिरधी सिंहजी (बड़दसिंह) था। मेरी माता का नाम राजकुँवर (राजकुमारी) था। मेरी माता सिरोही राज्य के एक देवड़ा वंशीय चौहान जागीरदार की बेटी थी।

—

(३)

वंश-परिचय

राजपूत जाति के भिन्न २ कुलों की वंशावली रखने वाले जो बड़वा भाट होते हैं, उनमें एक परिवार के पास मेरे पूर्वजों की वंशावली मुझे देखने को मिली। ये बड़वा ब्यावर के पास लाछुड़ा गाँव में रहते हैं।

कोई दो तीन वर्ष पहले रूपाहेली द्वारा इनको मेरा कुछ पता मिला। घूमते-फिरते ये मेरे पास चन्देरिया आ पहुँचे।

ऐतिहासिक दृष्टि से मुझे इनका बहिड़ा (वह पुरानी पुस्तक जिसमें अनेक पीढ़ियों की नामावली और कार्यावली लिखी रहती है) देखने का प्रसंग मिला। इनके बहिड़े में कुछ पुराना हाल लिखा हुआ था। जो कई पीढ़ियों के भिन्न भिन्न हाथों से लिखा हुआ पाया गया। उसका कुछ भाग तो नष्ट भी हो गया था। एक तरफ का कुछ हिस्सा चूहों ने भी काट रखा था। बहिड़ा खासा बड़ा था और इसमें न जाने कितने ही कुटुम्बों की वंशावली लिख रखी थी। इसके अक्षर भी कई तरह की लिखावट के थे, जिससे ज्ञात होता है कि ३-४ पीढ़ी से यह बहिड़ा रखने वाले कुटुम्ब के अधिकार में रहा है।

हमने अपनी ऐतिहासिक तथ्यों की छान-बीन वाली दृष्टि से इसका निरीक्षण किया तो इसमें, पंवार (आर्थात् परमार) वंश के बिजोलिया और बंबोरा वाले ठिकानों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक शाखा कुलों के वंशानुक्रम का परिचय और उनमें उत्पन्न होने वाले प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के नाम, ठाम और उनका किन २ गाँवों के किन २ कुटुम्बों से वैवाहिक सम्बन्ध आदि हुए इस का उल्लेख किया गया मिला।

मुझे बचपन से ही अपने पूर्वजों के बारे में कुछ जानकारी करने की उत्कंठा बनी रही, परन्तु उस विषय की कोई साधन सामग्री कहीं प्राप्त नहीं हुई, न मुझे अपने माता पिता से ही दादा पड़दादा के बारे में कोई खास परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला ।

मेरा कुल पंवार जातीय राजपूत वंश का है और मेरे पिता तथा दादा आदि का जीवन सम्बन्ध उस घटना के साथ जुड़ा हुआ था जो वि० सं० १९१४ अर्थात् सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह से सम्बन्धित थी ।

मेरी १०-११ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया और उसमें भी मेरा उनके साथ रहना नहीं हुआ । मेरी माता को यद्यपि मेरे पिता के उस संकटमय जीवन का बहुत कुछ परिचय था परन्तु दुर्भाग्य से मैं, पिताजी की मृत्यु के बाद अधिक समय माता के पास भी नहीं रह सका । कोई १३-१४ वर्ष की अबोध अविकसित अवस्था में मैं माता से भी बिछुड़ गया और फिर कभी उसका मुँह नहीं देख पाया । परन्तु पिता की मृत्यु के बाद मेरी माता, पिताजी के उस संकटमय जीवन के बारे में कुछ कुछ बातें मुझे सुनाती रहती थीं, और किस तरह उस सैनिक विद्रोह के समय मेरे दादा तथा बाबा आदि ने भाग लिया, हमारे परिवार के कितने लोग उसमें मारे गये तथा भाग छूटे इत्यादि कितनी ही बातें प्रसंगानुसार वह कहा करती थीं, जिनका विश्रुंखलित ध्वनिस्मरण मेरे अप्रबुद्ध मानस पट पर अंकित हो गया था ।

बाद में जब मुझे उन स्मरणों का चिन्तन होने लगा तो मैं उसका अनुसंधान खोजने लगा ।

इतिहास तत्त्व की तरफ मेरी अधिक अभिरुचि होने के कारण, मैंने भारतीय इतिहास के अंगोंपांगों का अध्ययन करना शुरु किया तो, उसमें सबसे पहले मेरा लक्ष्य राजस्थान के प्राचीन इतिहास को टटोलने में लगा । मेरे हाथ में सबसे पहले कर्नलटॉड का राजस्थान

का सुप्रसिद्ध इतिहास आया। उस समय उपलब्ध, उस महान् ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर मैंने पढ़ा उसमें राजस्थान के जिन प्राचीन राजवंशों का जो विवरण दिया गया है उसमें आबू के अनलकुंड से उत्पन्न परमार वंश का भी वर्णन पढ़ने को मिला, चूँकि मेरा भी जन्म परमार वंश में हुआ है अतः इस वंश के विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी।

बचपन में एक बार पिताजी के साथ घोड़ी पर चढ़कर, आबू के अचलेश्वर महादेव के दर्शन करने के निमित्त गया था, उसका भी मुझे स्मरण था ही फिर तो आगे आगे परमार वंश के इतिहास का अध्ययन बढ़ता गया। मध्यकाल में परमार राजपूतों के कहीं २ राज्य-स्थान बनें, इस विषय की भी छोटी बड़ी अनेक पुस्तकें पढ़ीं। परन्तु मेरे निकटवर्ती पूर्वज, अर्थात् दादा परदादा और उनके दादा पड़दादा कहीं रहते थे और कहीं उनका निवास स्थान आदि था, इसकी जानकारी न हो सकी।

मेवाड़ और उसके निकटवर्ती अजमेर प्रदेश में कुछ पंवार (परमार) जाति के राजपूतों के छोटे छोटे ठिकाने हैं ऐसी जानकारी मुझे स्वर्गीय महा महोपाध्याय गोरीशंकर जी ओझा ने दी थी। उन्होंने सूचित किया था कि अजमेर के पास श्रीनगर नामक एक स्थान है जो किसी समय परमारों की जागीर का स्थान था। सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह के समय अजमेर प्रान्त के कुछ निकटवर्ती राजपूतों के ठिकानों को अंग्रेजी सेना ने नष्ट कर दिये थे, ऐसा भी कुछ उल्लेख म० म० ओझा जी ने बताया था।

मुझे अपने दादा तख्तसिंह जी पिता बड़दसिंह जी और उनके काका के बेटे इन्दरसिंह जी के नाम ठाम का कुछ ज्ञान था। इसमें अधिक कोई विशेष जानकारी नहीं थी। अतः मैं इस बात का पता लगाना चाहता था कि दादा तख्तसिंह जी के पिता आदि कौन थे। उनका निवास स्थान आदि कहीं था, उनके अन्यान्य भाई बन्धु आदि कौन २ थे? कहीं के रहने वाले थे? तख्तसिंह जी क्यों रूपाहेली

आकर बसे थे ? इत्यादि अनेक प्रकार के प्रश्न मन में उठा करते थे, परन्तु उनके समाधान का कोई साधन प्राप्त नहीं था और न किसी ऐसे पारिवारिक जन का ही कोई पता चला जिससे इस विषय का किञ्चित् सम्बन्ध ज्ञात हो पाता; किन्तु योगानुयोग से उक्त रूप में अपने पूर्वजों का बहिड़ा रखने वाले बड़वा भाट मेरे पास पहुँच गये और उनके पुराने बहिड़े के आधार पर मैंने अपने निकटवर्ती पूर्वजों के जो प्राप्त किये वे इस प्रकार हैं :—

बड़वा के बहिड़े के अनुसार पूर्वजों की बंशावली

मेरे पूर्वज परमार जाति के प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल के थे जिनकी राजधानी मालवे की इतिहास प्रसिद्ध धारानगरी थी उसी परमार वंशीय राजकुल की एक शाखा मेवाड़ और मालवे के मध्यवर्ती बिजोलिया नामक स्थान में स्थापित हुई, जिसमें वैरीशाल नामक एक प्रसिद्ध राज पुरुष हुए। वैरीशाल का पुत्र भगवान दास और उनका पुत्र गोपालदास क्रमशः वहाँ उत्तराधिकारी हुए।

गोपालदास के एक पुत्र अमरसिंह हुए जिन्होंने मेवाड़ के आमली नामक गाँव में अपनी स्वतन्त्र जागीर कायम की।

इनकी एक पत्नी कला कँवर थी जो गाँव गुरजणियां वाले राठौड़ उदयभाणजी की बेटी थी दूसरी पत्नी उछबकँवर थी जो गाँव आम्बोदिया वाले कच्छावा राजसिंहजी की बेटी थी।

अमरसिंहजी की एक बेटी लाडकँवर थी जो भाला राव राजा भैरोंसिंहजी सादड़ी वालों को ब्याही थी।

अमरसिंहजी के पुत्र महार्सिंह हुए:—इनकी पत्नी भूरकँवर भाली जो, ताणावासी भूपतिसिंहजी की बेटी थी।

महार्सिंह के पुत्र सगतसिंह हुए:—इनकी पत्नी प्रेमकुंवर थी जो गाँव पारसोली वाले चौहान किसनदास की बेटी थी।

सगतसिंह के पुत्र देवकरणसिंह हुए:—इनकी पत्नी चांदकँवर थी जो गाँव काला नाड़ा के रड़मलोत दुर्ग भाणजी की बेटी थी ।

देवकरणजी की १ बेटी सुगन कँवर बांदरवाड़ा के सोनीगेरा अखेराजजी को ब्याही थी ।

देवकरणसिंह के चार पुत्र हुए । पहला जगतसिंह:—इनकी पहली पत्नी गोविन्द कुंवर जो गाँव लाँबा के कल्याणदासजी राठीड़ की बेटी थी ।

दूसरी पत्नी आनन्द कुंवर थी जो गाँव पाटण के भाटी खुमानसिंह जी की बेटी थी ।

तीसरी पत्नी करमा कँवर मेड़तणी, गाँव रामपुरा के राजसिंहजी की बेटी थी ।

जगतसिंहजी की एक बेटी:—गंगा कँवर गाँव कोटड़ी के चांदावत रतनसिंहजी को ब्याही ।

देवकरणसिंहजी के दूसरे पुत्र राजसिंह हुए जिन्होंने गाँव आगूंचा में अपनी जागीरी कायम की ।

देवकरणसिंहजी के तीसरे पुत्र पहाड़ीसिंह और चौथे पुत्र अनोपसिंह हुये जिनकी कोई सन्तान नहीं थी ।

दूसरे पुत्र राजसिंह की एक पत्नी गुलाबकँवर गाँव खेड़ा के चोहान रामसिंहजी की बेटी थी ।

दूसरी पत्नी गुलाब कुवर भाली गाँव कुण्डला के भाला जसवन्त-सिंहजी की बेटी थी ।

राजसिंह की पहली बेटी रसकँवर, पिथलपुरा के राठीड़ पृथ्वीसिंह को ब्याही ।

दूसरी बेटी फतह कँवर, सुमेरपुर के देवड़ा भवानीसिंह को ब्याही ।

राजसिंह के तीन पुत्र हुए—

१. खुशालसिंह:—आगूंचा गये
२. सरदारसिंह:—श्रीनगर गये
३. जयसिंह:—जो संग्रामगढ़ गये ।

खुशालसिंह के पुत्र जयत्सिंह हुए जो आगूंचा में अपनी पिता की जागीरी के स्वामी बने ।

जयत्सिंह के पुत्र प्रतापसिंह और उनके पुत्र राजसिंह हुए ।

राजसिंह के दो पुत्र हुए—

१. **भमानसिंह**—जो आगूंचा के स्वामी रहे, इनके समय में आगूंचा का गढ़ टूटा ।

२. दूसरे पुत्र **रतनसिंह** हुए जो आगूंचा के गढ़ के टूटने पर रूपाहेली आकर बस गये । इनकी एक पत्नी चतुर कँवर बीकानेरी थी जो गाँव सतारा का गुडा (मारवाड़ खारची के पास) के कर्णसिंहजी की बेटी थी ।

रतनसिंह की दूसरी पत्नी केशर कँवर थी, जो गाँव देसूरी वाले सोलंकी धीरजसिंह की बेटी थी ।

रतनसिंह की ३ बेटियाँ—

१. किशन कुँवर, पावा में कुंभावत राठौड़ को ब्याही ।
२. कैलाश कँवर, बूंदी के हाड़ा भगवतसिंहजी को ब्याही ।
३. जसकँवर पाली के देवड़ा भगवतसिंहजी को ब्याही थी ।

रतनसिंह के दो पुत्र हुए—

१. **संग्रामसिंह**
२. **सूरतसिंह**

रतनसिंह के बड़े पुत्र संग्रामसिंह थे । जिन्होंने श्रीनगर के पास एकलसिंगा की ढाणी नामक अपनी जागीर बनाई ।

दूसरा पुत्र सूरतसिंह जो बड़ा ही वीर योद्धा था और लड़ता हुआ मरकर बड़ा जूझार हुआ ।

संग्रामसिंह की पत्नी एजनकँवर थी जो चांपावतों के गुडा के ठाकुर की बेटी थी ।

संग्रामसिंह के तीन बेटियाँ थीं—जिनमें से १. प्रतापकँवर थी जो गाँव सोरती (गंगापुर के पास) के चूण्डावत किशनसिंह को ब्याही थी ।

दूसरी केशरकुँवर थी जो गाँव मान्यास के चूण्डावत हरिसिंह को ब्याही ।

तीसरी प्रकाशकुँवर थी जो गाँव आंगूचा के गहलोत हरिसिंह जी को ब्याही थी ।

संग्रामसिंह के ३ तीन पुत्र हुए—

१. नाहरसिंह जिनकी पत्नी अखय कुँवर गाँव काशोला के जोधा शिवसिंह जी की बेटी थी:—

नाहरसिंह के तीन पुत्र हुए । एक जोरावरसिंह, दूसरा लालसिंह तीसरा इन्दरसिंह ।

संग्रामसिंह के दूसरे लड़के:—तख्तसिंह हुए जिनकी पत्नी नर्मदा कुँवर रूपाहेली वाले राठौड़ प्रेमसिंह जी की बेटी थी ।

संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र किशनसिंह थे जिनकी पत्नी भूरकुँवर गाँव जेतपुरा के भवानीसिंह जी राठौड़ की बेटी थी ।

संग्रामसिंह के दूसरे पुत्र तख्तसिंह जी मेरे दादा थे । इन्हीं के पुत्र बिरधीसिंह जी (बड़दसिंह) मेरे पिता थे । इनकी मृत्यु, जैसा कि आगे वर्णन किया जायगा वि० सं० १९५५ में हुई । उस समय उनकी उम्र, माता के कथनानुसार ५९-६० वर्ष जितनी थी । इस हिसाब से उनका जन्म वि० सं० १८९५-९६ में हुआ होगा संवत् १९१४ के बलवे के समय उनकी उम्र १८-१९ वर्ष की थी ।

तख्तसिंह जी अपने पिता संग्रामसिंह जी के साथ एकलसिंगा की ढाणी में रहते थे । पिता के और कोई भाई-बहन थे या नहीं इसका पता नहीं मिला ।

पिताजी के काका नाहरसिंह जी के ३ लड़के थे । जिनमें छोटा इन्दरसिंह (इन्दा जी) थे ये बाद में रूपाहेली में आकर बस गये थे । इनकी एक पुत्री प्रताप कुँवर थी, जो आंगूचा के ठाकुर सोहनसिंह जी राठौड़ को ब्याही थी । बाई प्रतापकुँवर का १ पुत्र अमरसिंह और २ बेटियाँ । १. मदनकुँवर है और २. बाई भँवरकुँवर बदनोर के ठाकुर चतुरसिंह जी को ब्याही गई । इसके २ पुत्र और ३ पुत्रियाँ आदि विद्यमान हैं ।

अमरसिंह के ४ पुत्र और २ पुत्रियाँ तथा पोते, पोतियाँ आदि विद्यमान हैं ।

मेरे पिता बिरधीसिंह जी का पहला विवाह बनेड़ा के राणावत हमीरसिंह जी की बेटी राजकुँवर से हुआ था । उसको १ पुत्र हुआ । जिसका नाम पन्नासिंह रखा गया था । बाद में उस पत्नी की मृत्यु हो गई और भाई पन्नासिंह की छोटी ही उम्र में रूपाहेली के ठाकुर सवाईसिंह जी की पुत्री बाई आनंद कुँवर जो अठाणा में ब्याही गई थी, अपने साथ ले गई, और वहीं उसका पालन पोषण हुआ । पन्नासिंह का छोटा पुत्र गुलाबसिंह है जो अहमदाबाद में रहता है । इसके ३ पुत्र और १ पुत्री है ।

— — —

(४)

मेरे दादा और पिताजी के जीवन की घटनायें

उक्त संग्रामसिंह का परिवार जो श्रीनगर के पास वाले ठिकाने में रहता था, मेरे दादा तखतसिंह जी भी अधिकतर वहीं रहते थे। मेरे पिता का जन्म वहीं हुआ था।

जब संवत् १९१४ अर्थात् ईस्वी सन् १८५७ में उत्तर भारत के बहुत से स्थानों में अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध बलवे का रूप धारण किया तब राजस्थान के अजमेर मेरवाड़ा की नसीराबाद की सैनिक छावनी में भी कुछ भारतीय सैनिकों द्वारा मारकाट के कुछ प्रसंग बने। उन भारतीय सैनिकों में राजपूत जाति के भी बहुत से सैनिक थे। उनमें हमारे परिवार के कुछ रिश्तेदार जवान भी शामिल थे। उनमें के दो चार रिश्तेदार जवानों ने नसीराबाद की छावनी से मारकाट के बाद भागकर संग्रामसिंह की ढाणी में आकर आश्रय लिया।

इसका पता नसीराबाद के अंग्रेज अफसरों को लगा तो उन्होंने कुछ सैनिकों का दल उस ढाणी का घेरा डालने के लिये भेजा। ढाणी के मालिक संग्रामसिंह तथा उनके भाई सूरत सिंह व लड़का नाहरसिंह आदि ने उनका सामना किया और काफी मारकाट हुई। इसमें संग्राम सिंह आदि परिवार के तीन चार मुख्य व्यक्ति मारे गये। मेरे दादा तखतसिंह तथा मेरे पिता वृद्धिसिंह ने भी इस मारकाट में पूरा भाग लिया।

अंग्रेजों ने उस ढाणी को जला देने का आदेश दिया और जो कोई पुरुष हाथ में आ जाय उसको पकड़ लेने का अथवा मार डालने का हुक्म दिया। तब बचे खुचे कुछ स्त्री-पुरुष अपना जीवन बचाने की दृष्टि से इधर उधर भाग निकले। उनमें से कुछ तो आस पास के गाँवों में अपने रिश्तेदारों के यहाँ जाकर छुप गये। मेरे दादा और पिता वगैरह तीन-चार व्यक्ति इसी तरह भाग निकले थे और छिपते लुकते पुष्कर के आस पास की पहाड़ियों में जाकर आश्रय पाया। कुछ दिन बाद किन्हीं साधु सन्तों की सलाह से मेरे दादा तथा पिता ने गृहस्थ का भेष बदल कर साधु का भेष धारण किया। वहाँ से कुछ दिन बाद वे उन साधुओं के साथ राजस्थान के प्रदेश से बाहर आबू, द्वारिका, गिरनार आदि की यात्रा में निकल पड़े। बरसों तक इस प्रकार घूमते-फिरते वे आबू के पास वाली अरावली पहाड़ियों के अन्दर भीतरी एकान्त स्थानों में रहे।

सन् १८५७ के गदर के समय जिन राजपूत सैनिकों ने भाग लिया तथा उनकी जिन्होंने मदद आदि की उनको पकड़ लेने के लिए तथा सजा देने के लिए अंग्रेज सरकार ने राजस्थान के सब राज्यों को सख्त आदेश भेज दिये थे। इसलिये वे लोग, जिनका उस बलवे से कुछ भी सम्बन्ध रहा, सब अपनी रक्षा के लिए इधर उधर भाग छूटे उदयपुर के महाराणा ने भी अपने राज्य के सभी जागीरदारों और ठिकाने वालों को अंग्रेजी सरकार के उक्त आदेशानुसार उचित कार्यवाही करने के आदेश भेज दिये थे।

अतः मेरे दादा और पिता ने राजस्थान की सीमाएँ छोड़कर उक्त रूप से गुजरात काठियावाड़ जैसे दूर प्रदेशों में अज्ञात रूप में रह कर तथा साधु का भेष धारण कर अपना जीवन व्यतीत करना पसंद किया।

कोई चौदह पन्द्रह वर्ष तक इस प्रकार वे भटकते रहे। बाद में जब यह विश्वास होने लगा कि बलवे के जमाने को लोग प्रायः भूल रहे हैं और राज्य सत्ता भी उन घटनाओं को विस्मृत-सी मानकर उस

बारे में कोई छानबीन नहीं कर रही है तब वे अपने विनष्ट हुए स्थान और परिवार के जनों की कुछ जानकारी करने की इच्छा से फिर उसी पुष्कर स्थान में आए। वहां रहकर कुटुम्बीजनों के कुछ हालात मालूम हुए जो उन्हें सब निराशा-जनक और खेदकारक प्रतीत हुए।

मेरे दादा जी की अवस्था काफी वृद्ध हो चुकी थी और कुटुम्ब-वालों पर बीते उस महान् संकट की स्मृति से उनका मन भी बहुत खिन्न हो गया था। पुष्कर में रहते हुए रूपाहेली के ठिकाने में से कोई सज्जन जब पुष्कर गए तो उनकी वहाँ पर मेरे दादाजी से भेंट हो गई और उनको उन्होंने अच्छी तरह पहचान लिया।

उन्होंने उनको उसी अज्ञात रूप में रूपाहेली आने का भी कुछ आग्रह किया, परन्तु दादाजी की इच्छा पुष्कर में रह कर ही ईश्वर भजन करते हुए उसी रूप में अपना शेष जीवन व्यतीत करने की रही और अपने पुत्र वृद्धिसिंह को एक बार रूपाहेली भेजना पसंद किया। पिता की आज्ञानुसार वृद्धिसिंह ने अपना वह साधु भेष छोड़ दिया और गुपचुप रूपाहेली आये।

ठिकानेवालों ने एक पुराना-सा नोहरा, जिसमें दो एक कच्चे मकान बने हुए थे, उनको रहने के लिए दे दिये। यों रूपाहेली पिताजी की ननिहाल का ठिकाना था, परन्तु वे वहाँ शायद ही बचपन में आये और रहे हों। उनका जन्म एकलसिंगे वाली ढाणी में हुआ था और उनकी माता का स्वर्गवास संवत् १६१४ के पहले ही हो गया था। संवत् १६१४ से तो वे लापता हो गये थे और बीस वर्ष बाद फिर इस प्रकार प्रकट हुए।

रूपाहेली के ठिकानेवालों का मेरे पिता की तरफ ममत्व भाव था। तथापि वे प्रकट रूप से उनकी सहायता करने में असमर्थ थे। क्योंकि यदि उदयपुर के दरबार में यह बात पहुँच जाय कि संवत् १६१४ के सैनिक बलवे में भाग लेने वाला कोई राजपूत व्यक्ति रूपाहेली में आकर रहा है, और उस बारे में ठिकाने से पूछताछ हो जाय, तो एक

संकट की समस्या उत्पन्न हो जाय, अतः रूपाहेली वाले पिताजी के साथ कोई खास लगाव दिखाने से दूर रहे ।

तब मेरे पिता गाँव काशोला (अजमेरा) में जहाँ मेरे पिता के काका नाहरसिंह की ससुराल थी, वहाँ जाकर कुछ दिन रहे । नाहर सिंह तो उस युद्ध में मारे गये थे, परन्तु उनकी पत्नी, बेटे व बेटी वहीं रहते थे । दादाजी तखतसिंह जी ने सूचित किया था कि नाहरसिंह के परिवार का ठीक पता लगावें । नाहरसिंह का एक छोटा पुत्र इन्द्रसिंह था । उसको साथ लेकर वे फिर रूपाहेली आये । बाद में रूपाहेली वालों ने मेरे पिताजी का भी वहीं रहने का कुछ प्रबन्ध कर दिया और जंगलात का काम सौंपा । उसी समय उनका विवाह बनेड़ा के राणावत हम्मीरसिंह जी की पुत्री बाई राजकुंवर के साथ हुआ, पर दो तीन वर्ष बाद ही उस स्त्री की मृत्यु हो गई । उसको एक पुत्र हुआ था जिसका नाम पन्नासिंह रखा गया, वह उक्त प्रकार से अठाने में रूपाहेली वाली बाई आनन्द कुंवर की संरक्षता में पला ।

इधर पिताजी को समाचार मिले कि पुष्कर में उनके पिताजी की अवस्था बहुत क्षीण हो गई है, तब वे पिताजी की सेवा करने पुष्कर चले गए, कुछ दिन बाद मेरे दादाजी का स्वर्गवास हो गया ।

पिताजी का सिरोही राज्य की सेवा में नियुक्त होना ।

पिताजी कुछ कार्यवश सिरोही गये । वहाँ पर सिरोही महाराव के साथ उनका परिचय हुआ । मेरे पिताजी बड़े चतुर और हिम्मतवान् शिकारी थे । महाराव जी उनकी कला से बहुत खुश हुए और उन्होंने अपने पिण्डवाड़ा जिले के पहाड़ी प्रदेश के जंगलों की देखभाल करने के काम पर एक अच्छे अधिकारी के रूप में नियुक्त किया । उन जंगलों की देखभाल के निमित्त मेरे पिताजी को अनेक गाँवों और ठिकानों में जाना पड़ता था ।

पिण्डवाड़ा और बसन्तगढ़ के बीच में एक छोटासा जागिरी का ठिकाना था । यहाँ के जागीरदार भावुक और अच्छे विचारवान् थे ।

मेरे दादाजी और पिताजी जब साधु बाबा के भेष में अज्ञात रूप से उस प्रदेश में घूम फिर रहे थे तब वे कुछ समय उस गाँव में भी जाकर रहें थे । वहाँ जंगल में अच्छा बना हुआ पुराना शिवालय तथा उसके पास ही में साधु सन्तों के ठहरने के लिए कुछ मकान भी बने हुए थे । पास ही में अच्छी छोटी-सी नदी भी बहती थी । उस जागीरदार के साथ साधु के भेष में छिपे हुए मेरे दादाजी तथा पिताजी के साथ अच्छा स्नेह सम्बन्ध सा हो गया था । उस जागीरदार के एक पुत्री के सिवाय और कोई सन्तान न थी । मेरे पिताजी को भी उस स्थान से कुछ आकर्षण हो गया था । बाद में जब वे उक्त प्रकार से सिरोही राज्य की सेवा में नियुक्त होने पर अधिकारी के रूप में उस गाँव में गये, तो वृद्ध जागीरदार ने उनको अच्छी तरह पहचान लिया । और बड़े आश्चर्य मुग्ध होकर उनसे उनके जीवन की पिछली सारी बातें ज्ञात की ।

उनकी उस इकलौती पुत्री की अवस्था उस समय बीस-बाईस वर्ष की हो गई थी वह अपने वृद्ध पिता की सेवा में नीरत रहती थी । उसकी माता का स्वर्गवास कोई तीन चार वर्ष पहले ही हो गया था ।

वृद्ध जागीरदार की इच्छा हुई कि अपनी पुत्री का विवाह मेरे पिता के साथ हो जाय । पिताजी की भी इच्छा वैसा सम्बन्ध करने की प्रबल हो गई, और उनका विवाह हो गया । वृद्ध जागीरदार का ठिकाना कोई बड़ा न था. परन्तु उसके पास दस बीस हजार का गहना-गांठा था जो उन्होंने अपनी पुत्री को दे दिया । वृद्ध जागीरदार के पुत्र न होने से उनकी जागीरी के उत्तराधिकारी तो उनके भाई बेटों में से ही होने वाले थे ।

पिताजी अपनी पत्नि को साथ लेकर आबू के अचलेश्वर तथा सारणेश्वर महादेव की यात्रा करने गये । वहाँ से वे फिर पुष्कर आये और वहाँ से रूपाहेली भी अपने घर सम्भालने आये । मेरी माता का रूपाहेली ही रहना निश्चित हुआ इसलिये वहाँ पर सब व्यवस्था कर

के पिताजी वापस अपनी सिरोही राज्य की नौकरी पर चले गये । मेरी माता के साथ उनके पिता ने एक बिश्वस्त खानदान सेवक को डायजे के रूप में दे दिया था, जो सदा मेरी माता के पास रहता था ।

एक दो वर्ष के भीतर ही मेरी माता के पिता का स्वर्गवास हो गया । पिताजी अपनी नौकरी से अवसर पा कर बीच-बीच में रूपाहेली चले आते थे । मेरी माता अपने पिता की मृत्यु के बाद शायद एक ही बार अपने जन्म गाँव गई थीं । उनके पिता के ठिकाने में जो घरबार आदि थे वे सब भाई बेटों ने कब्जे में कर लिये थे और जागीर पर भी अपना अधिकार कर लिया था । इसलिए माता की इच्छा अपने पीहर में जाने की कभी न हुई ।

वि. सं. १९४४ में मेरा जन्म हुआ

पाँच वर्ष बाद मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ । जिसका नाम बहादुरसिंह रखा गया । माँ उसे बादल के नाम से पुकारा करती थी । मेरी माँ ने मेरे पहले एक पुत्री को जन्म दिया था जो दो तीन वर्ष की होकर मर गई थी ।

जैसा कि आगे के प्रकरण में बताया जायगा मैं जब १०-११ वर्ष का था तब मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई । चूँकि पिताजी की नौकरी दूर प्रदेश सिरोही राज्य में थी और माता प्रायः रूपाहेली में ही रहा करती थी, इसलिए पिताजी के साथ मेरा अधिक रहना नहीं हुआ । मैं प्रायः माता के साथ रहा ।

उस युग में रूपाहेली में कोई स्कूल या पाठशाला नहीं थी, जिससे ११-१२ वर्ष की उम्र तक मुझे किसी प्रकार का अक्षर बोध तक नहीं हुआ ।

ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती गई खेल कूद में मेरा समय व्यतीत होता गया मुझे तालाब बावड़ी में गंठे लगाना तथा नहाने-तैरने का बड़ा शौक था । अन्यान्य समवयस्क बच्चों के साथ मुल्ली डन्डा गेड़ीदड़ा आदि

खेलने में व्यस्त रहता था। रावले के राजपूत लड़कों के साथ तमन्चा से निशानेबाजी का अभ्यास खूब करता रहता था। घर के आँगन में भमरी, चकरी आदि सदैव फिराये करता, कोड़ियों से निशाने लगाने का खेल भी खूब खेला करता था।

पिताजी की मृत्यु के बाद यतिवर श्री देवीहंस जी की सेवा में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। तब उन्होंने मुझे अक्षर ज्ञान के साथ २ कुछ पढ़ाना आरम्भ किया। पास ही के चारभुजाजी के मन्दिर में एक ब्राह्मण पुजारी कुछ महाजनों के लड़कों को पढ़ी पहाड़े आदि पढ़ाया करता था। यतिजी महाराज ने मुझे वहाँ भी जाकर कुछ लिखने पढ़ने की प्रेरणा की। धीरे-धीरे मेरी रुचि विद्या पढ़ने की ओर बढ़ने लगी। यतिजी महाराज मुझे पढ़ा रहे हैं और मैं पढ़ रहा हूँ यह जानकर माता को खुशी होती रहती थी।

कभी कभी माता गुरु महाराज के दर्शन करने उपाश्रय में जाती थी तब वे उसको मेरे भविष्य के बारे में आशास्पद बातें कहा करते थे जिसको सुनकर उसको हर्षोल्लास होता रहता था, न मालूम उसके मन में मेरे विषय में क्या-क्या आशाएँ बंधती होंगी? वह कभी-कभी मुझ से कहा करती थी कि बेटा रिणमल्ल ! तेरे पिता और दादाजी ने कैसा संकटमय जीवन बिताया है अपने बाप दादाओं की जागीर जो चली गई है उसको तुझे फिर से बनानी है इत्यादि ऐसी कुछ बातें कहा करती थी, उनको सुनकर मेरा अबोधमन क्या-क्या सोचता रहा होगा, इसका मुझे ठीक-सा ज्ञान नहीं है, परंतु मेरे मन में यह संस्कार जम रहा था कि कभी मैं भी बड़ा होऊँगा। जिस तरह पूर्वजों ने जागीर बनाई थी, मैं भी वैसी जागीर फिर बनाऊँगा इत्यादि। शायद इसी कारण मेरे मन में अब्यक्त भाव से अंग्रेजी सत्ता पर द्वेष भाव संचित होता रहा, और परिणाम स्वरूप मेरे मन में राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए वह चेतना अकुंरित होती गई, जिसके कारण ही बाद के जीवन में मैंने वैसी अनेक प्रवृत्तियों का अनुसरण किया।

देववशात् मैं संवत् १९५७ में यतिजी महाराज की सेवा निमित्त माता की वेदना भरी अनुमति प्राप्त कर, रूपाहेली से बानेण चला गया। वहाँ पर यतिजी महाराज का स्वर्गवास हो गया और मैं अनाथ दशा के महारण्य में भटकने निकल पड़ा।

उसके बाद माता की क्या दशा हुई, वह कहाँ रही, और कितने वर्ष जीती रही इसका मुझे कोई २० वर्ष तक किञ्चित् भी ज्ञान नहीं हुआ।

इन २०-२१ वर्षों में मेरा जीवन किस तरह व्यतीत हुआ, इसका यथेष्ट परिचय आगे वाले प्रकरणों में यथा स्थान दिया जायगा।

सन् १९२१ में कैसे अकस्मत् मेरे मन में माता की स्मृति प्रबल रूप से जाग उठी, और उसके कारण मैं उसकी सुधबुध लेने कैसे रूपाहेली जा पहुँचा और वहाँ पर मुझे क्या ज्ञान हुआ इसका परिचय इन आगे के पृष्ठों में दिया जा रहा है।

बीस इक्कीस वर्ष बाद जन्मभूमि रूपाहेली जाने और माता-पिता के विषय में जीवनवृत्त प्राप्त करने का प्रयास।

आगे के प्रकरण में मैंने अपने जीवन के नये मार्ग का जो वर्णन लिखा है तदनुसार, सन् १९२० में मैं महात्मा गांधीजी के प्रत्यक्ष संपर्क में आया और उनके द्वारा भारत की परतन्त्रता को नष्ट करने के लिए चलाये गये असहयोग आन्दोलन का एक राष्ट्रीय सैनिक बनने के लिए जैन साधु सम्प्रदाय का विशिष्ट नेतृत्व पद छोड़कर तथा बहुजन वन्दनीय “गुरु पद” का त्याग कर महात्माजी द्वारा, प्रस्थापित सर्वप्रथम राष्ट्रीय विद्यापीठ (गुजरात विद्यापीठ) में एक प्रधानाचार्य के रूप में सम्मिलित हुआ।

सन् १९०० से लेकर सन् १९२० तक २० वर्ष पर्यन्त मैंने जिस प्रकार का जीवन स्वीकृत किया था उसका मैंने परित्याग किया, और मैं नूतन जीवन मार्ग का अनुसरण करने लगा, उसके कुछ ही समय

बाद मुझे अपनी विस्मृत माता के दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। परन्तु वह कहाँ पर है ? जीवित है भी या नहीं ? इसका मुझे कुछ पता नहीं था। विगत २० वर्षों में मैंने इच्छापूर्वक उसका स्मरण नहीं होने दिया। कुछ ऐसे प्रसंग भी कभी २ आये, जिनके कारण माता की स्मृति ने मुझे बहुत ही विह्वल बना दिया था, परन्तु बलात्कार पूर्वक मैंने स्मरणों को दबाये रखा।

गुजरात विद्यापीठ के पुरातत्त्व मंदिर के मुख्यासन पर बैठने के बाद मैंने अपने ही जीवन के कुछ पुरातन स्मरणों का भी विश्लेषण करना आरंभ किया और साथ ही अपने पूर्वजों के पुरातात्विक वृत्त का भी अनुसन्धान करने की उत्कंठा उत्पन्न हुई।

एक दिन बैठा २ प्राचीन गुजराती भाषा में रचित एक जैन रास का अध्ययन कर रहा था। उसमें अनायास एक ऐसा प्रसंग पढ़ने में आया जिसमें किसी माता के पुत्र वियोग का विलाप वर्णन था। मेरे हृदय में उस विलाप ने एक तीव्र वेदना उत्पन्न कर दी। पुस्तक को रख कर मैं रुदन की अनुभूति में लीन हो गया। उस रुदन की वह अनुभूति कैसी थी ? इसका वर्णन करना कठिन है। इस अनुभूति का मर्म वे ही सहृदय मनुष्य समझ सकते हैं, जिनके हृदय में कोई वैसा स्निग्ध और आर्द्रतत्त्व संचित हो। इस विषय के कुछ विशेष प्रसंग यथा स्थान लिखे जायेंगे। अभी इतना ही उल्लेखनीय है कि मैं उस अनुभूति के दूसरे ही दिन वि. सं. १९७८ के माघ शुक्ला ६ सोमवार को बिना किसी को कुछ सूचना दिये अकेला ही अहमदाबाद से अजमेर जाने वाली दोपहर बाद की ढाई बजे की गाड़ी में बैठकर अपनी विस्मृत प्रायः जन्म भूमि और जननी के दर्शन की अभिलाषा से रवाना हो गया। अगले दिन प्रातः काल अजमेर स्टेशन पर उतर कर चित्तौड़ खण्डवा लाईन की गाड़ी में बैठकर १ बजे रूपाहेली स्टेशन पर उतरा।

गुजरात विद्यापीठ की राष्ट्रीय सेवा स्वीकार करने के लिए मैंने जैन साधु के साम्प्रदायिक वेष का परित्याग कर दिया था और खट्टर

का गेरूआ रंग का लम्बा सा भूबवा तथा खदर की मोटी धोती पहनना पसन्द किया था। सिर नंगा ही रखा था। प्रसंगवश भूबवे पर खदर की ही सफेद चदर ओढ़ लेता था। प्रवास में और चलते समय हाथ में बेंत की मोटी सी सोटी रखता। इसी भेष में मैं रूपाहेली जा रहा था। साथ में सिर्फ एक मोटा-सा जूट का थैला था जिसमें बिछाने के लिए पतली दरी, ओढ़ने का कम्बल तथा लोटा गिलास रख लिया था।

अजमेर से रूपाहेली तक रास्ते में मुझे अनेक विचार आते रहे। एक बार पिताजी के साथ पुष्कर के मेले में जाने का अस्पष्ट स्मरण बना हुआ था, उस समय अजमेर के स्टेशन का जो चित्र मन पर अंकित था, उसका आभास हो आया। गाड़ी में बैठे २ टुकटुकी लगाकर नीचे सड़क की ओर देखते रहने पर सड़क की ओर देखते रहने पर सड़क पीछे की ओर कैसे भगी जा रही थी इसका भी एक धुँधला-सा चित्र आँखों के सामने तैरने लगा।

ज्यों ज्यों रूपाहेली स्टेशन नजदीक आने लगा त्यों त्यों मैं मन में सोचने लगा, गाँव में जाकर मैं सबसे पहले किससे मिलूँ ? कहाँ पर जाकर बैठूँ ? मुझे पहिचान सके, वैसे मनुष्य कोई वहाँ होगा या नहीं ? मेरी माता होगी या नहीं ? होगी तो कहाँ पर होगी ? किसके पास होगी उसका पता कैसे लगेगा, इत्यादि अनेक विचार मेरे मन में उठ रहे थे।

मुझे यह तो मालूम था कि रूपाहेली के वर्तमान ठाकुर श्री चतुरसिंह जी अच्छे विद्वान् और विद्यानुरागी पुरुष हैं। उनको मेरे नाम का और मेरी कुछ साहित्यिक कृतियों का भी इससे पहले ठीक परिचय हो गया था। स्वर्गीय म. म. गौरीशंकर ओझा जी ने मेरे विषय में इनको कुछ ज्ञातव्य बातें कह रखी थीं; परन्तु कभी सीधा परिचय इनसे पहले नहीं हुआ था। अतः मैं सोचता रहा था कि क्या सीधा जाकर इनसे मिलूँ ? या पहले और जगह जाकर किसी के द्वारा माता का पता लगाऊँ ? मैं अपनी माता को जिस घर में छोड़ आया था, वही घर भी अब विद्यमान होगा या नहीं ? यदि होगा तो उसमें

कौन रहता होगा ? मेरी माता के साथ जो एक चाकर रूप परिजन था वह भी मौजूद होगा या नहीं ? ऐसे ही अनेक प्रकार के विचारों में मैं निमग्न था कि गाड़ी रूपाहेली के स्टेशन पर रुकी ।

मैं तुरन्त ही नीचे उतर पड़ा । इधर उधर देखा तो स्टेशन पर कोई नज़र नहीं आया । परन्तु २१-२२ वर्ष पहले, १३ वर्ष की उम्र में, इस स्टेशन पर से गाड़ी में बैठकर जब गुरु देवी हंसजी यतिवर के साथ चित्तौड़ की ओर चलना हुआ था, उस समय की याद दिलाने वाला स्टेशन का मकान ठीक उसी रूप में और उसी तरह अचल भाव से खड़ा हुआ दिखाई दिया । ५ मिनट तक अनिमेष भाव से मैं स्टेशन की तरफ देखता रहा, इसी स्टेशन पर से मैंने अपना जीवन प्रवास शुरू किया और पिछले २१-२२ वर्षों तक कहीं कहीं घूमा फिरा और कैसे विचित्र स्वरूप धारण कर क्या २ करता रहा और आज फिर इसी विचित्र वेष में, एकाकी अपरिचित असंग और अलक्षित रूप में यहाँ उपस्थित हो रहा हूँ । मन कुछ उत्कंठा, कुछ उद्विग्नता और कुछ कुतूहल भाव से भरा हुआ था ।

स्टेशन मास्टर ने टिकिट लिया फिर वह मेरी ओर कुछ क्षण तक विस्मित भाव से नीचे से ऊपर तक देखता रहा । बाद मन्द स्वर से पूछा, आप कहाँ से आ रहे हैं ? मैंने मुस्कराते हुए कहा, अहमदाबाद से । उसने फिर पूछा, वहाँ क्या करते हैं ? जवाब में मैंने कहा, कुछ लिखने पढ़ने का और कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाने का काम करता रहता हूँ । उसने कहा, कहाँ जा रहे हैं ? मैंने उत्तर दिया—रूपाहेली । वहाँ क्या काम है ? उत्तर मैंने कहा—किसी रिश्तेदार से मिलना है । इतने में ही तार की घंटी बजी और वह अपने कमरे में चला गया । मैं गाँव के रास्ते चल पड़ा ।

रूपाहेली स्टेशन से गाँव दो ढ़ाई मील की दूरी पर है । रास्ता कच्चा और धूल भरा हुआ था । ज्यों ज्यों गाँव नजदीक आता गया त्यों त्यों मेरे ब्रह्मण के अनेक स्मरण उभरते गये, गाँव से आधा मील दूर एक लम्बा चौड़ा मैदान है जिसमें गाँव के ब्रह्मण से समवयस्क

बालक मिल कर गेडीदड़ा तथा गुल्ली डंडा आदि कें खेल खेला करते थे । एकदफा एक लड़के के हाथ से गुल्ली उछल कर मेरे दाहिने होठ के ऊपर के भाग पर जोर से लगी थी, जिसके कारण खूब खून निकला और गहरा घाव हो गया । यतिजी महाराज देवी हंस जी ने दवा लगा कर उसे ठीक किया । उस चोट का छोटा-सा चिह्न अभी तक मेरे होठ पर बना हुआ है ।

इस घटना का स्मरण उस मैदान पर से गुजरते हुए अनायास हो आया । गाँव के नजदीक एक बावड़ी बनी हुई है, जिसमें समवयस्क लड़के ऊपर से कूद कर खूब गंठे लगाया करते थे । रूपाहेली छोड़े बाद फिर कभी वैसे गंठे लगाने का मौका जीवन में कहीं नहीं मिला । बाल्य जीवन की सारी स्मृतियाँ सजग हो उठीं ।

इस प्रकार विचारों में निमग्न मैं गाँव के मध्य भाग, छोटे-से बाजार के नुककड़ पर आ पहुँचा । सामने ही चार भुजा जी का वैष्णव मंदिर दिखाई दिया । इसी मंदिर के दरवाजे वाले भाग के चबूतरे पर बैठ कर, तत्कालीन पुजारी ब्राह्मण के पास मैंने सबसे पहले वर्ण-माला का अक्षर बोध प्राप्त किया था और कुछ पट्टी पहाड़े भी सीखे थे । मैं सीधा उस मंदिर के दरवाजे में जाकर चबूतरे पर थैला रख कर बैठ गया । पुराने पुजारी जैसा ही एक ब्राह्मण केवल मैली धोती पहने हुए वहाँ बैठा मिला । मैंने ब्राह्मण को पांवा धोक किया और पूछा कि आप इस मंदिर के पुजारी हैं ? कुछ देर तक तो विस्मय के साथ वह मेरी ओर देखता रहा फिर बोला कि, कहीं से आ रहे हो ? कौन हो ? मैंने कहा, अहमदाबाद से आ रहा हूँ । एक शिक्षक हूँ । उस मंदिर के पास ही एक जैन मंदिर भी है और उसीसे सटा हुआ जैन यतियों का उपाश्रय । इस उपाश्रय में ही यतिवर देवी हंस जी महाराज रहते थे । मैंने पुजारी से पूछा कि उपाश्रय में कोई यति जी हैं ? तो पुजारी ने कहा कि कोई यति नहीं है । फिर मैंने पूछा कि उपाश्रय खाली ही पड़ा है तो उसका इन्तजाम कौन करता है ? ब्राह्मण ने कहा ओसवाल महाजन करते हैं । मैंने पूछा कि उपाश्रय के

सामने जिन महाजन की दुकान है उसके मालिक कौन है ? उनका क्या नाम है । ये प्रश्न सुन कर वह पुजारी कुछ विचारों में पड़ गया । फिर उसने पूछा कि क्या पहले कभी यहाँ आये हो ? मैंने कहा कोई २२-२३ वर्ष पहले यहाँ एक जैन यति महाराज रहते थे जो बहुत वृद्ध और बड़े नामी वैद्य थे । उनके पास कुछ दिन रहा था, उसके बाद फिर कभी आना नहीं हुआ । यह सुनकर उस ब्राह्मण को कुछ विशेष जिज्ञासा उत्पन्न हुई, और वह पूछने लगा कि तो अभी यहाँ किसलिए आना हुआ है । मैंने कहा कि मेरे कोई पुराने रिश्तेदार इधर कहीं किसी गाँव में रहते हैं और उनका कुछ पता लगाना है ।

यह बात ही ही रही थी कि एक नौकर-सा व्यक्ति वहाँ आ खड़ा हुआ और तेज आवाज से बोला कि—पुजारी जी, यह अजनबी आदमी कहीं से आया है और इसकी खबर रावले में पहुँची है, सो कुँवर साहब ने हुक्म दिया है कि इसको तुरंत रावले में हाजिर करो । सुनकर पुजारी चुप हो गया और मैं भी चकित-सा हो कर उस नौकर के सामने देखने लगा तथा सोचने लगा कि बात क्या है ? मैं उससे कुछ पूछूँ कि भाई बात क्या है ? पर उसने तो तुरन्त हुक्म किया चलिये और कोई बात न करिये ठाकुर साहब का हुक्म है कि अभी जो आदमी स्टेशन से गाँव में आया है उसे तुरन्त यहाँ ले आओ ।

बात यह थी कि उन दिनों महात्मा गाँधी जी ने भारत को स्वतन्त्र बनाने के लिये अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये देशव्यापी जो असहकार आन्दोलन शुरू किया था उसकी प्रतिध्वनि देशी राज्यों में भी गूँजने लगी थी । राजस्थान के प्रजाजनों में भी इधर-उधर कुछ आन्दोलन की हवा बहने लगी थी । देशी राज्यों की स्थिति तो गुलामों के भी गुलाम जैसी थी, इसलिए अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ कोई भी हलचल देशी राज्यों में न होने पावे इसकी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सूचनाएँ सभी देशी राज्यों में अंग्रेज शासकों द्वारा प्रसारित

की गई थी। इसके लिये इन राज्यों में और इनके अधीन जागीरदारी ठिकानों में कोई भी वैसा व्यक्ति घुसने न पावे जो इस प्रकार के आन्दोलन का प्रचार करना चाहता हो, इस बारे में बड़ी कड़ी निगरानी की जा रही थी।

रूपाहेली के ठाकुर साहब को यह खबर स्टेशन से ही किसी के द्वारा मिल गई थी कि एक खट्टरधारी अजनबीसा आदमी अहमदाबाद से रूपाहेली आया है और उसका कोई यहाँ परिचित या सम्बन्धी जन है नहीं। अतः ठाकुर साहब को वैसी कोई राजनैतिक शंका का हो जाना स्वाभाविक था। अतः उन्होंने मुझे पूछताछ की दृष्टि से तुरन्त रावले में बुला लेना चाहा।

मैंने तुरन्त ही अपना वह थैला तो उसी मन्दिर के चबूतरे पर रख दिया और उस पुजारी को कह दिया कि मैं वापस आऊँ तब तक आप मेरे इस थैले का जरा खयाल रखना। रावला, याने ठिकाने का गढ़ पास ही में था। मैं उस नौकर के साथ गढ़ में गया। गढ़ के बड़े दरवाजे पर ही ठिकाने की कचहरी का पुराना मकान था। जहाँ पर ठाकुर साहब तथा उनके बड़े कुँवर आदि दिन में कुछ समय बैठा करते थे और आने जाने वाले व्यक्तियों से मिलते-जुलते तथा ठिकाने सम्बन्धी काम-काज देखते रहते थे। गढ़ का यह दरवाजा और उसके ऊपर कचहरीनुमा मकानों आदि को मैं बचपन से ही जानता था। २२-२३ वर्ष बाद मैं इस गढ़ में एक विचित्र मनुष्य के रूप में प्रविष्ट हो रहा हूँ इसका खयाल मुझे पग-पग पर हो रहा था। मन अजीब प्रकार के कुतूहल भावों से उद्वेलित हो रहा था। दरवाजे के अन्दर की टूटी-फूटी सीढ़ियों से चढ़ता हुआ मैं एक कमरे के सामने जा पहुँचा। उस नौकर ने कहा, यहाँ पर खड़े रहो। मैं कुँवर साहब को इतिला करता हूँ।

मैं चुपचाप गढ़ के सामने दिखाई देने वाले महलों की तरफ देखता रहा। वे महल मुझे वैसे के वैसे ही मीले कुचैले रूप में दिखाई दिये,

जिनको मैंने रूपाहेली से विदा होने के पूर्व २२-२३ वर्षों पहले देखे थे। क्षण भर में मेरे मानस पटल पर गुजरात विद्यापीठ का वह सुरम्य नूतन स्थान और पूना में स्थापित किया हुआ मेरा “भारत जैन विद्यालय” का सुन्दर भवन आदि मेरे निवास स्थानों के चित्र आभासित हो उठे।

थोड़ी देर पश्चात् तौकर आया और उसने मुझसे कहा, तुमको कुँवर साहब बुला रहे हैं, सो अन्दर चले जाओ।

मैं कमरे के अन्दर जाकर एक दरवाजे के पास खड़ा हो गया। मैंने धीमे स्वर से उनको हाथ जोड़कर नमस्कार किया। कुँवर साहब एक पुरानी-सी कुर्सी पर बैठे थे। सामने एक बैसी ही मेज पड़ी थी। कुछ एक दो आदमी और अन्दर खड़े थे। उनसे वे कुछ बातचीत कर रहे थे। मुझे दरवाजे में घुसते ही उन्होंने एक तीखी नजर से मुझे देख लिया, पर मेरे नमस्कार का उन्होंने कोई खयाल नहीं किया।

दो चार मिनट वे उन आदमियों से कुछ बात कर चुकने पर, मेरे सामने ताक कर पूछा “तुम कहाँ से आ रहे हो ? उत्तर में मैंने कहा “अहमदाबाद से,” प्र० “वहाँ क्या करते हो ?” उ० “कुछ लिखने पढ़ने का और कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाने का,” प्र० “क्या मास्टर हो ?” उत्तर—“मास्टर तो नहीं हूँ पर यूँ ही एक विद्यालय में काम करता हूँ।” प्र० उस विद्यालय का क्या नाम है—“कौन उसको चलाता है ?” मैंने कहा—“महात्मा गाँधी ने उसे स्थापित किया है और वह गुजरात की बड़ी नामी संस्था है।”

कुँवर साहब जिनका नाम लक्ष्मणसिंह था रूपाहेली ठाकुर साहब श्री चतुरसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। और पढ़े-लिखे थे। बचपन में मैंने उनको अच्छी तरह देखा था, पर कोई विशेष परिचय का कारण नहीं था। महात्मा गाँधी जी का नाम सुनकर वे जरा चौंके, और मेरी ओर नीचे से ऊपर तक देखकर मेरे वेश आदि का निरीक्षण करते हुए बोले—“तुम्हारा नाम क्या है और कहाँ के रहने वाले हो ?”

जवाब में मैंने अपना नाम बताया और निवास स्थान फिलहाल गुजरात में अहमदाबाद है ऐसा कहा। मेरा नाम मुनि जिनविजय सुनकर, पहले तो उनको कुछ अटपटा लगा—दो-तीन बार उन्होंने नाम पूछा—

कुँवर साहब के कमरे के पास ही एक और कमरा था जिसमें उस समय ठाकुर साहब चतुरसिंह जी आकर बैठे हुए थे। कुँवर साहब मुझसे जो बातें तेज आवाज में पूछ रहे थे वे ठाकुर साहब के कानों में भी पहुँची, तो उनको खयाल हुआ कि कुँवर जी किन से बात कर रहे हैं ? उन्होंने उस नौकर को अपने पास बुलाया और पूछा कि कुँवर जी किस से बात कर रहे हैं। कोई बाहर का आदमी आया हुआ है क्या ? तब उस नौकर ने मेरा जिक्र किया। सुनकर ठाकुर साहब को मेरे बारे में जिज्ञासा हुई। और नौकर को कहा कि जो बाहर से आये हैं उनको यहाँ बुला ला। नौकर ने कुँवर जी से कहा, कि दाता इनको वहाँ बुला रहे हैं।

कुँवर जी ने कहा ले जाओ। मैं उनको नमस्ते कहकर पास वाले ठाकुर साहब के कमरे में प्रविष्ट हुआ। ठाकुर साहब एक ऊँचे-से झरोखे के चोंतरे पर गादी तकिया डालकर बैठे हुए थे। और दो-एक पुस्तकें भी उनके पास पड़ी थी। मैंने उनको देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उनकी शकल व आवाज से मैं यों परिचित तो था ही पर वे मुझे पहचान सकें ऐसी मेरी अवस्था आदि नहीं थी। उन्होंने मेरे प्रणाम को स्वयं हाथ जोड़ कर स्वीकार किया, और पास में चोंतरे पर पड़ी हुई दरी पर बैठने को कहा।

ठाकुर साहब चतुरसिंह जी कुँवर साहब से अधिक संस्कारी और अनुभवी थे। उदयपुर में महाराणा की सेवा में रहने के कारण उनको अनेक व्यक्तियों से मिलने करने का तथा उनसे यथोचित संपर्क आदि रखने का अनुभव था। वे स्वयं बड़े विद्यानुरागी तथा विद्वानों का समागम करने में रुचि रखते थे। इतिहास का उनको अच्छा शौक था।

और वे इस विषय की अच्छी-अच्छी पुस्तकें मँगाते और पढ़ते रहते थे । अजमेर वाले म० म० गौरीशंकर जी हीराचन्द जी ओझा से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था । स्वभाव से भी सज्जन और सदाचार वृत्तिवाले थे । मेवाड़ राज्य के तत्कालीन जागीरदारों में वे प्रथम मैट्रिक की परीक्षा पास करने वाले अजमेर मेयो कॉलेज के प्रशस्ति प्राप्त विद्यार्थी थे । मेरे इस मिलने से पूर्व ही वे मेरे नाम तथा साहित्यिक कृतियों आदि से यथेष्ट परिचित थे परन्तु कभी साक्षात्कार करने का अवसर न मिलने से मेरी आकृति और परिस्थिति का उन्हें कोई आभास नहीं था ।

मेरे दरी पर बैठ जाने पर विनम्र भरे स्वर से पूछा कि आप कहाँ से पधार रहे हैं ? आपका निवास स्थान कहाँ है ? मैंने उनसे वही सब बातें कहीं जो कुँवर साहब को सुनाई थी और नाम का तथा स्थान का भी परिचय दिया । सुनकर वे क्षण भर तो स्तब्ध से हो गये और बोले कि क्या आप वे ही मुनि जिनविजय जी हैं जो अहमदाबाद के गुजरात पुरातत्व मंदिर के आचार्य सुने जाते हैं ? मैंने धीमे से कहा, हाँ ठाकुर साहब, मैं वही मुनि जिनविजय हूँ और आपकी इसी रूपाहेली में जन्मा हूँ । मैं आपका प्रजा जन हूँ । सुनकर ठाकुर साहब एक दम गद्दी पर से उठ खड़े हुए । उनका स्वर भर गया । आँखों में कुछ आँसू से झलकने लगे और दोनों हाथ जोड़कर, मेरे पैरों में मस्तक रख कर गद्गद् स्वर से बोले कि मुनि महाराज, इस तुच्छ मनुष्य पर आपने आज यह कैसी अकल्पित और असंभावित कृपा की और आप बिना किसी सूचना संकेत दिये एक अज्ञात और अपरिचित संत के समान यहाँ पधार कर मुझे कृतार्थ करने की कृपा की, इत्यादि अनेक प्रकार के उद्गार उनके मुख से निकले और हर्षाश्रुओं से उनका मुख आर्द्र हो गया । मुझे उठाकर उस गद्दी पर जिस पर वे स्वयं बैठे थे बलात् बिठाया । यह दृश्य वह नौकर एक किनारे खड़ा २ चकित-सा हुआ देख रहा था । उसकी समझ में नहीं आया कि यह क्या मामला है ? उधर तो कुँवर साहब इनसे कैसी कड़ी २

बातें कर रहे थे और इधर स्वयं ठाकुर साहब इनके पैरों में अपना मस्तिष्क रख कर इनके हाथ अपने मस्तक पर रख रहे हैं ।

कुछ क्षण बाद ठाकुर साहब स्वस्थ हुए और प्रसन्न मुद्रा में पूछने लगे कि आज अचानक इस तरह आपका यहाँ पधारना कैसे हुआ और क्या बात है ? इत्यादि । मैंने कहा, ठाकुर साहब आप स्वस्थ हो जाइये मैं सब बातें आपसे कहूँगा । नहीं मालूम विधि के किस अज्ञात संदेश ने मुझे २-३ दिन पहले ऐसी उत्कंठा, मानसिक प्रेरणा की कि मैं अपनी जन्मभूमि रूपाहेली के दर्शन करूँ, और आपसे भेंट करूँ ।

मुझे अपने बचपन का वह दिन अच्छी तरह याद है जिस दिन मेरे पिता की बीमारी का हाल सुनकर आप हमारे घर पर पधारे थे और फिर आपने यतिवर श्री देवीहंस जी को उनका इलाज करने की प्रार्थना की थी, जिस तरह आपका स्नेह मेरे पिता जी पर था उसी तरह आपकी भक्ति उन यतिवर देवीहंस जी पर थी, जिनको मैं अपना जीवन मार्ग-दर्शक गुरु मानता हूँ । विधि के किसी ऐसे ही क्रूर विधान के कारण मैं अपनी जन्मभूमि का इतने वर्षों तक दर्शन ही नहीं कर पाया, और न पिता के समान आपसे ही कोई सम्पर्क कर पाया, संवत् १९५७ की निर्जला एकादशी के दिन मैं अपनी जन्म-भूमि से विछड़ा उसके २०-२१ वर्ष बाद आज इस प्रदेश और इस जन्म-भूमि में आ पाया हूँ ! इत्यादि ।

ठाकुर साहब ने फिर कुंवर साहब तथा अन्यान्य जनों को बुलाया, संक्षेप में मेरा परिचय दिया, सुनकर कुंवर साहब तो बहुत लज्जित हुए और वे भी उसी तरह हाथ जोड़ कर माफी आदि माँगने लगे ।

ठाकुर साहब ने पूछा कि आपका सामान वगैरह कहाँ है ? मैंने कहा मैं सीधा स्टेशन से गाँव आया तब चारभुजा जी के मन्दिर के चौतरे पर जाकर बैठा और वहीं अपना छोटा-सा थैला रख कर आया हूँ । मेरी इच्छा है कि यदि यति जी महाराज का वह उपाश्रय खाली

हो तो उसी में जाकर ठहर जाऊँ । ठाकुर साहब बोले, आप तो हमारे पूजनीय मेहमान हैं, आपका ठहरने करने का सब इन्तजाम हमारे यहाँ गढ़ में होगा । यह कह कर उन्होंने मेरा सामान ले आने को उसी नौकर को आदेश दिया । जो मुझे चारभुजा जी के मन्दिर से गढ़ में लेआजाने के लिये आया था ।

गढ़ में एक छोटे-से ऊँचे कमरे में मेरे ठहरने की व्यवस्था की गई, शाम होने आई थी, भोजन आदि के लिये पूछा तो मैंने सिर्फ़ पाव भर दूध लेने की इच्छा प्रदर्शित की ।

ठाकुर साहब वहाँ से उठकर फिर अपने नित्य के कार्यक्रम के लिये चले गये, जाते हुए उन्होंने कहा, मैं दो घन्टे बाद सेवा में उपस्थित होऊँगा, तब तक आप भी विश्रान्ति आदि लें ।

मैं उस कमरे में गया जहाँ दरी, गालिचा आदि बिछवा दिये थे, पानी का तांबे का घड़ा भरवा कर रख दिया । मैंने अपने हाथ पैर धोये और मुँह आदि साफ किया । फिर नौकर दूध का गिलास भर करके ले आया । दूध पीकर कुछ थकान-सी महसूस हो रही थी इसलिये मैं यूँ ही, उस बिछात पर लेट गया ।

ठाकुर साहब जब मिलने आवेंगे तब इनसे अपनी माता के बारे में क्या पूछना चाहिए, और उसकी खबर-अन्तर का कैसे पता लगाना चाहिये, इस बारे में मैं सोचता रहा ।

थोड़ी ही देर में ठाकुर साहब मेरे कमरे में आये, पैरों पर हाथ लगाकर प्रणाम किया, फिर गलीचे के एक किनारे पलांठी मारकर दोनों हाथ एक साथ मिलाकर बड़ी अदब से बैठ गये और बोले, मुनिजी महाराज मुझे इतिहास का विशेष शौक है । इतिहास विषयक पुस्तकों और लेख आदि मैं बड़ी रुचि के साथ पढ़ता रहता हूँ । हिन्दी की नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा सरस्वती भासिक पत्रिका मैं नियमित पढ़ता रहता हूँ । आपके नाम से छपे हुये कुछ महत्त्व के ऐतिहासिक लेख, सरस्वती में तथा आपकी लिखी विज्ञप्ति त्रिवेणी, आदि पुस्तकों की,

महाविद्वान् महावीर प्रसादजी द्वेवेदी द्वारा लिखी गई बड़ी महत्व की समालोचनाएँ “सरस्वती” में मैंने पढ़ीं, तभी से आपके बारे में जानने की मुझे विशेष जिज्ञासा हुई, प्रसंग वश मैंने अजमेर में गौरीशंकरजी ओझा से पूछा तो, उन्होंने आपका विशेष परिचय दिया और बोले कि ये तो असल में आपके रूपाहेली के रहने वाले हैं। क्या आपको इनके पिता आदि का परिचय नहीं है? ये बचपन में ही पिता की मृत्यु के बाद, वृद्ध यतिवर देवीहंसजी की सेवा के निमित्त उनके साथ चले गये और फिर अनेक साधु संतों आदि के सहवास में रहते हुये इन्होंने गहरा अध्ययन किया, और अब बड़े विद्वान् जैन मुनि के रूप में, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में सुविख्यात हैं। इतिहास और संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के नामी विद्वान् हैं, इनसे मेरा बहुत घनिष्ठ सम्पर्क है। बम्बई और पूना में मैंने इनके दर्शन भी किये हैं। इत्यादि अनेक प्रकार की जानकारी जब ओझाजी से प्राप्त हुई, तभी से मैं भी आपके दर्शन आदि करना चाहता था, और तभी कुछ समय पहले अखबारों में अहमदाबाद में स्थापित गुजरात पुरातत्व मंदिर के तथा उसके अध्यक्ष स्थान पर आपकी नियुक्ति हुई यह जानकर मुझे और भी अत्यधिक उत्सुकता उत्पन्न हुई, यह मेरा अहोभाग्य है कि आज आप स्वयं यहाँ पधार कर मुझे कृतार्थ कर दिया। इस प्रकार की बहुत सी बातें वे करते रहे फिर मैंने भी अपने विषय में कितनीक बातें उन्हें सुनाई, रूपाहेली छोड़े बाद जीवन चक्र कैसे घूमता रहा, और पिछले बीस बाईस वर्ष कैसे व्यतीत हुये, इसका संक्षेप में कुछ हाल सुनाया।

बाद में मैंने उनसे कहा कि मेरा आज यहाँ अकस्मात् और अज्ञात रूप में आने का उद्देश्य, मुझे अपनी माता के विषय में जानकारी और साथ ही अपने पिता दादा आदि के जीवनवृत्त की कुछ बातें जाननी हैं। जो शायद आपको ठीक २ ज्ञात हो सकती हैं। मेरे पिता यहाँ रूपाहेली में कैसे आये, कितनी समय रहे? उनके परिवार का कोई अन्य व्यक्ति है या नहीं? मुझे इन बातों का किंचित भी परिज्ञान नहीं है, रूपाहेली छोड़े बाद न मुझे इधर का कोई व्यक्ति ही मिला और न मुझे अपनी

माता के ही कोई समाचार मिले, न मैंने ही इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई प्रयत्न ही किया । मैं जैसे एक मूर्च्छित मनुष्य की तरह इतने वर्ष अपने पूर्व जीवन विषयक विस्मरण का पूर्व भोग बना रहा । 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा', इस संस्कृत उक्ति के अनुसार मुझे अपने माता पिता आदि की स्मृति की चेतना पुनः जागृत हुई है और मैं आज इसी चेतना के वश होकर यहाँ चला आया हूँ ।

मेरी बातें सुनकर ठाकुर साहब भी कुछ विस्मित हुए और बोले अब आज तो काफी रात हो गयी है, आप आराम करें, कल सुबह इस विषय की जो कुछ बातें मुझे ज्ञात है वह मैं आपको सुनाऊँगा ।

आपकी माता के पास जो चाकर रहता था वह अभी मौजूद है, मैं सुबह उसको भी बुलाऊँगा और उससे जो भी जानकारी मिलेगी वह निवेदन करूँगा । यह कह कर ठाकुर साहब प्रणाम करते हुए चले गये मैं भी अपने बिस्तर पर लेट गया ।

माघ का महीना था ठंडी काफी पड़ रही थी, सुबह होने पर मैं दातुन वगैरह कर निवृत्त हो गया, कोई दो घण्टे बाद एक आदमी दूध का एक बड़ा सा लोटा भरकर लाया, अपनी आवश्यकता अनुसार मैं पी गया और बाकी का वापस कर दिया ।

कोई दस बजे के लगभग ठाकुर साहब अपने नित्य नियमादि से निवृत्त होने पर मुझे अपने निज के उठने बैठने वाले खास कमरे में बुला भेजा, प्रणामादि के बाद अपने बैठने की खास गद्दी पर बड़े आग्रह पूर्वक मुझे बिठाया, और आप स्वयं सामने बैठ गये, रात्रि की विश्रान्ति आदि की कुछ बातें पूछकर, फिर मेरे पिता आदि के बारे में जितनी जानकारी उनको थी संक्षेप में कह सुनाई, उनमें कुछ बातें ऐसी भी थीं जिनको अपने ठिकाने को रक्षा की दृष्टि से प्रकट करना नहीं चाहते थे ।

मेरे पिता और दादा के जीवन का सम्बन्ध १८५७ वाले सैनिक विद्रोह की घटना के साथ जुड़ा हुआ था । उनकी कुछ रिश्तेदारी

रूपाहेली के ठिकाने वालों के साथ थी, अतः पीछे जब मेरे पिता रूपाहेली आकर रहने लगे, तब ठिकाने वालों की आंतरिक सहानुभूति होने पर भी राजनैतिक परिस्थिति होने के कारण पिताजी वहाँ अज्ञात प्रवासी और परदेशी के रूप में ही पहचाने जाते थे परन्तु बाद में मेरी माता के साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध हुआ, और सिरोही राज्य के एक अच्छे अधिकारी के रूप में उनकी अच्छी स्थिति बनी तो, ठिकाने वाले भी उनसे अच्छा मेल जोल दिखाने लगे, शायद इसी संबन्ध के कारण पिताजी ने रूपाहेली में अपना निवास स्थान बनाना पसन्द किया और मेरी माता के वहाँ रहने का प्रबन्ध किया ।

मेरे पिताजी ने जब रूपाहेली में अपना निवास स्थान बनाया तब ठाकुर चतुरसिंह जी की उम्र २०-२२ वर्ष की थी, पिताजी की भी उम्र २०-२२ वर्ष की थी ।

ठाकुर चतुरसिंह जी को जवानी में सुअर की शिकार का बड़ा शौक था, पिताजी भी खूब अच्छे शिकारी थे, इसलिये उनका परिचय ठाकुर चतुर सिंह जी से विशेष रूप से हो गया था, पर पिताजी अधिकतर अपनी सिरोही राज्य की नौकरी में रहा करते थे, जब कभी वे रूपाहेली आते तो कभी २ ठाकुर साहब के साथ शिकार खेलने चले जाते थे, पीछे ठाकुर चतुरसिंह जी अधिक बीमार रहने लगे, तब फिर उन्होंने वह आखेट का व्यसन छोड़ दिया ।

पिताजी बीच २ में अजमेर, पुष्कर आदि स्थानों में जाया करते थे, उनके पिताजी पुष्कर में ही, सन्यासी के रूप में मृत्यु प्राप्त हो गये थे, अतः उनके मन में कुछ धार्मिक भाव भी उमड़ने लगे थे, उस सँकट काल में जब साधु का भेष धारण कर आबू, गिरनार आदि तीर्थ स्थानों में वे घूमते रहे, और साधु सन्तों की सोबत करते रहे, तब जो कुछ धार्मिक संस्कार बन पाये थे, उनका अब पुनः जागरण होने लगा था ।

उन दिनों आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी राजस्थान के राज्यों में घूमा करते थे, और राजपूत राजाओं व सरदारों में क्षात्र

धर्म की भावना को उत्तेजित करने का प्रचार करते रहते थे, मलेच्छ संस्कृति और मलेच्छ सत्ता के विरुद्ध वे अपनी प्रचंड उपदेशक शक्ति का प्रभाव फैलाते रहते थे, उनके उपदेशों से प्रभावित होकर कई राज-पूत सरदार स्वामी जी के अनुरागी बन रहे थे ।

वे उदयपुर और जोधपुर जाते हुए एक दो बार रूपाहेली भी ठहरे थे, शायद उस समय पिताजी ने भी उनके दर्शन किये थे, और उन्होंने यज्ञोपवीत भी धारण किया था ।

पिताजी के ऐसे संस्कारों के कारण, पीछे जब ठाकुर चतुरसिंह जी अधिक समझदार होते गये तब उनका स्नेह संबन्ध पिताजी के साथ बढ़ता गया । पिताजी अंग्रेजी सत्ता के पुराने बागी थे इसलिये वे अपने आपको इस प्रकार प्रसिद्ध होने देना नहीं चाहते थे और दूसरे ठिकाने-दार राजपूत भी उनको इस रूप में अपनाना नहीं चाहते थे, इसलिये रूपाहेली में उनकी प्रसिद्धि एक परदेशी राजपूत के रूप में रही ।

उक्त रूप में ठाकुर साहब चतुरसिंह जी ने मेरे पिताजी के विषय में जो बातें कही मैंने वे नोट करली ।

बाद में उन्होंने मेरी माता के पास जो परिजन के रूप में रहता था, उसको बुलाया । उसका नाम अजिताजी था, उसकी उम्र करीब ६०-६५ वर्ष की थी, उसने तो मुझे नहीं पहिचाना लेकिन मैंने उसे ठीक प्रकार से पहिचान लिया, वह बेचारा भोला भाला सीधा मनुष्य था, ठाकुर साहब ने उसे मेरा कुछ परिचय दिया और कहा कि “तुम जिस ठुकरानी के साथ यहाँ आये थे उनका तुमको कुछ पता है ? वे अब कहाँ हैं ? रूपाहेली से वे कब और कहाँ गई ? तुम कितने वर्ष उनके पास रहे ? आदि बातें ये महाराज जानना चाहते हैं, तुमको जो कुछ बातें याद हैं, इनको बताओ ।

ठाकुर साहब को अपने नित्य नियम का समय हो गया था सो वे उस भाई को मेरे पास छोड़कर अपने दूसरे स्थान में चले गये । मैं फिर

वहाँ से उठकर उस भाई को साथ लेकर अपने स्थान में चला आया ।

वहाँ बैठकर मैंने अपनी माँ के विषय में उस अजिताजी से कुछ पूछा और उसका उसने जो कुछ हाल बताया उसका संक्षिप्त हाल इस प्रकार है ।

मेरे रूपाहेली से चले जाने के बाद मेरी माता ने एक दो बार मुझे बुलाने के लिये उस औसवाल महाजन को बानेड़ भेजा था, जो यति जी महाराज के साथ उनको वहाँ छोड़ने गया था । उसके साथ मेरे रूपाहेली न आने पर, माँ को बड़ा रंज रहा, उसके बाद मेरे छोटे भाई बादल की मृत्यु हो गई, फिर माँ ने उस महाजन को फिर बानेण भेजा तो वह समाचार लाया कि मैं वहाँ नहीं हूँ और कहीं दूसरी जगह चला गया हूँ । फिर आठ दस महिने बाद उसको वहाँ और भेजा तो उसने आकर कहा कि, “रिणमल्ल तो किसी साधु जमात की सोबत में परदेश चला गया है, बानेण वालों को भी कुछ पता नहीं है ।

ये समाचार सुनकर माताजी बहुत दिनों तक रोती रहीं । उनसे खाना पीना भी एक तरह से छोड़ दिया, कोई भी उनसे मिलने आता तो वे कुछ भी नहीं बोलती थीं, उनके पास वाले एक घर में, इन्दा जी, जो आपके दादा के काका के बेटे भाई होते थे वे रहते थे, वे माता जी की सार संभाल रखा करते थे, दो तीन वर्ष बाद इन्दाजी उनको पुष्कर की यात्रा कराने ले गये, इसके दो तीन वर्ष बाद एकलसिगा की ढाणी से उनके कोई रिश्तेदार आये और वे माता जी को वहाँ ले गये ।

इन्दाजी भी उन्हें छोड़ने साथ गये, अजिता ने कहा कि, एकलसिगा की ढाणी के पास एक खेड़ा है जहाँ आपके पिता के नजदीक के कोई भाई बन्धु रहते थे वे ही उनको वहाँ ले गये, आपकी माताजी एक ही बार भोजन लेती थीं, और दिन रात भगवान के नाम माला फेरा करती थी; वे बहुत ही कम बोलती थी वे जब तक रूपाहेली रहीं मैं उनकी सेवा करता रहा, रूपाहेली से वे जब गई तब मुझे यहीं छोड़ गई,

मुझे उन्होंने कुछ जेवर दिये जिनकी कीमत ४००-५०० रुपये जितनी थी, कुछ समय तो मैं इन्दा जी के पास रहा, इन्दा जी की एक बेटी, जिसका नाम बाई प्रताप कुँवर है और वह आगूँचे ब्याही है, इन्दाजी के पास कुछ गायें आदि थी, उनकी पत्नि मर गई तो वे बाद में अपनी गायें वगैरह लेकर आगूँचा चले गये, माता जी के यहाँ से चले जाने के बाद फिर उनके कोई समाचार नहीं मिले इत्यादि ।

मैंने उस भाई से कहा कि तुम एकलसींगा या उसके पास जो खेड़ा है वहाँ जाकर माताजी के बारे में पता लगाओ मैं रुपये देता हूँ । ठाकुर साहब को भी यह बात सूचित की तो उन्होंने उसको उसी समय ऊँट की सवारी कर वहाँ जाने का हुक्म दिया । खर्च के लिये मैंने उसे १०) रुपये दिये, अजिता जी के मुख से माता की उस दशा का वर्णन सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण सा हो गया ।

उस दिन फिर मैंने ठाकुर साहब से विशेष बात चीत नहीं की, मैं मन ही मन अन्तर की अव्यक्त वेदना का दुःखानुभव कर रहा था, कि विधाता ने क्यों हम माता पुत्र को ऐसे क्रूर विधान का कष्ट भोगी बनाया, इसका कोई समाधान नहीं मिल रहा था, २०-२२ वर्षों से मैं इस दुनिया में इधर उधर भटक रहा हूँ । हजारों मनुष्यों के सम्पर्क में आता रहा हूँ । सैकड़ों स्त्री पुरुष मेरे पैरों पड़ रहे हैं, अनेक बड़े २ विद्वान और धनवान मेरा सम्मान करते रहे हैं । कई विशिष्ट स्त्रीयां श्रद्धापूर्वक मेरी भक्ति आदि करती रही है । अनेक विद्यार्थी और शरणार्थी जनों को मैं आर्थिक सहायता देता रहा हूँ, कई संस्थायें और कार्यालयों का संस्थापन और संचालन करता रहा हूँ । पत्र, पत्रिकायें छपवा रहा हूँ, पुस्तकें लिख रहा हूँ, जगह २ सभाओं में जा रहा हूँ । लम्बे चौड़े व्याख्यानादि दे रहा हूँ, लोगों को धर्म, समाज और देश की सेवा का उपदेश दे रहा हूँ, परन्तु जिस जननी ने मुझे यह मानव जीवन प्रदान किया और अपने रुधिर से उत्पन्न दूध का पान कराकर मेरा पालन-पोषण करती हुई, मुझे बड़ा किया, ११-१२ वर्ष तक मुझे अपनी

छाती से लगा कर और अत्यधिक स्नेह ममत्व और वत्सलता के साथ मेरा सर्व प्रकार संगोपन किया, उस अनाथ और असहाय माता की सुधबुध लेने के लिये मेरा भ्रान्त मन आज तक क्यों नहीं कुछ सोच विचार सका ? ऐसे २ अनेक विचारों से मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न होने लगा, उस संध्या को मैंने दूध भी नहीं पिया, और उस कमरे में अकेला अन्य-मनस्क होकर पड़ा रहा ।

मेरी आँखों के सामने माता के साथ के कुछ स्मरण, एक के बाद एक आकर खड़े होते और विलिन हो जाते, उनमें उस अन्तिम रात्री का भी स्मरण हुआ, “जब गुरु महाराज देवीहँस जी के साथ रूपाहेली से मेरी बानेण जाने की बात तै हो गई थी, और माता गुरु महाराज को प्रणाम कर घर लौटी, तब मुझे अपने पास सुलाकर वह सारी रात रोती सिसकती, मुझे अपने प्यार और अश्रुओं से नहलाती रही, मेरी मीची हुई आँखों के सामने उसकी वह करुणापूर्ण मूर्ति मानों खड़ी होकर मूक भाव से मेरी ओर टकटकी लगाये देख रही थी, और मुझसे मानों क्षीण आवाज में कह रही थी कि “भाई रिणमल्ल इस दुनियाँ में कोई तेरी माँ भी थी, जिसने तुझे जन्म देकर लालन-पालन करके बड़ा किया था ?”

वह सारी रात ऐसे मानसिक परिताप के कारण निद्रा विहीन व्यतीत हुई, सुबह से मेरी उत्कंठा उस भाई के आने की ओर लगी रही, जो माँ का पता लगाने गया था, मेरा अन्तर्मन कहने लगा कि माता अब जीवित नहीं है । उसके कोई अच्छे समाचार मिलने की आशा रखना व्यर्थ है ।

मैं मन को थामे बैठा रहा, कोई दो बजे वह अजिता जी आ गया, और ठाकुर साहब से जो कुछ समाचार कहे उनको सुनकर उन्होंने उसको मेरे पास भेज दिया—मैंने उसकी शकल से ही तमझ लिया था कि कोई अच्छे समाचार तो नहीं हैं, तथापि मैंने आदर पूर्वक उसे अपने पास बिठाया, और शान्ति पूर्वक पूछा कि कहो भाई क्या समाचार

लाये हो ? सुन कर वह आँसू भरी आँखों से बोला कि “महाराज कोई दो वर्ष पहले वि० सं० १९७६ के वैशाख वदि ७ को माँ साहब देवलोक पधार गये” सुनकर मेरे हृदय पर वज्राघात सा हुआ, उससे और कुछ भी पूछने की मेरी इच्छा नहीं हुई, मैंने उससे कहा, तुमने अभी रोटी नहीं खाई होगी सो जाओ रोटी खालो, बाद में मैं तुमको बुला लूंगा, वह रोता हुआ उठकर चला गया ।

मैंने अपने मन को संभाला, सोचा, जो जानना था सो जान लिया, अब यहाँ इन लोगों के सामने अपना मानसिक परिताप व्यक्त करना उचित नहीं है । शान्ति पूर्वक अपने स्थान पर शीघ्र पहुँच जाना ठीक होगा, इत्यादि विचार कर मैं स्वस्थ हो गया ।

दोपहर बाद ठाकुर साहब मेरे कमरे में आये उनका मन भी कुछ खिन्न सा था, पर मैं संभलकर उनसे अन्य बातें करने लगा, वे बोले— दो तीन वर्ष पहले पधारना हो जाता तो माताजी से मिलना हो जाता, मैंने कहा—किसी दुर्देव की कोई कुदृष्टि रही जिससे वैसा योग नहीं बना, यों माता का स्मरण अनेक बार मुझे होता रहा है, और जन्मभूमि इस रूपाहेली की याद भी बराबर आती रही है, पर अभी तक जिस प्रकार की जीवन चर्या में मैं बंधा हुआ था उसके कारण मुझे इन स्मरणों को मन से विस्मृत कर देने का ही प्रयास करते रहना पड़ा ।

कोई १७-१८ वर्ष पूर्व मैंने जैन धर्म की साधु दीक्षा ग्रहण करली थी, उस साधुपने के अनेक कठोर नियमों का मैं पालन करता रहा, उस अवस्था में किसी प्रकार के वाहन द्वारा प्रवास करना मेरे लिये सर्वथा वज्यं था, मैं सदैव पाद भ्रमण करता रहा, और मेरा भ्रमण प्रदेश प्रायः मालवा महाराष्ट्र, गुजरात के देशों में होता रहा । राजस्थान में विचरण करने का प्रसंग नहीं आया, साथ में उस चर्या में किसी गृहस्थ जन को पत्रादि लिखना अथवा उनसे व्यावहारिक मेल जोल रखना भी निषिद्ध था, और इतने दीर्घ काल में न मुझे कभी किसी कुटुम्बी जन का समागम ही कहीं हो सका, उस विरक्त चर्या में माता

पिता भाई बन्धु आदि सांसारिक संबन्धों का स्मरण करना, उनके प्रति अनुराग भाव को जागृत रखना या मोह ममत्व का चिन्तन करना भी वर्ज्य था ।

इन कारणों से माता की स्मृति के कभी-कभी होते रहने पर भी मैं उसको उत्तेजित नहीं होने देता था, परन्तु ज्यों-ज्यों मेरे विचारों में परिवर्तन होते गये, और मेरी मनोवृत्ति उस चर्या से उपरत होती गई त्यों-त्यों मैं अपने जीवन मार्ग को बदलने का सोच विचार करने लगा, अनेक प्रकार के मनोमंथन और आंतरिक आन्दोलनों के बाद मैंने उक्त रूप से महात्मा गाँधी जी द्वारा राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये जो आन्दोलन प्रारम्भ किया गया उसको मैंने अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति का अच्छा साधन मानकर मैं गुजरात विद्या पीठ की राष्ट्रीय शिक्षण योजना में सम्मिलित हुआ और मैंने उस साधु भेष और साधु जनोचित चर्या का परित्याग किया, इस प्रकार बन्धन मुक्त होने पर मैंने अपनी माता के दर्शन करने का यह प्रयास किया है । परन्तु देव को मेरा यह प्रयत्न अभीष्ट नहीं था, अतः मैं उसमें इस प्रकार आज निष्फल हो रहा हूँ । “दैवेच्छा बलीयसी” यह समझ कर मन को शान्त करना, यही मुझे अब अवसर प्राप्त कर्तव्य है ।

मैं उस दिन फिर ४ बजे बाद उस जैन उपाश्रय में गया, जहाँ यति-वर श्री देवीहँस जी रहते थे और मैं उनकी सेवा किया करता था । वह उपाश्रय रूपाहेली के जैन महाजनों के अधिकार में था, शायद बाद में फिर वहाँ कोई यति रहने नहीं आया, मुझे उसमें वह बड़ा लकड़ी का तख्ता वैसे ही पड़ा हुआ मिला जिस पर यति जी महाराज सोया करते थे और उसी पर से उतरते हुये वे गिर पड़े थे, जिसके कारण उनके दाहिने पैर के ऊपर की हड्डी टूट गई थी, जिसका उल्लेख अगले प्रकरण में किया जायगा, मैंने श्रद्धापूर्वक उस पट्टे पर मस्तक रख कर, अपने जीवन पथ पर चलने के लिये प्रेरित करने वाले उन स्वर्गवासी उपकारी गुरु को श्रद्धांजली समर्पित की ।

दूसरे दिन वहाँ प्रातः ९-१० बजे गाँव के ४०-५० बच्चों को इकट्ठा करवाया और मैंने उनको कुछ मीठाई आदि बांटी ।

सायंकाल ठाकुर साहब के साथ और और बातें होती रहीं, उन्होंने इच्छा प्रदर्शित की कि हम आपके पास हमारे ठिकाने के बच्चों को पढ़ने के लिये भेजना चाहते हैं, यहाँ पर पढ़ाई का कोई प्रबन्ध नहीं है । आपके अनुग्रह से इन बच्चों का जीवन सुधर जायगा, इत्यादि । ठाकुर साहब को प्रसंगोचित बातों में यह जानकारी हो गई थी कि पूना में मैं ऐसी शिक्षा संस्था का आयोजन कर रहा हूँ, जिसमें छोटे २ बच्चों की अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सके, मैं उन दिनों अपना आधा समय अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ में दे रहा था और आधा समय पूना के जैन विद्यालय में व्यतीत करता था, जिसकी स्थापना मैंने अहमदाबाद आने से पहले ही कर दी थी ।

मैंने ठाकुर साहब से कहा कि इस विषय में तो मैं आपको अहमदाबाद जाकर सूचित करूँगा, परन्तु मेरी एक छोटी सी भावना है कि आप यहाँ रूपाहेली में कोई छोटा सा एक ऐसा स्थान बना दें, जहाँ बैठकर ये जो बच्चे अभी चारभुजा जी के मंदिर में खुले दरवाजे में बैठ कर पुजारी द्वारा कुछ पट्टी पहाड़े आदि पढ़ते रहते हैं, उनको बैठने की ठीक जगह मिल जाय । बातचीत चलते समय ठाकुर साहब ने वैसा कोई मकान बनाने वाली बात की तरफ अपनी सहानुभूति बतलाई, तब मैंने उनसे पूछा कि ऐसा छोटा सा कच्चा मकान बनवाने में कितनाक खर्चा लगता होगा ? तो उन्होंने कहा कि कोई ३००/-४००/ रुपये में ऐसा ठीक मकान बन सकता है—तब मैंने उनसे निवेदन किया कि आप कोई अच्छी सी जगह देखकर वैसा मकान बनवा देने का कष्ट उठावें तो मैं उसके लिये ५००/ रुपये आपके पास भेज दूँगा, सुनकर ठाकुर साहब बहुत प्रसन्न हुये, मैंने कहा कि मैं अहमदाबाद जाकर आपसे इस विषय में पत्रव्यवहारादि करूँगा, आप मेरे लिये वैसी उपयुक्त भूमि का टुकड़ा प्रदान कर दें, मैं अपनी माता के नाम वह शिशु शाला बनवाना चाहूँगा ।

यहाँ पर प्रसंग वश यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि सन् १९२१ में जिस छोटी सी शिशुशाला के बनवाने में मन में जो अव्यक्त और अस्पष्ट संकल्प जन्मा था, उसने अब इस सन् १९६९ में साकार रूप धारण किया है, और उसी संकल्प के बल से कोई ३०,००० तीस हजार से अधिक रुपयों की लागत का एक सुन्दर भवन बनाया है जो रूपाहेली में आज एक भव्य स्थान के रूप में गांव वासियों को आनन्दित कर रहा है। आज इसमें राजकुमारी शिशु शाला चल रही है, जिसमें गांव के सभी वर्ग के कोई ५०-६० छोटे-छोटे नन्हे, मुन्ने पढ़ने और खेलने के लिये दिन भर जमे रहते हैं।

इस विषय में ठाकुर साहब से जो पत्र व्यवहार पीछे से होता रहा उनको अलग से प्रकाशित किया जायगा।

उसके दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से मैंने अहमदाबाद जाने का तै किया। ठाकुर साहब ने फिर कहा कि यहाँ से ६ मील दूरी पर आगूंचा गाँव में आपके काका इन्दा जी की बेटी ब्याही हुई है, उसको तथा उसके पति को समाचार भेज देने से वे आपसे मिल लेंगे, और जान पहचान आदि हो जायगी, पर मेरा मन उस समय खिन्न हो रहा था, जिससे मैंने वैसा कुछ करना नहीं चाहा, परन्तु ५) रुपये मैंने उनको दिये कि वे मेरी ओर से बाई प्रताप कुँवर को पहुँचा दें, मैं अब फिर कभी आऊँगा तो मिलने करने का प्रयत्न करूँगा।

दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से मैं अहमदाबाद के लिये रवाना हुआ, ठाकुर साहब ने हार्दिक भाव से मुझे बिदा किया, अपने ठिकाने की खास बग्घी में बिठाकर मुझे स्टेशन पहुँचाया।

आन्तरिक खेद के भार से भरे हुये मन को संभालता हुआ मैं गाड़ी में बैठा और अजमेर चला—ज्यों ही गाड़ी चली मैंने पीछे रूपाहेली की तरफ दृष्टी डाली, मेरी आँखों के सम्मुख मेरी माता की वह करुणा और वत्सलता भरी मुखाकृति झबकने लगी, जिसे मैंने २१ वर्ष पहले उसकी गोद से बिदा होते समय अन्तिम बार देखी थी, उस समय तो उसके

स्नेह प्रपूर्णा स्वर से शुभाशीष के सुमधुर शब्दों को मन में स्मरण करता हुआ इस स्टेशन से रवाना हुआ था, और आज उस माता के मृत्यु के दुःखद समाचारों का उद्वेगजनक स्मरण करता हुआ अन्य मनस्क होकर फिर उसी तरह अपने लक्ष्य हीन जीवन को भविष्य के अज्ञात मार्ग की ओर ले जा रहा हूँ ।

अजमेर से अहमदाबाद की गाँड़ी में बैठकर दूसरे दिन अपने स्थान गुजरात पुरातत्व मंदिर में पहुँचा वह दिन माघ शुक्ला १४ था, मेरी वह जन्म तिथी थी, उस दिन मेरे जीवन ने आयु के ३५ वें वर्ष में प्रवेश किया था ।



(५)

गुरु के सर्व प्रथम दर्शन

मेरे जीवन का वह सुप्रभात, जिसमें मेरे जीवन चक्र को गतिमान करने वाले एवम् मेरा हाथ पकड़ कर मुझे जीवन मार्ग में चलना सिखाने वाले गुरु के सर्व प्रथम दर्शन हुए ।

मेरे पिता श्री वृद्धिसिंह परमार जो सिरोही राज्य में जंगलात विभाग के एक अधिकारी के रूप में सेवा करते थे, वे पिछले कई महिनों से संग्रहणी रोग से पीड़ित रहते थे । मेरी माता जी सिरोही राज्य के एक खानदानी चौहान वंशीय जागीरदार की पुत्री थी । वह कुछ वर्ष पहले रूपाहेली में आकर रह गई थी । उसके साथ पिता का दिया हुआ एक परिचारक परिवार भी रहता था । पिताजी अक्सर अपनी जंगलात वाले विभाग का काम संभालते हुए समय समय पर रूपाहेली आ जाया करते थे । इस बार वे कुछ अधिक बीमार रहे तो वे कुछ महिनों का अवकाश लेकर रूपाहेली चले आये । उनको घोड़े की सवारी का बहुत शौक था और यों वे बहुत अच्छे शिकारी थे । सिरोही के पूर्व वाले घने जंगल और पहाड़ों से घिरे हुए प्रदेश में उनका अधिक रहना होता था और उन जंगलों में शेर, बघेरा, चीता और जंगली सूअरों का उनको अक्सर सामना करते रहना पड़ता था । इसलिये वे बहुत अच्छे शिकारी के रूप में उस प्रदेश में मशहूर थे । दो चार दफे सिरोही के तत्कालीन महाराज के साथ शेर के शिकार में भी बड़ा योग दिया था । उससे महाराज उन पर बहुत प्रसन्न रहते थे ।

वे जब रूपाहेली आये तब बहुत क्षीण मालूम दिये । सवारी के लिये उनके पास एक बहुत अच्छी जाति की घोड़ी थी, उस पर सवार

होकर जब वे आए तो संध्या हो चुकी थी। मेरी माँ घर में देव मूर्ति के सामने दीप जलाकर हमेशा की तरह कुछ प्रार्थना कर रही थी। मैं भी माँ के पास मूर्ति के सामने हाथ जोड़े बैठा था। इतने में दूर से पिताजी की घोड़ी की हिनहिनाहट वाली तेज आवाज सुनाई दी। माँ को कई महिनों से पिताजी के आने जाने का कोई समाचार नहीं मिला था, अकस्मात् दूर से घोड़ी के हिनहिनाहट की मीठी आवाज माँ के कानों में पड़ते ही वह एक दम खड़ी हो गई और मेरा हाथ पकड़ कर बोली—“बेटा ! देखतो, रावली सवारी आ रही है।

मैं दौड़ता हुआ गवाड़ी के दरवाजे के पास पहुंचा, तभी पिताजी दरवाजे के पास पहुंचकर घोड़ी से नीचे उतरे और आँगन में आकर खड़े होकर माता को पुकारा। पिताजी बहुत थके हुए मालूम हुए। माता ने तुरन्त अपने पीहर वाले निजी परिजन को धीरे से कहा—“जाओ तुरन्त उस पलंग को उठा लाओ, यहाँ बिछा दो”।

हमारा वह दो कमरों वाला कवेलू से ढका हुआ कच्ची मिट्टी का एक छोटा सा घर था। उसके सामने कुछ और चौड़ा अच्छा सा आँगन था। सामने एक और छोटा सा मकान था, जिस पर मेड़ी बनी हुई थी, जिसमें माँ सोया करती थी। चौक में एक छोटा सा नीम का वृक्ष था। जिसके आस पास मिट्टी का बना हुआ एक गोल चबूतरा था, जो चारों ओर से लीपा हुआ था। बहुत करके गर्मी के दिन थे। पिताजी के लिये वह पलंग उसी लीमड़ी के नीचे बिछा दिया गया। जिस पर वे तुरन्त लेट गये। कुछ समय विश्रांति के बाद वे माँ से कहने लगे—“मुझे दो दिन से बहुत दस्तें लग रही हैं। बड़ी मुश्किल से मैं यहाँ तुम्हारे पास पहुंच सका हूँ। शायद अर्गवान जल्दी ही मुझे अपने पास बुलालें।”

मैं पास में खड़ा था मेरी तरफ देखकर बोले—“बेटा ! दूर क्यों खड़ा है, मेरे पास आ। मैं अबकी बार बहुत बीमार हो गया हूँ। इसलिये तेरे खाने पीने की कोई अच्छी चीजें नहीं लाया हूँ। रास्ते में एक जगह अच्छे पेमली बेर मिल गये थे, वे जरूर थोड़े से ले आया हूँ।”

माँ पिताजी की हालत देखकर बहुत चिंतित हुई और उठकर घर में गई। चूल्हे पर दही की गाढ़ी छाछ में बाजरी के आटे की राब पकाई और उसे पिताजी के पीने को ले आई। पिताजी उसे पीकर बोले—“भगवान ने अमृत की घूंट दे दी है। मुझे अब थोड़ा सोने दो और कुछ भी पूछना ताछना मत ! रात निकल जाने से मेरे जी को शांति मिलेगी।”

ऐसा कहते हुए चादर ओढ़कर वे निश्चेष्ट भाव से सो गये। माँ सारी रात उनके सिरहाने के पास भगवान के नाम की माला फेरती हुई बैठी रही और पिताजी सारी रात वैसे ही निश्चेष्ट भाव से पड़े रहे।

गर्मी के दिन थे सवेरा जल्दी हुआ। पिताजी ने करवट बदली और मुंह से चादर हटाकर आँखें खोलीं तो माँ ने पूछा—“क्यों, तबियत कैसी है ? रात को नींद आई ?”

“हाँ, खूब अच्छी नींद आई। ऐसी नींद मुझे कई महिनों से नहीं आई”—पिताजी बोले, और फिर उठकर बिछौने में बैठ गये।

दिन निकलने पर आस पास वाले परिचित जन मिलने आये, क्योंकि कई महिनों से पिताजी के आने जाने की खबर नहीं मिली थी और इस प्रकार वे अचानक घर आये, इसलिये पड़ोसी जनों को कुछ आश्चर्य हुआ। बाद में धीरे धीरे पिताजी ने अपने संग्रहिणी के उग्र रोग की बात की और बोले—“इसके इलाज के लिये मैं यहाँ कुछ दिनों की छुट्टी लेकर घर चला आया हूँ।”

मेरे पिताजी का स्नेह संबन्ध रूपाहेली के स्व० वृद्ध ठाकुर चतुर सिंह जी से बहुत घनिष्ट था। वे ठाकुर स्वयं संग्रहिणी के बहुत पुराने भुक्त भोगी रोगी थे उन्होंने इस रोग निवारण हेतु कई बड़े २ डाक्टरों वैद्यों और हकीमों से इलाज कराये थे। और इसके लिये उन्होंने हजारों रुपये खर्च किये थे। वे अपना आखिरी इलाज अजमेर में रहने वाले

जैन यति अमरहंस जी से करवा रहे थे। यति अमरहंस जी अपने समय के अजमेर मेरवाड़ा में ही नहीं, बल्कि जोधपुर, बाडमेर, जालोर आदि इलाकों में भी एक प्रसिद्ध वैद्य माने जाते थे। उनको वैद्यक के कुछ विशिष्ट रहस्य प्रयोग सिखाने वाले उनके काका गुरु श्री देवी हंस जी यतिवर थे, जो स्वभाव से निस्पृही और निस्संग जैसे थे। कहीं एक स्थान बनाकर रहना उन्हें पसन्द नहीं था। वे सदा अनेक स्थानों में घूमा करते और अपने वैद्यकीय विशिष्ट ज्ञान द्वारा अनेक रोगियों को रोग मुक्त कर उनकी श्रद्धा के भाजन बने हुए थे। वे देवीहंस जी कुछ दिनों के लिये अपने गुरु भाई के शिष्य अमरहंसजी के आग्रह से अजमेर आये हुए थे। ठाकुर चतुरसिंह जी रूपाहेली वाले अपने उपचार के लिये अजमेर में यति अमरहंस जी के पास जब गये, तो उस समय देवीहंस जी महाराज वहां विराजमान थे। वैद्यवर अमरहंस जी ने ठाकुर चतुर सिंह जी से कहा कि—“ठाकुर यदि जीना चाहो तो मेरे परम गुरु देवी हंस जी के चरण पकड़ लो। यदि इनकी कृपा हो गई तो आप अवश्य रोग मुक्त हो जावेंगे और दीर्घ जीवी बन जावेंगे।”

यह सुनकर ठाकुर चतुरसिंह जी ने उनके चरण पकड़ लिये और चरणों में मस्तक रखकर आर्तस्वर में बोले:—“गुरुदेव मुझे जीवन दान दें। मैं अपने रोग के सब उपाय करके थक गया हूँ और मुझे अपने जीवन की कोई आशा नहीं रही है। आप कृपा करके मेरे गाँव चले। वहाँ यतियों का पुराना उपाश्रय है। आप वहीं रहें और मुझे निरोग बनावें। मैं आजन्म आपका सेवक बना रहूँगा।”

यति देवीहंसजी जैसे एक सिद्धहस्त वैद्य थे वैसे ही वे बहुत बड़े एवम् मर्मज्ञ ज्योतिर्विद भी थे। उन्होंने ठाकुर साहब की जन्म कुंडली देखी। उनका निश्चय हुआ कि ठाकुर दीर्घायुषी हैं और रोग मुक्त हो सकेंगे। ऐसा ही कुछ सोच विचार कर वे रूपाहेली चले आये। ठाकुर साहब ने वहाँ पर यतिजी को बड़े सम्मान से रखा। यतिजी ने उनकी

चिकित्सा शुरू की और दो तीन माह में ठाकुर साहब को रोग मुक्त कर दिया। गाँव के ओसवाल, माहेश्वरी तथा ब्राह्मण आदि के भी यतिजी बड़े श्रद्धा भाजन हो गये और कोई भी रोगी उनके पास जाता तो उसकी वे निष्काम-भाव से चिकित्सा किया करते थे। बहुत-सी औषधियाँ वे स्वयं अपने हाथ से तैयार किया करते थे।

मेरे पिता जब बीमार होकर रूपाहेली आये तो दूसरे ही दिन सवेरे ठाकुर साहब उनसे मिलने के लिये हमारे घर पधारे। पिताजी इतने अशक्त थे कि ठाकुर साहब का स्वागत करने के लिये वे खड़े तक न हो सके। ठाकुर साहब उनके पास पलंग पर बैठ गये और बीमारी आदि की बातें पूछने लगे। ठाकुर साहब ने तुरन्त कहा कि यहाँ पर बहुत बड़े वैद्य यति आये हुए हैं। उनका इलाज करने से आप बिल्कुल अच्छे हो जाएंगे। चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं है। मुझे भी इन्हीं ने जीवनदान दिया है। मैं जाकर उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे यहाँ पधार कर आपकी अवस्था का परिचय प्राप्त करें, आदि प्रेम भरी मीठी बातें करके ठाकुर साहब वहीं से सीधे यतिजी से उपाश्रय में पधारे और उन्हें मेरे पिता की सारी स्थिति बताई। तब तक मध्यान्ह हो चुका था, कुछ गर्मी भी अधिक थी। इसलिये यतिजी हमारे घर पिताजी को देखने न आ सके और एक जैन महाजन द्वारा कहलाया कि मैं कल सुबह जरूर देखने आऊँगा।

दूसरे दिन सवेरे प्रातः ८ बजे एक ओसवाल महाजन, जिनका संबंध हमारे परिवार के साथ लेन देन आदि का रहता था, उनको साथ लेकर यतिजी महाराज हमारे घर पधारे। गवाड़ी में प्रवेश करते ही माँ ने सामने जाकर उनके चरणों में मस्तक नवाँया। मैं भी उनके पैरों पड़ा। ज्योंही मैं उठा और हाथ जोड़े उनके सामने खड़ा हुआ त्योंही मेरी तरफ बड़ी मधुर दृष्टि से देखकर बोले—“बेटा ! तेरा नाम क्या है ?”

मैंने हाथ जोड़े हुए कहा—“रिणमल ।”

सुनकर यतिजी महाराज बोले—वाह-वाह नाम तो बहुत अच्छा है।—ऐसा कहते हुए वे पिता के पलंग के पास गये और पास ही नीमड़ी के चबूतरे पर उनके बैठने के लिए जो छोटी सी दरी बिछाई थी, उस पर बैठ गये। फिर मधुर स्वर में उनसे पूछने लगे “ठाकुर कितने दिन से बीमार हो ? कहां रहते हो ?” आदि दो चार बातें करके उनका हाथ पकड़ कर नाड़ी देखी, चेहरे की तरफ देखकर उनके मुखाकृति आदि के भाव जानने का प्रयास किया—बोले—“दवा करने पर ठीक हो जाओगे, कोई चिन्ता करने जैसी बात नहीं है। ईश्वर की दया होगी तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। बीमारी बहुत पुरानी है इसलिये मिटने में कुछ समय जरूर लगेगा।”

पिताजी उस समय इतने थके हुए थे कि कुछ अधिक बोल न सके—केवल यही कहा—“मेरे लिये तो भगवान आप ही हैं। मैं आपकी शरण में आ पड़ा हूँ। इसलिये मुझे अब चिन्ता काहेकी।”

गुरु महाराज उठकर चलने को हुए तो माँ से बोले—मैं कुछ दवा की पुड़िया दूंगा, जिसको मौली छाछ में मिलाकर शाम तक तीन दफे इन्हें देना ! कल सुबह मैं फिर आकर देख जाऊंगा।

यतिजी अच्छे लम्बे कद के और भरावदार शरीर के थे। उनका चेहरा बड़ा सौम्य और भव्य था। चौड़ा नाक था और लम्बी आँखें। सिर पर रेशम के तार जैसे सफेद केश थे जो गरदन तक लटकते थे। श्वेत मूछें थी और आवाज में बड़ा रणत्कार था। वे बहुत ही मधुर भाषी और हँसमुख थे। उनके प्रथम दर्शन से ही मेरे मन में उनके प्रति एक अव्यक्त भक्ति भाव अंकित हो गया। उन्होंने मेरी माँ से कहा—“ठुकराणी ! इस बच्चे को मेरे साथ ले जाता हूँ। इसके साथ दवा की पुड़िया भेजूंगा।”

माँ सुनते ही मुझे घर में ले गई और पिताजी द्वारा लाये हुए नये पाजामा कुर्त्ता मुझे पहनाये और बोली—“जा, गुरां सा के साथ दवा ले आ।”

मैं नया कुर्ता पाजामा पहिन कर खुशी-खुशी गुराँसा के साथ खाना हुआ। वे नये कुर्ते पाजामें में मुझे प्रसन्न देख कर बोले—“वाह तू तो बड़ा अच्छा लग रहा है।” और उन्होंने मुझे उनकी उँगली पकड़ कर चलने को कहा—मैं तुरन्त उनके दाहिने हाथ की उँगली पकड़कर उनके साथ चल पड़ा।—“यही वह सर्व प्रथम क्षण है जो मेरे जीवन चक्र को गतिमान बनाने वाला बनता है।

रास्ते में उन्होंने मुझे पूछा—‘तुम कितने भाई हो ? तुम्हारी कोई बहिन भी है, तुम्हारा ननिहाल कहाँ पर है, तुम्हारी कोई मोसी भी है।’—ऐसी कुछ बातें पूछते गये और मुझे जो कुछ जानकारी थी उसे मैं कहता गया। उपाश्रय पहुँचकर गुरु महाराज अपने आसन पर बैठ गये और अपने कर्मचारी से दवा की वह पेटी मँगवाई जिसमें उनकी रोजमर्रा के काम की दवाइयाँ रहती थीं। एक दो छोटी शीशियाँ निकाली और कागज की तीन पुड़िया बना कर उनमें वह थोड़ी-थोड़ी दवा डाल कर पुड़िया बाँध कर मेरे हाथ में दी और बोले—“बेटा, ये पुड़िया लेजा कर अपनी माँ को देना और मोली छाछ में मिलाकर ठाकुर साब को तीन दफ़े पिला देना।”

मैं उनके पैरों में पड़कर दवा की पुड़िया लेकर घर चला आया और माँ को दे दीं। माँ ने उसी समय थोड़ी छाछ में एक पुड़िया मिला कर पिताजी को पिलादी। यतिजी माँ को कह गये थे कि ठाकुरसा को बाजरे के आटे की छाछ में रँधी हुई राब के सिवाय कोई चीज खाने के लिये न देना।

उसके बाद गुरु महाराज प्रसंगानुसार हमारे घर पधार जाया करते और पिताजी की अवस्थानुसार दवा वगैरह दे दिया करते। धीरे धीरे पिताजी स्वस्थ होने लगे। यद्यपि उनका वह रोग निर्मूल होने जैसा नहीं था तथापि उसमें बहुत कुछ सुधार होने लगा था। समय समय पर हमारे घर गुरु महाराज आते रहते और हमारे पिता के खानदान की वे बातें सुना करते जो मेरे पिता के बाल्यकाल में

घटी थी। इस कारण से गुरु महाराज के मन में मेरे माता पिता पर एक प्रकार से आदर भाव उत्पन्न हो गया।

मेरी अवस्था उस समय तो दस वर्ष की थी। तब तक मैंने कोई अक्षर ज्ञान प्राप्त नहीं किया था। ठीक स्मरण नहीं है कि उसके पहले के दो चार बरस मेरा अधिक रहना कहाँ हुआ था। शायद कुछ समय तक पिताजी के साथ जंगलात विभाग के कुछ स्थानों में बीता हो, क्योंकि मुझे सिरोही के पूर्व तरफ की आबू के नीचे वाली पहाड़ियों का अस्पष्ट स्मरण होता रहा है। माँ ने सारनेश्वर महादेव के तीर्थ स्थान की कुछ बातें कहीं थीं। जो चौहानों के इष्टदेव समझे जाते हैं। सिरोही के उस पहाड़ी प्रदेश की किसी एक ढाणी में मेरी ननिहाल की छोटी सी जागीर थी। पर मैं अपनी माता के साथ एकाध बार अवश्य कभी वहाँ गया था, ऐसा मुझे अस्पष्ट आभास जरूर होता रहा है। मेरे नाना काफी वृद्ध उमर के होंगे उनकी सफेद दाढ़ी का चित्र मेरे मन पर सदा अंकित रहा है। इसी तरह उस जागीर का छोटा सा गांव, मेरे नाना के दो पक्के घरों का आभास भी मेरे मन पर जमा हुआ था।

एक दफे अपने पिता के साथ उनकी घोड़ी पर बैठ कर आबू के अचलेश्वर महादेव की यात्रा के लिये गया था, उसका मुझे बहुत स्पष्ट स्मरण है। क्योंकि घोड़ी पर बैठने के समय मैं अपनी चपलता के कारण उस पर से नीचे गिर गया और मेरी ठुड़ी पर एक पत्थर की चोट लग गई, जिससे खून बहा और उसको रोकने के लिये कपड़े का टुकड़ा जलाकर घाव में भरा था। बहुत दिनों तक रूपाहेली में उसका स्मरण बार बार मेरी माँ मुझे कराती रहती थी। उस समय मेरी अवस्था प्रायः आठ वर्ष जितनी होगी, उसके बाद ही पिताजी बीमार होकर रूपाहेली चले आये। यह प्रसंग विक्रम संवत् १९५४ के आस पास का है।

कुछ समय बाद पिताजी का रोग फिर से बढ़ने लगा तब एक दिन गुरु महाराज दवाई के अनुपान के रूप में मीठे नींबू का रस यानी

मोसम्मी का रस देना चाहते थे । परन्तु उस समय वह अजमेर के अलावा कहीं उपलब्ध नहीं थी । तब गुरु महाराज स्वयं अजमेर गये और वहाँ से एक टोकरी मोसम्मी की लाये । जिसका मुझे खूब अच्छी तरह स्मरण है । क्योंकि उस मोसम्मी की कुछ रसदार पेशियाँ सबसे पहले मुझे खाने के लिये दी थी । इस प्रकार गुरुजी ने जो बड़े प्रेम से मोसम्मी की पेशियाँ दी थी, उसके मीठे रस का जीवन में सर्वप्रथम अनुभव किया । मुझे स्मरण है कि मोसम्मी का रस मैंने अपने हाथ से निकाल कर पिताजी को पीने को दिया था । पिताजी का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था तब उनको यह आभास हो गया था कि मेरा जीवन अब थोड़े ही समय में समाप्त होने वाला है ।

एक दिन सवेरे गुरु महाराज पिताजी को देखने के लिये आये तो उनको भी यह आभास होगया कि अब इनका शरीर अधिक समय टिकने वाला नहीं है । तब भी एक उत्तम एवम् सहृदय वैद्य की तरह वे पिताजी को आश्वासन पूर्ण वचनों द्वारा प्रसन्न रहने का उपदेश दे रहे थे । मैं उनके पास ही बैठा था तब पिताजी ने हाथ जोड़ कर कहा— 'इस बालक को आपकी शरण में देता हूँ । इसको ऐसा आशीर्वाद प्रदान करें जिससे हमारे कुल का उद्धार हो ।'

गुरुजी ने शान्त स्वर में कहा— "तुम्हारा पुत्र नसीबदार हैं । वह तुम्हारे वंश और कुल का गौरव बढ़ाएगा ।"

यह सुनकर पिताजी के आँखों से आँसू गिरने लगे और वे गुरु महाराज को हाथ जोड़ कर बिछौने पर लेट गये । यह सब देख सुनकर माताजी भी बहुत खिन्न हुई और आँखों से आँसू पोंछने लगी । गुरु महाराज हमारे घर से उपाश्रय जाने के लिये विदा हुए तो माताजी उनके पैरों में पड़ी और मुझे कहा—बेटा रिणमल ! गुराँसा. को पहुँचा आ ।'

मैं उनका हाथ पकड़े हुए उपाश्रय तक गया और पैरों में पड़ कर लौटने लगा तो गुरु महाराज ने बहुत ही स्नेह भाव से मेरे मस्तक पर

और गालों पर हाथ फेरा और बोले—‘बेटा, ठाकुर सा. की खूब सेवा करते रहना ।’

उस दिन का यह स्मरण मेरे मन पर आज भी इसी तरह अंकित है ।

फिर शायद दो तीन दिन के बाद ही पिताजी की मृत्यु हो गई । उनकी अन्त्येष्टि क्रिया के लिये गांव के मुख्य मुख्य जन सम्मिलित हुए और उनकी अर्थी को उठा कर गांव के पूर्व में जो मानसी नदी है उसके बीच में ले जाकर पिताजी के शरीर का अग्निदाह किया गया । अग्निदाह के लिये मेवाड़ की प्रथा के अनुसार मिट्टी की हँडिया में घर से जो अग्नि ले जाई जाती है, उस हँडिया को उठाकर मैं अरथी के आगे आगे चला था, जिसका भी स्पष्ट स्मरण मुझे अच्छी तरह बना हुआ है ।

पिताजी की मृत्यु तिथि मुझे ठीक याद नहीं है, परन्तु इतना स्पष्ट स्मरण है कि उन दिनों गांव के ठाकुर के ज्येष्ठ पुत्र स्व० श्री लक्ष्मण सिंह जी का विवाह उत्सव चल रहा था । बड़ी चहल पहल मची थी, ऐसी चहल पहल मैंने अपने गांव में पहले नहीं देखी थी । विवाहोपलक्ष में गढ़ में होने वाले एक दो भोजन समारंभों में भी मुझे जाना पड़ा था, जिसकी मुझे अच्छी तरह याद है । उन्हीं दिनों पिताजी की मृत्यु हुई थी । रूपाहेली के ठाकुर सा० श्री चतुरसिंह जी ने अपने जीवन वृत्त सम्बंधी जो इतिहास की पुस्तक लिखी है, तदनुसार उक्त विवाह उत्सव का समय विक्रम सम्वत् १९५५ का माघ शुक्ल पक्ष लिखा है । अतः पिताजी की मृत्यु भी उसी समय हुई ऐसा निश्चित होता है ।

पिताजी की मृत्यु के बाद जो द्वादशा आदि कार्य किये गये उनका कुछ कुछ आभास मुझे है । शोक के कुछ महिने व्यतीत होने के बाद गुरु महाराज एक दिन मेरी माँ को सान्त्वना देने के लिये हमारे घर पधारे । मीठे शब्दों में माताजी को कुछ आशीर्वादात्मक आश्वासन देकर बोले—“रिणमल को मेरे पास भेजते रहो । मैं इसको पढ़ाना

चाहता हूँ। तुम्हारा बेटा बहुत बुद्धिमान होगा और तुम्हारे घर की प्रतिष्ठा बढ़ाएगा।”

माँ के कहने से मैं फिर नियमित रूप से गुरु महाराज के पास जाने लगा। एक दिन शुभ मुहूर्त में मुझे स्लेट पाटी पर बरंगमाला सिखाना प्रारम्भ किया। बाद में गुरु महाराज ने जैन धर्म का सर्वादि मंगल पाठ रूप नमो अरिहंताणम् आदि कंठस्थ कराया। बाद में शुद्ध शब्दोच्चारण की दृष्टि से कातंत्र व्याकरण के कुछ प्रारम्भिक सूत्रों को भी कंठस्थ कराया। साथ में शुद्ध शब्दोच्चारण की शिक्षा भी देते रहे। उपसर्ग हरम् आदि प्राकृत भाषा के कुछ सूत्र भी सिखाते। उपाश्रय के पास ही एक चारभुजा जी का वैष्णव मंदिर था। उसका पुजारी महाजनों आदि के बच्चों को पढ़ी पहाड़े आदि सिखाया करता। मैं भी दुपहर के समय अन्य बालकों के साथ पढ़ी पहाड़े भी सीखता रहता था। रात में अपने घर माँ के पास रहता और दिन में विशेष समय गुरु महाराज के पास रहता था।

कोई छह महिने बाद मेरी माता को ले जाने के लिये काका बाबा के कोई भाई आये थे। जिनका मुझे पूरा परिचय याद नहीं है। माँ के कहने से मुझे इतना अवश्य ज्ञात है कि वह अपने पिता की इकलौती बेटी थी। उसका कोई सगा भाई नहीं था। इसलिये मेरे नाना की मृत्यु के बाद उनकी जो जागीर थी वह उनके नजदीक के रिश्ते वाले भाइयों ने कब्जे में कर ली थी। वे रिश्तेदार भाई माता को अपने साथ गाँव ले जाने को आये थे और माता जी उनके साथ अपने पीहर के संबन्धियों के यहाँ जाकर कुछ महिने रही थी। मैं भी माँ के साथ ही था। वह गाँव कौन सा था इसका मुझे ठीक स्मरण नहीं रहा। लेकिन वह आबू की पूर्व उपत्यका पिडवाड़ा में ही कहीं था। मेरे नाना की जागीर भी उसी के समीप दस बीस माइल के अन्दर थी। माताजी जब अपने पीहर वाले संबन्धियों के यहाँ गईं तो वह कभी अपने जन्म गाँव में गईं हो ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता। हाँ, सारनेश्वर महादेव की यात्रा के लिये वह अपने चचेरे भाई आदि के साथ अवश्य गई थी। मैं भी उसके साथ था, जिसका मुझे स्पष्ट स्मरण है।

शायद कोई दो चार महिने बाद फिर हम लोग अपने घर रूपाहेली वापस आये । तब अपने निजी परिवार का एक कुटुम्ब भी माताजी साथ लेते आये । रूपाहेली में मेरे पिता के काका के बेटे इन्द्र सिंह जी (इंद्राजी) भी रहते थे । उनकी एक पुत्री थी जिसका नाम प्रताप कुंवर था । मेरा एक छोटा सगा भाई था, जो पिताजी की मृत्यु के समय प्रायः पाँच छह वर्ष का था । उसका नाम बादल था । मैं माता के साथ जब अपने ननिहाल वालों के यहाँ गया तब मेरे उस छोटे भाई को मेरे काका इन्द्राजी ने अपने पास रख लिया था । इन्द्राजी के कोई पुत्र नहीं था । इसलिये वे मेरे छोटे भाई पर बहुत प्रेम रखते थे । उसे अपना ही पुत्र मान कर उसका लालन पालन किया करते थे । मेरी उम्र उससे ५, ६ वर्ष बड़ी थी और मैं कुछ अधिक चपल था । इसलिये माता मुझे हमेशा ही अपने पास रखती थी ।

मेरी माता रंग रूप में बहुत सुन्दर थी । मुखाकृति उसकी बड़ी रम्य थी । उसके सिर के बाल इतने लम्बे थे कि जब वे खुले होते तो कमर से भी नीचे तक के भाग को स्पर्श करते थे । मुझे याद है कि जब वह अपने बाल खोलकर बैठती तो मैं उसकी पीठ के पीछे छिप कर उन बालों से अपने शरीर को ढक लेता था । कंठ उसका बहुत मधुर था । वह प्रातः काल उठकर बहुत से भजन गाया करती थी । जिनको मैं उसकी गोद में लेटा हुआ सुना करता था । उसको बहुत सी पुरानी कथा कहानियाँ याद थीं । जो समय समय पर वह अपने पास आने-जाने वाली स्त्रियों को सुनाया करती थी ।

अपने ननिहाल से वापिस आने के बाद मैं फिर गुरु महाराज के पास आने जाने लगा और वे मुझे धीरे धीरे जैन धर्म के कुछ स्तुति स्तोत्र आदि कंठस्थ कराते रहते थे, साथ में चाणक्य नीति आदि के संस्कृत श्लोक भी सिखाते थे ।

प्रायः यह समय विक्रम सम्वत् १९५६ का था । उस साल राज-

स्थान में भयंकर अकाल पड़ा था। जिसके कारण हजारों मनुष्य भूख के मारे मर गये थे। रूपाहेली में भी ऐसे बाहर से आने वाले कई जन भूख से तड़फड़ा कर मरते देखे गये। गुरु महाराज बहुत दयालु थे। अतः ऐसे भूख से पीड़ित जनों को रोज़ कुछ रोटियाँ खिलाते रहते थे। गुरु महाराज के पास कोई रोटियाँ बनाने वाली स्त्री नहीं थी। जिससे वे मुझे रोज़ दो तीन सेर अनाज देकर मेरी मां के पास भिजवा देते थे। माँ उस अनाज को पिसवा कर स्वयं उसकी रोटियाँ बनाकर मुझे दे देती। जिनको लेकर मैं गुरु महाराज के पास चला जाता था। दोपहर के समय रोज़ पांच दस भूख से पीड़ित जन उनके उपाश्रय के आगे आकर बैठ जाते थे और मेरे द्वारा उन गरीबों को यथा योग्य रोटियाँ दिलाया करते थे।

गुरु महाराज के पास कोई विशेष धन संचय नहीं था, परन्तु वे बहुत अच्छे वैद्य थे। इसलिये रूपाहेली के ही नहीं परन्तु आस पास के गांवों के कुछ महाजन एवम् राजपूत सरदार आदि भी उनके पास अपनी चिकित्सा कराने के लिये आते रहते थे और रोग मुक्त हो जाने पर यद्यपि गुरुजी उन रोगियों से रुपया पैसा माँगते नहीं थे, तथापि वे लोग अपनी ओर से गुरु महाराज को कुछ न कुछ रुपयों पैसों की भेंट अवश्य कर जाया करते थे।

जब छप्पन का वह भयंकर दुष्काल पड़ा तो अपने पास चिकित्सा कराने आने वाले उन रोगियों से रुपया पैसा भेंट स्वरूप न लेकर उसके बदले अनाज उनको यथाशक्ति भेज देने के लिये कह देते थे। इस तरह जो अनाज उनके पास आता रहता था, उसका उपयोग वे उक्त प्रकार से उन दुर्भिक्ष पीड़ितों को रोटियाँ खिलाने में करते थे। ऐसा क्रम कोई पाँच छह महिनों तक चलता रहा।

संवत् १६५७ के प्रायः वैशाख मास में एक दिन प्रातःकाल गुरु महाराज जब अपने सोने के ऊँचे तख्त से नीचे उतरने लगे तो उनको कुछ चक्कर आ गये और वे नीचे गिर पड़े। उनके दाहिने पुट्टे पर

गहरी चोट आई और हड्डी टूट गई। यद्यपि ठाकुर सा. चतुरसिंहजी ने मुझे एक दफे कहा था कि यतिजी की अवस्था उस समय १०८ वर्ष थी, परन्तु मेरी कल्पना से उनकी आयु ६५ या १०० वर्ष के बीच अवश्य होगी। क्योंकि वे जब बीमार पड़े तब उनके पास उनके परिचित यतिजन बाहर से आते जाते रहते थे और उनसे जब कोई बातचीत होती थी तब वे बोला करते थे कि मेरा आयुष्य अब प्रायः सौ वर्ष जितना होने जा रहा है। इन शब्दों का वे बार बार व्यवहार किया करते थे। जिसकी ध्वनि मेरे कानों में आज तक भी गूँज रही है।

तख्त पर से गिर जाने से उनकी जो पुट्टे की हड्डी टूट गई थी, उसका ठीक होना असम्भव था। यद्यपि वे स्वयं बहुत अच्छे वैद्य थे और ऐसे रोगों को मिटाने के लिये लेप आदि के उपचार भी वे अनेक जानते थे, तथापि उनको निश्चय हो चुका था कि मेरा इस हड्डी का टूटना जीवन का अन्त ही सूचित करता है। इसलिये वे इस रोग के मिटाने के लिये कोई खास उपचार करने कराने का प्रयत्न नहीं करते थे। भेड़ के दूध जैसे मालिश के कुछ उपचार वे करते रहते थे। जिस दिन से वे तख्त से गिरे, उस दिन के बाद वे कभी उठ कर खड़े न हो सके। रूपाहेली के ठाकुर तथा अन्य महाजन उनके शरीर का सुख प्रश्न पूछने नियमित सदैव आया जाया करते थे। वे जो थोड़े बहुत अन्न और दूध का सेवन करते थे वह प्रायः मेरे घर से मेरी माँ तैयार करके भेज दिया करती थी। ठाकुर साहब अपने गढ़ से हलवा वगैरह बनवाकर भेजा करते थे, पर गुरु महाराज उसका उपयोग कदाचित ही करते थे।

एक दिन चित्तौड़ उदयपुर के राजमार्ग पर बसे बानेण ग्राम के निवासी धनचंद्र यति उनके शारीरिक सौख्य की प्रच्छा करने के लिये आये। वह यति कुछ वर्षों पहले गुरु महाराज के पास रूपाहेली में कुछ समय वैद्यक सीखने के लिये रहे थे। इसलिये गुरु महाराज पर

उनका कुछ विशेष भक्ति भाव था। उन यति ने गुरु महाराज से प्रार्थना की—“मैं आपको अपने स्थान पर ले जाना चाहता हूँ और वहाँ पर मैं आपकी सेवा सुश्रुषा करना चाहता हूँ।” गुरु महाराजको यह विशेष ज्ञान नहीं था कि उसका गांव बानेण किस जगह पर है क्योंकि वे कभी उस स्थान पर गये नहीं थे। यति धनचन्द ने कहा कि मेरा स्थान चित्तौड़गढ़ के पास ही है। यह सुनकर गुरु महाराज के मन में आया कि थोड़े दिनों बाद इस शरीर का अन्त होने ही वाला है। इसलिये चित्तौड़गढ़ जैसे तीर्थ स्थान के निकट इस शरीर का विलय हो तो उत्तम होगा।

गुरु महाराज जैन धर्म के शत्रुजय, गिरनार, आबू, तारंगा, ऋषभदेव आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों की अपने जीवन में कई बार यात्रा कर चुके थे। इसलिये ऐसे तीर्थ स्थानों पर यदि जीवन का अन्त हो तो वह महान पुण्य प्राप्ति का साधन होता है। चित्तौड़ भी जैन धर्म का एक वैसा ही महान तीर्थ भूत स्थान है। इस तीर्थ में पूर्वकाल में भी अनेक बड़े बड़े जैनाचार्य हो गये हैं। जिनवल्लभ सूरि जैसे महान जैनाचार्यों का देहोत्सर्ग इस पुण्य भूमि में हुआ है। इसलिये जैन यतियों के लिये यह एक विशिष्ट तीर्थ स्थान है। यहाँ पर जीवन का अन्त हो तो वह बहुत उत्तम होगा। ऐसा सोचकर गुरु महाराज ने धनचंद यति को उनके स्थान पर ले जाने की सम्मति दी।

तदनुसार दो तीन दिन में ही वहाँ जाने की तैयारी हो गई। रूपाहेली वासियों को जब यह बात ज्ञात हुई तो उनके मन में बड़ा दुख होने लगा। ठाकुरसा. वगैरह ने आकर उनसे बहुत कुछ प्रार्थना की कि आप इस अवस्था में रूपाहेली को छोड़कर अन्यत्र न पधारें। हम सब बहुत श्रद्धापूर्वक आपकी सेवा सुश्रुषा करने को तत्पर हैं। परन्तु गुरु महाराज ने कहा—“मेरी इच्छा अब किसी तीर्थस्थान पर जाकर इस शरीर को छोड़ देने की हो रही है। इसलिये मैं चित्तौड़ के आसपास की पुण्यभूमि में शरीर त्याग करना चाहता हूँ”। गुरु महाराज का ऐसा निश्चयात्मक भाव जानकर रूपाहेली निवासी जन बहुत खिन्न हुए।

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी जिसको राजस्थान में निर्जला ग्यारस कहा करते हैं, उस दिन रूपाहेली से प्रस्थान करना निश्चित हुआ। साथ में रूपाहेली के दो ओसवाल महाजन जो उनके खास भक्तजनों में से थे— बानेण पहुँचाने के लिये तत्पर हुए। चूँकि इस सारी परिस्थिति में मैं गुरु महाराज की सेवा में सदा निकट रहता था और मुझ पर उनका बहुत प्रेम था इसलिये उन्होंने मुझे कहा— बेटा रिणमल ! तू भी मेरे साथ चल और तेरी माँ से रजा ले ले। मैंने जाकर माँ से कहा—“गुरु महाराज यहाँ से चित्तौड़ यात्रा के लिये जाना चाहते हैं और मुझे साथ ले जाना चाहते हैं। इसलिये मैं उनके साथ जाना चाहता हूँ।”

चूँकि माँ हमारे घर में से कभी बाहर नहीं निकलती थी और गुरु महाराज के उस बीमारी के बाद दर्शन भी उसने नहीं किये थे इसलिये एक दिन संध्या होने के बाद अपनी एक परिचारिका को साथ लेकर वह गुरु महाराज के उपाश्रय में आई। उसने दूर से जमीन पर मस्तक रख कर उनको प्रणाम किया। गुरु महाराज ब्रिछौने में लेटे हुए थे। धनचंद यति उनके पास बैठे थे। मैं भी एक तरफ उनके सिरहाने के पास बैठा था। माता की आँखों में आँसू भर आये थे। वह कुछ बोल नहीं पा रही थी। गुरु महाराज ने धीमे स्वर में कहा—“ठुकरानी, ठाकुरसा. तो चले गये। हम भी अब चलने की तैयारी में हैं। तुम्हारा बेटा रिणमल मेरी बहुत भक्ति करता है। इसलिये मेरा इस पर बहुत प्रेम है। मैं तीर्थ यात्रा के लिये जा रहा हूँ। यह मुझे वहाँ पहुँचा कर थोड़े दिनों में मेरे साथ चलने वाले अमुक महाजन के साथ वापिस आ जाएगा। जिस महाजन के लिये उनका संकेत था वह महाजन हमारे घर की भी सारी सार संभाल रखता था। माँ सुनकर इतना ही बोली—“महाराज, यह मेरा बेटा नहीं है यह तो आपही का बेटा है। इसके पिता मरते समय आपकी गोद में इसे रख गये थे। यदि आपका आशीर्वाद इस पर बरसेगा तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी।”

ऐसी कुछ बातें कहकर मन ही मन रोती हुई माँ गुरु महाराज को

आखिरी पावांधोक करके अपने मकान पर चली गई। मैं भी उसके साथ घर पर चला आया। उस रात मैं उसीके पास सोया। रात में बार बार वह मेरे मुँह पर, मेरे शरीर पर बड़े प्यार से हाथ फेरा करती थी और मुझे छाती से लगाकर खूब रोती रहती थी।

यद्यपि मैं माता की छाती से लिपटा हुआ अर्द्ध निद्रावस्था में सोया हुआ था, परन्तु बीच-बीच में माँ की सिसकती आवाज से मैं चौंक उठता था और उसके गालों से बहने वाले आंसुओं को मैं अपने हाथ से पोंछता था, वह सारी रात इसी तरह व्यतीत होगई।

ज्येष्ठ का महिना था। काफ़ी गरम रात थी। बहुत रात तक चन्द्रमा का प्रकाश फैल रहा था। हम दोनों माँ बेटे घर के बाहर वाले नीम के नीचे सोये हुए थे। उस रात का मुझे स्पष्ट स्मरण है। रात को कई दफे माँ पलंग पर बँठी हो जाती थी, मेरा मस्तक अपनी गोद में ले लेती थी और मुझे बारंबार मीठे चुम्बनों से बहलाती रहती थी फिर वह सो जाती, फिर उसकी आँखों में से आँसू के बूँद टपकने लगते थे और मुझे अपनी छाती से लगाकर मेरे शरीर पर स्नेह भरे कोमल हाथ फेरा करती थी। माँ कुछ भी नहीं बोल रही थी, मैं भी चुप था। मेरा हृदय भी उसी तरह भरा हुआ था और मेरी आँखों से भी उसी तरह बारंबार अश्रुबिन्दु टपकते रहते थे। जो मेरी माँ की छाती और स्तन को गीले कर देते थे।

माँ इस तरह क्यों बेचैन हो रही है, उस समय मुझे इसकी कोई कल्पना नहीं थी। मैं तो माँ के इस प्रकार के वात्सल्यपूर्ण स्नेह के कारण कोई अलौकिक सुख और आनन्द का अनुभव कर रहा था। ऐसा आनन्द अनुभव मुझे अपने जीवन में फिर कभी प्राप्त नहीं हुआ।

परन्तु माँ को जिस अव्यक्त बेचैनी का जो तीव्र अनुभव हो रहा था उसका कारण शायद उसकी अन्तरात्मा में विधाता का वह भावी अव्यक्त सन्देश अंकित हो रहा था कि आज की इस रात के बाद जीवन में फिर कभी तेरे पुत्रका मिलना नहीं होगा। इसलिये जितना भी

अपनी छाती से इस पुत्र को लगा सको, उतना लगालो। इस रात के बाद फिर न कभी अपने बेटे का मुँह देख पाएगी और न ही बेटा तेरा मुँह देख पाएगा। इस तरह वह रात व्यतीत हुई। उस रात के मेरी माँ के स्नेह परिप्लुत आलिंगन और चुम्बन आदि का स्मरण मेरे मानस पट पर आजीवन अमिट रूप से अंकित है। इसका स्मरण मुझे कई विशेष प्रसंगों पर जब जब हुआ, तब तब मेरे हृदय में एक प्रकार की बहुत ही तीव्र वेदना होती रही है और उस समय मैं जी खोलकर खूब रोता रहा हूँ।

सवेरा हुआ। हम लोग उठे। दांतुन कुल्ला किया माँ ने बड़े प्यार से अपने पास बिठा कर मुझे कलेवा कराया और अपने हाथ से मेरे मुँह में कुछ ग्रास रखे। घंटा डेढ़ घंटा दिन चढ़े बाद मैं उपाश्रय में गया। वहाँ जो थोड़ा बहुत गुरु महाराज का सामान था उसको बाँधने करने की तैयारी में लगा। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि गुरु महाराज के पास कोई विशेष परिग्रह नहीं था। दो तीन लकड़ी के मझले कद के बक्से थे। जिनमें से एक में उनकी दवाइयों की शीशियाँ थीं। एक बक्से में उनके ओढ़ने पहनने के चद्दर आदि वस्त्र थे और तीन चार अच्छे ऊनी दुशाले थे। एक छोटी सी लकड़ी की मजबूत पेटी थी, जिसमें रुपये पैसे रहते थे। यह तो ज्ञात नहीं उसमें कितने रुपये थे, पर उसपर एक ताला लगा था, जिसकी चाबी गुरु महाराज अपने पास रखते थे। जब कभी उन्हें रुपयों पैसे की जरूरत होती तो उस बक्से को अपने पास मंगवा कर चाबी मुझे देकर खुलवाते थे। उस बक्से में कपड़े की पाँच सात थैलियाँ थीं, जिनमें से किसी में ताँबे के पैसे और किसी में चाँदी के रुपये थे। ताँबे के जो पैसे थे उनमें कुछ तो अंग्रेजी चलन के और कुछ देशी चलन के थे। इसी तरह जो चाँदी के रुपये थे उनमें कुछ तो अंग्रेजी चलन के कलदार रुपये और कुछ देशी चलन के चाँदी के सिक्के थे। जरूरत के मुताबिक उसमें से रुपये निकलवाकर

वे अपने पास बिछोने के नीचे रख लेते थे और फिर पेटी के ताला लगवाकर एक छोटे से बन्द कमरे में उसे रखवा देते थे ।

जब उस दिन जाने की तैयारी हुई तो उस रुपये पैसे वाली पेटी को मँगवाकर दवाइयों वाला जो मझले कद का अच्छा मजबूत बक्स था उसके अन्दर उस पेटी को भी रखवा दिया और उसकी चाबी संभाल कर रखने के लिये मुझे दे दी । बक्सों के सिवाय कुछ रसोई आदि के बर्तन थे जो एक मजबूत बोरे में भर दिये गये । दो तीन बिस्तर आदि कपड़े के बीटे बाँध लिये गये । दोपहर की बारह एक बजे तक यह सब तैयारी हो गई । मैं अपने घर से गुरु महाराज के लिये भोजन लेने गया, जिसको माँ ने पहले ही अच्छी तरह तैयार कर रखा था । माँ ने उस दिन थोड़ा सा हलवा बनाया था, जिसे उसने पहले अपने पास बिठाकर अपने हाथ से मुझे खिलाया । बाद में एक थाली ढककर मुझे उपाश्रय में ले जाने को कहा । मैंने गुरु महाराज के सम्मुख एक चौकी रखकर उसपर थाली रख दी । उन्होंने बड़ी भावना से कुछ ग्रास खाये और मुझे पूछा कि तू भी खाकर आया है न ?

मैंने सिर हिलाते हुए अपनी सम्मति प्रकट की, पर मैं मुँह से कुछ बोल नहीं सका । वे मेरे सामने देखकर बोले—“बेटा, तेरी रोने जैसी सूरत क्यों दिखाई दे रही है ?”

मैंने कहा—“महाराज आज सारी रात मेरी माँ बहुत रोती रही । इससे मुझे रोना आ गया ।”

गुरु महाराज बोले—“बेटा माँ का प्रेम ऐसा ही होता है । तू अभी तक माँ से एक दिन भी कभी दूर नहीं रहा और आज मैं तुम्हें अपने साथ कुछ दिन के लिये ले जाना चाहता हूँ, इसलिये तेरी माँ का हृदय भर आना स्वाभाविक है । मैं गुरु महाराज की वह थाली उठा कर वापिस अपने घर ले गया और गुरु महाराज ने जो कुछ मुझे कहा वह मैंने माँ से कह सुनाया । यह सब सुनकर माँ फिर रोने लगी और मुझे छाती से लगा कर बहुत सहलाने लगी । यद्यपि मेरी उम्र उस समय १२, १३ वर्ष

की हो चुकी थी, तो भी माता मुझे ७-८ वर्ष का ही समझती थी और उसी तरह मुझे छाती से लगाये रहती थी ।

करीब शाम को ४ बजे रूपाहेली गाँव से स्टेशन पर जाने का तय किया था और उसके लिये एक दो बैलगाड़ियों में सब सामान रख दिया था । गुरु महाराज बैठ नहीं सकते थे, इसलिये स्टेशन पर पहुँचाने के लिये ठाकुर सा० ने अपने गढ़ में जनानी सबारी के लिये जो एक प्रकार की खास गाड़ी होती थी, उसमें गुरु महाराज को सुलाकर स्टेशन पर ले जाने की व्यवस्था करदी थी ।

रूपाहेली का रेलवे स्टेशन गाँव से कोई दो ढाई मील के फासले पर है । शाम को चार पाँच बजे जब ज्येष्ठ महिने की कड़ी धूप कम हुई, तब गाँव से स्टेशन की तरफ़ हम लोग चल पड़े । चलते समय गुरु महाराज ने कहा—“रिणमल, जा तू अपनी माँ को पाँवाधोक कर आ और कह आ कि हम लोग सब स्टेशन पर जा रहे हैं ।”

मैं गुरु महाराज का यह आदेश पाकर दौड़ता हुआ अपनी माँ के पास पहुँचा । माँ गवाड़ी के दरवाजे पर खड़ी हुई बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रही थी । जैसे ही मैं उसके पास पहुँचा और उसके पाँव छू कर मैंने कहा—“गुरु महाराज ने मुझे तेरे पास पाँवाधोक करने के लिये भेजा है और अब हम स्टेशन पर जा रहे हैं ।”

सुनकर माँ की आँखों से फिर आँसू की धारा बहने लगी । मालूम देता था, उसका हृदय भर आया था और छाती धड़क रही थी । वह मुँह से कुछ ज्यादा बोल नहीं सकी । मेरा मुँह पकड़ कर बहुत जोर से कई दफ़ा चुम्बन किये ।—उसकी आँखों से बहते हुए आँसुओं से उसके गाल अच्छी तरह भीग गये, जिनको अपने साड़ी के पल्ले से पोंछा और इतना ही बोली—बेटा, खुशी से जा और अच्छी तरह से गुरु महाराज की सेवा करना । जब वे तुझे यहाँ मेरे पास भेजने का प्रबन्ध करें तब तू जल्दी से यहाँ आ जाना ।

ऐसा कहकर मेरे सिर पर बड़े स्नेह से हाथ फेरा और फिर मेरा मुंह पकड़ कर चुंबन किया और फिर उसी तरह उसकी आँखों में से आँसू की धारा बह चली, परन्तु शायद किसी अपशकुन की आशंका से मुंह से एक भी शब्द न बोलकर हाथ के इशारे से मुझे विदा होने का संकेत किया। बस हम दोनों माँ बेटों का यह अन्तिम मिलन था। इसके बाद न मैं कभी अपने जीवन में माँ का मुंह देख पाया और न माँ मुझे देख पाई। विधाता का यह एक बहुत क्रूर विधान था, जो हम माँ बेटे के जीवन में घटित हुआ। मैं माँ का आदेश लेकर शीघ्रता के साथ भरे हुए हृदय से अपनी आँखों के आँसू पोंछता हुआ गुरु महाराज के पास पहुँच गया। उनकी गाड़ी जिसमें वे लेटे हुए थे, उपाश्रय से रवाना होकर गाँव के बाहर तालाब के समीप पहुँच गई थी। उन्हें विदा करने गाँव के राजपूत, महाजन, ब्राह्मण आदि समाज के मुख्य मुख्य लोग साथ में चल रहे थे। इस प्रकार कोई गाँव के एक मील दूर तक वे लोग चलते रहे। बाद में गुरु महाराज ने इशारे से उन भाइयों को नमस्कार करते हुए वापस गाँव में जाने की सूचना दी। कुछ पाँच सात भाई स्टेशन पर पहुँचाने आये। सात आठ बजे तक हम लोग स्टेशन पर पहुँचे।

संध्या हो चुकी थी। गरम लू शान्त हो रही थी। एकादशी का उज्ज्वल चन्द्रमा अपने शीतल प्रकाश से वातावरण को ठंडा बना रहा था। हम लोग स्टेशन पर पहुँचे और गाड़ी में से सामान उतार कर प्लेट फार्म पर रखा। एक खाट जो पहले ही वहाँ तैयार थी, उस पर गुरु महाराज को लेटा दिया। उनकी हड्डी जो टूट गई थी, उसका दर्द उस समय तक कुछ कम हो गया था, लेकिन जब उनको इधर से उधर सुलाने की क्रिया की जाती थी, तब कुछ विशेष दर्द होता रहता था। पर इस दर्द को वे शान्त भाव से सहन कर लिया करते थे। जब खान पान कराया जाता था, तब कमर और पीठ के नीचे बड़े बड़े तकिये लगाकर उन्हें आराम कुर्सी की तरह आधे शरीर पर बैठा दिया जाता था। मल मूत्र का विसर्जन भी इसी प्रकार आधे बैठा कर कराया जाता

था। उस समय चित्तौड़ जाने वाली गाड़ी रात को एक डेढ़ बजे रूपा-हेली स्टेशन पर आती थी। सेकंड क्लास के ढाई टिकट लेकर गाड़ी आने पर हम लोग उसमें सवार हुए। गुरु महाराज को बड़ी हिफाजत के साथ खाट से उठाकर सीट पर सुलाया। मैं और धनचन्द यति भी उनके साथ ही बैठे। दो महाजन जो साथ चले थे वे किसी अन्य डिब्बे में बैठे। गुरु महाराज शान्त भाव से लेटे लेटे मन में नमोकार मंत्र का जाप कर रहे थे।

४॥ बजे गाड़ी चित्तौड़ पहुँची, हम लोग उतरे, सामान उतारा गर्मी के दिन थे। सूर्योदय जल्दी ही होने वाला था। इसलिये एक बिस्तर खोलकर गुरु महाराज को प्लेट फार्म के एक किनारे सुला दिया। थोड़ी ही देर बाद उषा का प्रकाश पूर्व दिशा में फैलने लगा। गुरु महाराज की दृष्टि चित्तौड़ के किले की तरफ थी। जब सूर्योदय का समय हुआ तो किले का दर्शन बहुत स्पष्ट भव्य रूप से होने लगा। धनचन्द यति तो अपने गांव बानेण में हमको ले जाने के लिये दो गाड़ियों की व्यवस्था करने के लिये स्टेशन से बाहर गये थे, मैं गुरु महाराज के पास बैठा हुआ था। जब सूर्य के प्रकाश में चित्तौड़ का सारा किला अच्छी तरह दिखाई देने लगा और उसमें राणा कुंभा का विजय स्तम्भ भी दिखाई दिया तो गुरु महाराज ने मुझे धीरे से किले की तरफ उँगली दिखाकर कहा “देख वह चित्तौड़ का किला दिखाई दे रहा है और इस किले पर कैसे कैसे यति महात्मा आदि बड़े साधुजन तथा वीर पुरुष आदि हो गये हैं, उसकी कुछ बातें उन्होंने कहीं।”

मेरे जीवन का यह पहला सुप्रभात था, जिसमें सर्वप्रथम चित्तौड़ के इस महान् राष्ट्रीय तीर्थ का दर्शन करने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ और गुरु महाराज के मुख से इस तीर्थ भूमि के महत्व का कुछ आभास मिला। उसी सुप्रभात का यह भव्य दर्शन और स्मरण मेरे जीवन में सदा के लिये ओतप्रोत रहा है, उसी सुप्रभात का वह भव्य दर्शन और स्मरण के निमित्त मैं अपने जीवन के अन्तिम दिन इस पुण्य भूमि में बिताने के लिये अब यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।

कोई सात आठ बजे जब सूर्य ऊपर चढ़ आया था और ग्रीष्म काल का प्रखर ताप बढ़ने लगा था, तब यति धनचन्द दो बैलगाड़ियाँ किराये पर कर लाये। उनमें से एक में सामान रखा और एक गाड़ी पर खाट बिछाने की व्यवस्था कर उस पर गुरु महाराज को उठाकर सुलाया गया। चित्तौड़ से उदयपुर जाने वाली टूटी फूटी सड़क पर हमारी गाड़ियाँ चल पड़ीं। घंटे आधे घंटे बाद चित्तौड़ का किला पीछे छूट गया। तब गुरु महाराज ने धनचन्द यति से पूछा कि भाई तेरा गाँव कितनी दूर है? गुरु महाराज की यह कल्पना थी कि उसका गाँव चित्तौड़ के पास ही कहीं दो तीन मील की दूरी पर होगा और इसीलिये वे इस चित्तौड़ की उपत्यका में अपना देह छोड़ने के विचार से यहाँ आने को तत्पर हुए थे। पर धनचन्द यति का वह बानेण गाँव चित्तौड़ से सोलह माइल दूर था। जिसकी कोई कल्पना गुरु महाराज की नहीं थी। दो तीन मील चलने पर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि बानेण गाँव तो चित्तौड़ से ८ कोस दूर है और शाम तक बड़ी मुश्किल से वहाँ पहुँच सकेंगे, तब गुरु महाराज का मन एक दम खिन्न हो गया और उन्होंने उग्र स्वर से धनचन्द से कहा—भाई तैने तो मेरे साथ बड़ी धोखेबाजी की। तैने तो मुझे कहा था कि मेरा गाँव चित्तौड़ के पास ही है और इसीलिये मैंने तेरे साथ आने की इच्छा प्रकट की परन्तु अब क्या होसकता था। गुरु महाराज तो अब इतने अशक्त हो गये थे कि वे कुछ करने कराने में असमर्थ थे। वे बिल्कुल मौन हो गये और मन ही मन नवकार मंत्र का जाप करने लगे। मैं कभी उनके पास गाड़ी में बैठ जाता और कभी पैदल चलने लगता। धनचन्द गाड़ी के सामान के साथ चल रहे थे। जो दो महाजन रूपाहेली से साथ आये थे, वे चित्तौड़ का किला देखने को ठहर गये थे और गुरु महाराज से कह गये थे—‘हम किला देखकर संध्या तक आपके पास पहुँच जावेंगे’। उन दिनों न बसें चलती थीं न मोटरें थीं, न साई-कलें दिखाई देती थीं। चित्तौड़-उदयपुर रेल बनने से पूर्व इस सड़क पर चित्तौड़ से उदयपुर जाने के लिये घोड़ों के तांगे चलते थे, लेकिन रेलवे लाइन बनने के बाद इन तांगों का चलना सर्वथा बन्द हो गया था और

यह सड़क जगह जगह से टूट फूट गई थी। केवल कहीं जल्दी पहुँचने के लिये घोड़े की सवारी काम में आती थी।

हमारी गाड़ियाँ शाम को चार पाँच बजे बानेण पहुँची और सारे दिन का खूब परिश्रम और कठोर ताप सहन करते हुए हम लोग बानेण गांव में धनचन्द यति का जो एक दो घर वाला छोटा सा मकान था, उसके द्वार पर पहुँचे। गाड़ी में से सामान उतारा गया और जल्दी-जल्दी एक खाट भँगा कर उस घर के छोटे से आंगन के बीच में वह खाट बिछाई गई और उस पर बिस्तर डालकर गुरु महाराज को लिटा दिया गया। उस सारे दिन में उन्होंने कुछ भी खाया पीया नहीं था। इससे उन्हें बहुत थकावट महसूस हो रही थी। धनचन्द यति के पास दो एक गायें थीं जिनका दूध निकाल कर थोड़ा सा गुरु महाराज को पिलाया गया। वे इतने थके हुए थे कि उनमें बोलने की भी शक्ति नहीं रह गई थी। पर रात होने पर उनको कुछ अच्छी निद्रा आ गई। मैं भी उन्हीं के पास एक छोटी सी खाट पर दरी जैसा कोई कपड़ा डाल कर सो गया। मुझे भी थकान का अनुभव हो रहा था। धनचन्द यति ने एक थाली में गरम गरम मक्की की रोटी परोसकर एक कटोरी में गाय का दूध खाने के लिये रख दिया। अतः उस मक्की की रोटी को दूध की कटोरी में मसल कर मैंने बड़े आनन्द के साथ पेट भर लिया और खाट पर लम्बा होकर सो गया।

सवेरा होने पर एक छोटे से मिट्टी के घर में, जिसके एक ही दरवाजा था, उसके अन्दर गुरु महाराज का खाट बिछा दिया गया और उस पर गुरु महाराज को लिटा दिया गया। गुरु महाराज उस छोटे से घर को देखकर मन में खिन्न हुए क्योंकि रूपाहेली में उनके रहने का जो उपाश्रय था, वह अच्छा बना हुआ पक्का मकान था। एक बड़ा सा हॉल था, उसके आगे छह सात फुट लम्बा बरामदा था, जिस पर पत्थर की पट्टियाँ पड़ी हुई थीं। मुख्य हॉल के ऊपर वैसा ही दालान

बना हुआ था। उसके ऊपर पक्की छत थी। मकान के आगे दस बारह फुट खुला आँगन था। मुख्य दालान के अगल बगल में छोटे दो कमरे थे, जिनमें से एक कमरा रसोई बनाने के काम आता था। छोटा सा एक बन्द कमरा था, जिसमें गुरु महाराज के बक्से आदि रखे रहते थे और ओढ़ने बिछौने का सामान भी उसमें रखा रहता था। उसके मुकाबले में धनचन्द यति का यह मिट्टी का कच्चा घर बिल्कुल निकम्मा सा लगता था। परन्तु अब कोई उपाय नहीं था। जिससे गुरु महाराज कहीं और जगह जाने का विचार कर सकते। यद्यपि धनचन्द यति बड़ी भक्ति पूर्वक उनकी सेवा सुश्रूषा करने में व्यस्त रहता था।

धनचन्द यति का एक छोटा सा परिवार था। उसकी एक वृद्धा माता थी और उसकी एक प्रोढ़ उम्र वाली बहिन भी थी, जो किसी अन्य गाँव में ब्याही गई थी। उसके दस ग्यारह वर्ष की एक लड़की भी थी, जो प्रायः उसकी नानी के पास ही रहती थी। धनचन्द यति के एक रक्षिता स्त्री भी थी, जो शरीर में सुडोल और गौर वर्ण की थी। वह स्त्री छप्पन के दुष्काल में अपने एक आठ दस वर्षीय बच्चे को साथ लेकर धनचन्द के पास आकर रही थी। वह स्त्री चित्तौड़ के किसी ब्राह्मण के घर की थी। जिसका पति मर जाने से वह विधवा होगई थी। धनचन्द यति की उम्र उस समय कोई ४५ वर्ष के आस पास थी। उसका लम्बा कद था और बड़ी बड़ी मूँछें थीं। यति के वेष में वह रहता था, उसके घर के पास ही एक छोटा सा शिखरबन्द जैन मंदिर बना हुआ था। जो शायद धनचन्द यति के किन्ही पूर्वज यतिओं द्वारा बनवाया गया था। बानेण गाँव में जैन धर्मानुयायी ओसवाल जाति के महाजनों के बीस-पच्चीस घर थे। कुछ माहेश्वरी जाति के महाजनों के भी घर थे।

गुरु महाराज की सेवा सुश्रूषा की दृष्टि से धनचन्द कुछ लेप आदि का उपयोग किया करते थे। जिससे धीरे धीरे गुरु महाराज का दर्द कम हो गया था, परन्तु वह पग सर्वथा निकम्मा हो जाने से वे स्वयं उसको

हिला डुला नहीं सकते थे और अपना शरीर भी इधर उधर स्वयं नहीं कर सकते थे । जब जरूरत होती थी तो मैं, धनचन्द तथा उसकी बहिन मिलकर उनको आधे शरीर के बल बिठा दिया करते थे । खाने पीने के लिये उनको इस तरह बँटाया जाता था और मलमूत्र का विसर्जन भी इसी तरह कराया जाता था ।

रूपाहेली से चित्तौड़ तक साथ में आने वाले दो महाजनों में से एक तो चित्तौड़ ही से वापिस रूपाहेली चला गया । दूसरा बानेण आया । वह महाजन गुरु महाराज का भक्त था और मेरी माँ की भी वह सार संभाल लिया करता था । इसलिये उस महाजन का मेरे प्रति भी बहुत ममत्व भाव था । कोई दो चार दिन वह महाजन बानेण रहा, फिर गुरु महाराज की आज्ञा लेकर रूपाहेली चला गया ।

इधर कुछ दिन तो गुरु महाराज का स्वास्थ्य ठीक होता हुआ दिखाई दिया, परन्तु एक महिने के बाद उनकी जीवनी शक्ति धीरे धीरे क्षीण होती हुई दिखाई दी । वे अपने विषय में कोई बात चीत नहीं किया करते थे । यदा कदा मुझे अपने पास बुलाकर मीठे शब्दों में कुछ बातें कहा करते थे । उनका भोजन भी धनचन्द जी की घर वाली स्त्री बनाया करती थी, परन्तु उनको खिलाने का तथा पानी पिलाने का तथा हाथ वगैरह धुलाने का काम मैं ही किया करता था ।

रात को मैं उनके पास एक छोटी सी खाट पर सो जाया करता था और घर के दरवाजे के पास धनचन्द यति सो जाते थे । दिन में गांव के कुछ महाजन गुरु महाराज को देखने आदि आ जाया करते थे । इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु के खत्म होने पर आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में वर्षा का प्रारम्भ हुआ । पिछले साल सारे राजस्थान में भयंकर दुष्काल पड़ा था । जिसके कारण हजारों मनुष्य भ्रन्न के अभाव में मर गये । आषाढ़ महिने में जब वर्षा होनी शुरू हुई तो लोगों के हर्ष का पार नहीं रहा । श्रावण महिने में भी अच्छी वर्षा हुई । इस वर्षा ऋतु के कारण गुरु महाराज की शारीरिक शक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ा और अन्त में भाग्न-

पद कृष्णा द्वादशी के दिन, जिस दिन जैन धर्म के पर्युषण पर्व का प्रारंभ होता है उस दिन प्रातः काल चार बजे के समय गुरु महाराज का देहोत्सर्ग हो गया। मृत्यु के समय पर्यन्त वे बिल्कुल सावधान भवस्था में थे और हरदम अपने मन में नमो अरिहंताणम् का जाप किया करते थे। उस रात को धनचन्द्र जी को भी यह आभास हो गया था कि आज की रात को गुरु महाराज का प्राणोत्सर्ग हो जायगा अतः वे सारी रात गुरु महाराज के पास बैठे रहे। मैं भी निश्चल भाव से उसी तरह उनके पास बैठा रहा। मृत्यु के पहले कोई १०, १५ मिनिट पूर्व मुझे अपने पास उन्होंने बुलाया और मेरे मस्तक पर अपना क्षीण हाथ रखकर बोले—‘बेटा, रिणमल, तू विद्या पढ़ने का प्रयत्न करना, तू बहुत बड़ा विद्वान बनेगा और तू अच्छा भाग्यशाली मनुष्य होगा। अब हम इस दुनिया से विदा हो रहे हैं।’ बस इतने ही शब्द उन्होंने मुझे कहे। धनचन्द्र यति को उन्होंने कुछ नहीं कहा—केवल यही बोले—“रिणमल की अच्छी तरह सार संभाल रखना।” ऐसा कहकर वे मौन हो गये और उन्होंने आँखें मूंद लीं। ५, ७ मिनट के बाद ही उनका अन्तिम स्वास खत्म हो गया।

उस समय प्रातः काल हो रहा था और आकाश में घने बादल छाये हुए थे। सवेरा होते ही ग्राम जनों को गुरु महाराज के स्वर्गवास हो जाने की खबर मिल गई और उनका अन्तिम संस्कार करने के लिये महाजन तैयारी करने लगे। जैसा कि रिवाज है यति साधु आदि के मृत शरीर की एक डोलीनुमा अर्थी बनाई जाती है, वैसी अर्थी बनाई गई और उसमें गुरु महाराज के शरीर को पद्यासन के आकार में जमा कर बिठा दिया। कोई ११, १२ बजे के समय श्मशान यात्रा निकली और जिस तरह मैं अपने पिता की अन्त्येष्टि के समय मिट्टी की हँडिया में घर से आग लेकर अर्थी के आगे आगे चल कर श्मशान भूमि में पहुँचा था, उसी तरह गुरु महाराज की श्मशान यात्रा के आगे वैसे ही मिट्टी की हँडिया में अग्नि देव को लेकर आगे आगे चला।

बानेण गांव में पहले जो यति लोग रहा करते थे उनकी दाह-क्रिया एक खास स्थान में हुआ करती थी, जो स्थान यतियों की ही मालिकी का था। उस जमीन में एक अच्छी पक्की बावड़ी बनी हुई थी। जो किन्हीं पूर्व के यतियों ने बनवाई थी। उसी बावड़ी के साथ दो तीन पुरानी छत्रियाँ बनी हुई थीं। उन्हीं के पास गुरु महाराज की भी चिता लगाई गई और वहीं पर उनके शरीर को अग्निदेव को समर्पण कर दिया था।

इस प्रकार मेरे पिता और मेरे गुरु के पार्थिव शरीर को मैंने अपने हाथों से अग्निदेव को समर्पण कर दिया। मैं एक प्रकार से सर्वथा अनाथ बन गया।



(६)

गुरु महाराज के स्वर्गवास के बाद

दानेण के कुछ अनुभव

गुरु महाराज देवीहँस जी का स्वर्गवास भाद्रपद कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन हुआ था। वह दिन श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की परम्परानुसार पर्युषण पर्व का पहला दिन था। पर्युषण पर्व आठ दिन का होता है उसकी समाप्ति भाद्र पद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को होती है। उसको जैन सम्प्रदाय वाले सांवत्सरिक दिन कहते हैं।

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में यह दिन सबसे बड़े पर्व के रूप में मनाया जाता है। जैन धर्म के ये पर्युषण पर्व के आठ दिन बहुत पवित्र माने जाते हैं। इन दिनों में जैन धर्मानुयायी त्याग, तप, दान, शास्त्र श्रवण आदि पुण्य कार्य बड़ी श्रद्धा पूर्वक करते रहते हैं, इन दिनों में सांसारिक व्यवहार की कोई प्रवृत्ति नहीं की जाती। पर्युषण पर्व की समाप्ति के बाद धनचंद जी ने जैसा कि आम रिवाज है अपने परिचित अन्यान्य गांवों के यति जनों को श्री देवीहँस जी महाराज के स्वर्गवास होने के समाचार भिजवाये और भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी के दिन उनकी मृत्यु के निमित्त श्राद्ध कर्म के रूप में आने के लिये यतियों को आमंत्रित किया। तदनुसार कोई बीस, पन्चीस यति जन वहाँ आये और

श्राद्ध कर्म की रस्म अदा की। आगन्तुक यति जनों को पानी पीने का धातु का गिलास तथा सफेद मलमल की चदर भेंट स्वरूप दी गई। कुछ नकद रुपये भी भेंट किये गये। मेरे लिये यह सब बड़ा कुतुहल जनक प्रसंग था।

मैंने देखा कि उन यति गणों में कई बड़े वाचाल थे, कई बहुत हास्य प्रिय थे। कई बड़ी बड़ी गप्पें हांकने वाले थे। कई भंगेड़ी यानी भाँग पीने के शौकीन थे। कई पान चबाने के प्रेमी थे। इनमें कुछ जवान से थे, कुछ प्रौढ़ थे और कुछ वृद्ध थे। उस छोटे से धनचन्दजी के मकान में उन यति जनों का समावेश होना संभव नहीं था। इसलिये पास के जैन मन्दिर में कुछ यति जनों को उतारा गया। उस मन्दिर के सामने एक ओसवाल भाई का अच्छा बड़ा मकान था, जिसको नोहरा कहते हैं, उसमें भी कुछ यतियों को उतारा गया। भोजन प्रबन्ध भी उस नोहरे में किया गया। यतियों के भोजन के साथ गांव के खास खास महाजन, ब्राह्मण और कुछ किसान आदि लोगों को भी भोजन दिया गया। कोई दो या तीन दिन रहकर वे यतिजन विदा हुए।

उन यतिजनों में दो चार ऐसे भी थे जो बोलने में कुछ चतुर और बातचीत में बारम्बार संस्कृत के श्लोक और भाषा के दोहे, सर्वया, छप्पय आदि पद्य भी बोलते रहते थे। जिनको मैं बहुत ध्यान से सुनता रहता था। उनमें से कुछ यति जनों को मेरे विषय में भी जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वे यति धनचन्द जी से पूछताछ करते रहे। धनचन्द जी ने उनको मेरे बारे में क्या बताया, वह तो मुझे ठीक ज्ञात नहीं है। परन्तु उन्होंने यह बात कही थी कि मैं एक ब्राह्मण का लड़का हूँ और मेरा नाम किशनलाल है। मैं स्वर्गस्थ यतिवर श्री देवी हंसजी के पास बरस दो बरस से रह रहा हूँ और उन्हीं के शिष्य के रूप में उनके साथ बानेण आया हूँ।

फिर उनमें से कुछ यति जनों ने मुझसे कहा कि तुम अच्छे बुद्धिमान लड़के दिखाई देते हो, सो तुम किसी अच्छे विद्वान और मालदार यति के

ठिकाने पर रहोगे तो तुम अच्छे विद्वान बन जाओगे और अच्छी प्रतिष्ठा पाओगे। यह बानेण का ठिकाना तुम्हारे लायक नहीं है। यहाँ न तुमको कोई विद्या पढ़ने का योग मिलेगा और न किसी अच्छे ठिकाने का लाभ मिलेगा। उनमें से किसी एक ने कहा कि तुम हमारे वहाँ आ जाओ, हमारी बहुत बड़ी जागीर है, बहुत बड़ा ठिकाना है। किसी ने कहा कि हम तुमको किसी अच्छी पाठशाला या विद्यालय में पढ़ने के लिये भेज देंगे और खूब पढ़ाएँगे। इन यतियों की इस प्रकार की बातें सुनकर मेरे मन में गुरु महाराज के उस अन्तिम वाक्य का स्मरण होता रहा, जिसमें उन्होंने कहा था—“बेटा रिणमल, तू विद्या पढ़ने का प्रयत्न करना, तू बड़ा विद्वान होगा और भाग्यशाली बनेगा।”

मेरे मन में यह भाव जागृत हुए कि गुरु महाराज ने जो बात मुझे कही है उसी बात की याद ये यति जन दिला रहे हैं। मैंने बानेण में रहते हुए उतने दिनों में अनुभव कर लिया था कि यति धनचन्द एक बहुत सामान्य व्यक्ति है, वह न कुछ पढ़ा लिखा है, न कोई प्रतिष्ठा प्राप्त है और न उनके स्थान में किसी प्रकार का विशेष साधन है। इस लिये मेरे मन में यह बात जमने लगी कि मैं किसी ऐसे ही अच्छे विद्वान और अच्छे ठिकाने वाले यति के पास जाकर रहूँ तो मुझे विद्या पढ़ने का अवसर मिलेगा। परन्तु उस समय तो गुरु महाराज का स्वर्गवास तुरन्त ही हुआ था। और मेरी माता का स्मरण मुझे बारम्बार हो रहा था। मैं कुछ मन ही मन खिन्न रहता था और यति धनचन्द जी तथा उनके परिवार के साथ मेरा कोई तालमेल नहीं बैठ रहा था।

यति धनचन्द जी के अधिकार में कुछ खेती बाड़ी की जमीन थी। गांव के पास ही किन्ही पूर्व यतिजनों द्वारा बनवाई हुई एक मजबूत और अच्छी बावड़ी थी। उस समय वहाँ पर १०, १२ बीघा जितनी जमीन में खेती की गई थी। मैं, धनचन्द जी और उनके परिवार की स्त्रीजनों के साथ खेत में जाता रहता था और बड़े शौक से मैं भी खेती का काम करता था। इसके पहले मुझे रूपाहेली में कोई खेती का काम करने का

न मौका ही मिला था और न किसी प्रकार का अनुभव ही हुआ था आश्विन मास का समय लग गया था और खेतों में मकई पकने लगी थी मैं उन खेतों की रखवाली करने के लिये दिन रात वहीं रहने लगा और उसमें मुझे बड़ा आनन्द भी आने लगा ।

खेत के बीच में चार थूणियाँ अर्थात् लकड़ी की बल्लियाँ गाड़ कर आठ दस फुट की ऊँचाई पर एक मंच सा बना दिया जाता है जिसको मेवाड़ी भाषा में डागला या माला कहते हैं । उस डागले पर वर्षा से बचने के लिये एक छतरीनुमा खाखरे के पत्तों से बड़ा सा टोप बना लिया जाता है, जिसके अन्दर रखवाली करने वाला रात को सो भी सकता है । मैं भी उसी प्रकार के एक डागले पर रात्रि को वहाँ सो जाया करता था ।

गुरु महाराज के स्वर्गवास हो जाने का समाचार रूपाहेली पहुँचा तो उसे सुनकर मेरी माँ को बड़ा दुःख हुआ और उसने उस ओसवाल महाजन को, जो मुझे गुरु महाराज के साथ बानेण छोड़ने आया था, भेजा कि तुम जाकर रिणमल को अब मेरे पास ले आओ ।

इसलिये आश्विन मास की नव रात्री के दिनों में वह महाजन बानेण आया और धनचन्द जी से कहा कि—रिणमल को इसकी माता बुला रही है इसलिये मैं लेने आया हूँ । धनचन्द को यह शंका हुई कि अब स्वर्गस्थ यतिवर श्री देवी हंस जी का जो कुछ सामान और रुपया पैसा था उसको भी कहीं रिणमल के साथ रूपाहेली के महाजन आदि न माँगलें और रिणमल यदि रूपाहेली चला जाता है तो वह सामान और रुपया पैसा मैं अपने पास कैसे रख सकूंगा । कहीं कोई लोग या दूसरे यति किसी प्रकार का बखेड़ा न खड़ा करदें—इत्यादि बातें सोचकर धनचन्द जी ने उस महाजन को कुछ समझा बुझा कर वैसे ही वापिस रवाना कर दिया ।

परन्तु उस महाजन ने मुझे भी कहा कि 'तुम्हारी माँ तुम्हें बहुत याद करती है और तुम्हारा छोटा भाई बादल भी कई दिन से बीमार है

इसलिये तुम्हारी माँ तुम्हें बुला रही है और मुझे लेने के लिये भेजा है ।'

उन दिनों में मेरा परिचय बानेण में रहने वाले एक सेवक जाति के ब्राह्मण से हुआ था, जो कुछ अच्छा संस्कारी कुछ पढ़ा हुआ और कुछ तांत्रिक क्रिया का जानने वाला था । वह अक्सर धनचन्द जी यति के यहाँ आया करता था और प्रायः उसकी बैठक भी ज्यादातर वहीं रहती थी । मेरी कुछ बौद्धिक चपलता देखकर मुझ पर उसका सद्भाव बढ़ने लगा । विजयादशमी के पर्व के दिनों में वह उदयपुर जाया करता था । इसलिये उसने मुझसे भी कहा—'दशहरे का त्यौहार देखने के लिये तुम भी मेरे साथ उदयपुर चलो । चार पाँच दिन रहकर वापिस बानेण चले आएँगे !'

इससे मेरा मन उन दिनों उदयपुर जाने के लिये उत्सुक हो रहा था मैंने तब तक कोई बड़ा शहर देखा नहीं था अतः उदयपुर जाने की और देखने की मेरी तीव्र उत्कंठा होने से मैंने उस रूपाहेली वाले महाजन से कहा—“मैं अभी उदयपुर जाना चाहता हूँ । वहाँ से वापिस आने के बाद दिवाली पर रूपाहेली आऊँगा ।”

मेरी यह बात सुनकर वह महाजन रूपाहेली के लिये रवाना हो गया । मैं उसके एक दो दिन बाद उन सेवक जी के साथ उदयपुर जाने को तैयार हुआ । मेरे पास कोई खास कपड़े आदि नहीं थे । रूपाहेली से आते समय मेरी माँ ने जो कुछ पहनने के लिये कुर्ते आदि दिये थे वे ही मेरे पास थे । उनमें से कुछ तो फट भी गये थे । मेरे गुरु श्री देवी हँस जी महाराज के पास कितना रुपया पैसा था और अन्य कितनी चीजें आदि थीं, उसका मुझे कोई पता नहीं था । यति धनचन्द ने बानेण आने पर वह सब माल सामान अपने कब्जे में कर लिया था और उसी के सहारे उसने स्वर्गस्थ यति जी महाराज की उत्तर-क्रिया आदि सब काम किये थे ।

उदयपुर जाने के लिये कुछ पाँच दस रुपये के खर्च होने की बात

सामने आई तो धनचन्द ने कहा—“मेरे पास कोई पैसा नहीं है ?”

तब उन सेवकजी ने अपने ही पास से कुछ खर्च करके मुझे उदयपुर ले जाने का प्रबन्ध किया। बानेण से चल कर हम लोग कपासन के स्टेशन पर आये और वहाँ से गाड़ी में बैठ कर उदयपुर गये। उदयपुर में उन सेवकजी के कोई जान पहचान वाले सज्जन के घर पर हम ठहरे, कोई तीन चार दिन तक उदयपुर रहे और विजयादशमी पर निकलने वाली सवारी आदि का उत्सव देखा।

जीवन में पहली ही दफा मैंने बड़ा शहर और बाजार आदि देखे तथा दशहरे का उत्सव भी अच्छी तरह देखा इसलिये मेरे मन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा और मन में यह संकल्प जागृत हुआ कि ऐसे बड़े शहर देखने चाहिये और कहीं अच्छी संगति और अच्छे स्थान में रह कर विद्या पढ़नी चाहिये। वे सेवकजी भी मुझे इसी प्रकार की बातें कहा करते थे और मेरी जिज्ञासा को उत्साहित किया करते थे।

उदयपुर में उन सेवक जी के साथ मैंने एक दो यतिजी के स्थान भी देखे तथा एक महन्त जी का स्थान भी देखा। महन्त जी के स्थान में कुछ विद्यार्थी थे, जो किसी ब्राह्मण के पास कुछ पढ़ा करते थे। उन विद्यार्थियों के खाने पीने आदि का सब प्रबन्ध महन्त जी किया करते थे। उन सेवक जी ने मुझसे कहा कि—‘ऐसे किसी महन्त आदि के पास रहने से विद्या पढ़ने का मौका मिल सकता है।’

सेवक जी की कही हुई वह बात मेरे मन में अव्यक्त रूप से परन्तु दृढ़ भाव के साथ जम गई थी। उदयपुर से वापिस बानेण आना हुआ और यहाँ पर मैं उसी प्रकार खेत वगैरह का काम संभालने लगा।

मेरा चित्त अब किसी और दिशा में घूमने लगा। दीवाली के दिन नजदीक आ रहे थे तब रूपाहेली से वह महाजन फिर मुझे लेने के लिये आ गया और इस बार उसने यह दुखद समाचार सुनाये कि ‘तुम्हारा छोटा भाई बादल बीमारी के कारण गुजर गया है और इससे तुम्हारी

माँ को बहुत दुख हो रहा है। वह दिन रात तुम्हारे लिये रो रही है। इसलिये तुम मेरे साथ रूपाहेली चलो।'

मुझे अपने छोटे भाई बादल की मृत्यु के समाचार सुनकर बहुत दुख हुआ। अपनी माता की विव्हलता और असहायता की कल्पना ने मुझे विक्षिप्त सा बना दिया। मेरी समझ में नहीं आता था कि मुझे क्या करना चाहिये। मेरे मन में आया कि मैं रूपाहेली जाकर क्या करूँगा। वहाँ पर मेरी माता के सिवाय कोई खास स्वजन हैं नहीं, जिनकी सहायता से मैं विद्या आदि पढ़ सकूँ। माता के पास कोई ऐसा धन संचय नहीं था जिससे वह मेरी पढ़ाई आदि का कुछ इन्तजाम कर सके। उसके निर्वाह के लिये भी उसके पास क्या साधन था, इसका भी मुझे कोई ठीक ज्ञान नहीं था। हाँ, इतना मुझे ज्ञान था कि उसके पहनने के लिये सोने चाँदी के कुछ अच्छे गहने थे, जिनको बेच बेच कर वह अपना निर्वाह किया करती थी और मेरा भी पालन करती रहती थी। शायद सोचती होगी कि ५, ७ वर्ष में मेरा बेटा होशियार हो जायगा और कहीं अच्छी राजकीय नौकरी मिल जायगी और मेरा उजड़ा हुआ घर आबाद हो जायगा। इसका कुछ आभास मेरे मन पर भी जमा हुआ था, और मुझे भी ऐसी किसी सुशुप्त कल्पना के चित्र को भविष्य में देखने की अव्यक्त इच्छा उत्पन्न होती रहती थी।

ऐसी स्थिति में मेरा मन उस समय रूपाहेली जाने को तैयार नहीं हुआ और मैंने सोचा कि मैं कहीं जाकर कुछ विद्या पढ़ूँ और कुछ होशियार होकर माँ के पास जाऊँ। इसलिये मैंने उस रूपाहेली वाले महाजन के साथ जाने से इनकार कर दिया। उस महाजन ने रूपाहेली जाकर मेरी माँ को क्या कहा और उसे सुनकर उसके मन में कैसे आघात प्रत्याघात हुए होंगे, इसकी मुझे कोई कल्पना नहीं हुई। न ही उसके बाद उसकी तरफ से कोई समाचार मुझे अपने जीवन में मिले और न ही मेरे कोई समाचार उसके जीवन में उसे कभी मिले। उसके बाद कोई एक डेढ़ महिना बीतने पर सियाले (शीतकाल) के दिनों में

जैन ओसवालों के समाज में कई गाँवों में मृतकजनों के स्मरणार्थ मोसर (मृत्युभोज) नाम का जीमने जिमाने का व्यवहार शुरू हुआ। मेवाड़ के जैन यतियों में ऐसी प्रथा थी कि जहाँ कहीं भी ऐसा किसी अच्छे महाजन के यहाँ मोसर का अवसर सुनते, वे वहाँ चले जाते थे। ओसवाल महाजन इस प्रसंग पर आए हुए यतियों को विशेष रूप से पकवान देने के लिये आमंत्रित करते थे और उनके पात्र लड्डू आदि से भर कर साथ में यथा योग्य रूपया दो रूपया भेंट कर उनका सम्मान किया करते थे। इस लालच से कई यतिजन उस प्रसंग पर एकत्रित हो जाते थे। किसी बड़े गाँव में ऐसे मोसर के ५, ७ अवसर एक साथ आ जाते थे, जिसके कारण उन यतियों को यथेष्ट भोजन सामग्री के उपरान्त कुछ नकद रूपया पैसा भी हाथ लग जाता था।

यति धनचन्द जी भी इन मोसरों के अवसर का लाभ लेने की दृष्टि से बानेण के अन्य गाँवों को जाना चाहते थे। उन्होंने मुझसे भी अपने साथ चलने को कहा। मैं भी नये नये गाँवों को देखने की इच्छा से बड़ी खुशी से उनके साथ चल पड़ा। ठीक स्मरण तो नहीं है, परन्तु पोष माघ और फाल्गुन में कुछ दिनों तक हम अनेक गाँवों में घूमे, फिरे इस प्रवास में १०, १५ यतियों का साथ हो गया था। बानेण से हम पहले मंडप्या नामक गाँव में गये। वहाँ पर ज्ञानचंद जी नामक एक यति थे। जो अच्छे खूबसूरत नौजवान, बोलने चालने में चतुर और रहन सहन में भी कुछ संस्कार सम्पन्न थे। उन्हीं के साथ हम लोग कई गाँवों में घूमे। हमने सुना कि भींडर में पांच दस मोसर बड़े महाजनों के हैं। अतः हम भींडर गये, वहाँ के एक स्थानिक यतिजी के उपाश्रय में हमने डेरा डाला। वहाँ अन्यान्य स्थानों के भी दस पन्द्रह यतिजन एकत्र हो गये थे। भींडर में कुछ दिन रहने के बाद सुना कि कानोड़ गाँव में अगले महिने में ५, ७ बड़े मोसर होने वाले हैं। अतः भींडर से हम कानोड़ गये। भींडर में रहते हुए कुछ यतिजनों को खुजली का रोग होगया था। मुझे और धनचन्द जी को भी खुजली के रोग का चेप लग गया था और सारे शरीर में वह फैल गई थी।

यतिजन प्रायः वैद्यकीय बातों की जानकारी अवश्य रखते थे । इसलिये वे इसका उपाय भी करने के लिये कुछ तैल आदि के लेप का प्रयोग किया करते थे ।

परन्तु एक वृद्ध यति जो कानोड़ में रहते थे उन्होंने कहा कि इस माघ मास की कड़ी शीत में सुबह जल्दी उठकर तालाब के ठंडे पानी में ५, ७ दिन स्नान करने से खुजली नष्ट हो जायगी सो सुनकर हम लोग उस कड़ी सर्दी में सुबह ४, ५ बजे उठकर तालाब में स्नान करने चले जाया करते थे और घंटा डेढ़ घंटा उस ठंडे पानी से शरीर को खूब मला करते थे । पांच सात दिन ऐसा करने पर वह खुजली नष्ट हो गई ।

उस कष्ट दायक खुजली तथा उसके निवारण के लिये माघ महिने की कड़ाके की ठंड में सुबह उठकर तालाब में जो स्नान किया था उसका स्मरण आज तक बना हुआ है ।

इस तरह उस शीतकाल में हम लोग मेवाड़ के खास करके उदयपुर और चित्तौड़ जिलों के कई गांवों में घूमे और होली के आने के पहले अर्थात् शिवरात्रि के बीत जाने पर हम वापिस बानेरा पहुँचे । इस प्रवास में मुझे कुछ अन्य यतियों की भी तरह तरह की बातें सुनने का अवसर मिला और वह मेरी सुशुप्त विद्या पढ़ने की अभिलाषा भी बढ़ने लगी ।

(७)

श्री सुखानन्द जी का प्रवास और भैरवी-दीक्षा

वंशाख महिने की पूर्णिमा के आसपास जावद गांव के निकट जो सुखानन्द जी नामक महादेव का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। वहाँ पर मेला लगा करता है। उस मेले के अवसर पर बानेण के वह सेवक जी जाना चाहते थे। ऐसे स्थानों को देखने की मेरी इच्छा अब धीरे धीरे बढ़ रही थी। अतः मैं वहाँ जाने को तैयार हुआ। बानेण से मैं और सेवक जी दोनों ही पैदल चले और निम्बाहेड़ा होकर अठाणा होते हुए सुखानन्द जी पहुँचे।

सुखानन्द जी के उस मेले के अवसर पर आसपास के सैकड़ों लोग आये हुए थे। कुछ साधु, सन्त, बाबा, वैरागी आदि लोग भी वहाँ पर जमा हुए थे। उनमें से एक बड़े खाखी बाबा का भी अच्छा काफिला था। उन खाखी बाबा के साथ एक हाथी, दो चार घोड़े, दो चार ऊँट आदि सवारी का भी लवाजमा था। मेले में सबसे अधिक आकर्षण योग्य खाखी बाबा का दर्शन करने वाली बात थी। एक खुले मैदान में खाखी बाबा का तम्बू लगा हुआ था। और उसके आसपास कुछ छोटी बड़ी छोलदारियां लगी हुई थी खाखी बाबा का निवास उस बड़े तम्बू में था। एक अच्छे पलंग पर बहुत बड़ा व्याघ्र चर्म बिछाकर उस पर वे बैठे रहते थे। उनके सामने ५, ७ हाथ की दूरी पर एक बड़ी सी धूनी जला करती थी। जिसमें भक्त लोग लकड़ी के उपरान्त घी का हवन किया करते थे। लोग, जो दर्शन करने आते थे अपने हाथ में नारीयल

लाया करते थे जिसको उस धूनी के सम्मुख फोड़ कर उसका कुछ हिस्सा तो धूनी के अग्नि देवता को अर्पण कर देते थे और बाकी का हिस्सा खाखी बाबा के सम्मुख रखी हुई एक चौकी पर रख देते थे । जिसमें से कुछ टुकड़े अपने हाथ से उठाकर खाखी बाबा उन भक्त जनों को प्रसाद के रूप में दे दिया करते थे । भक्त जन उस प्रसाद को प्राप्त करके बड़े हर्षित होते थे और फिर अपनी शक्ति के अनुसार नकद चांदी के रुपये खाखी बाबा को भेंट करते थे । इस प्रकार उन खाखी बाबा के सामने रुपयों का ढेर लगता था जिनको भक्त जनों के चले जाने के बाद खाखी बाबा का मुख्य शिष्य उठाकर एक सन्दूक में रखता जाता था और वह सन्दूक खाखी बाबा के बैठने के पलंग के नीचे जाप्ते के साथ रखा रहता था ।

खाखी बाबा डीलडोल में अच्छे हूष्ट-पुष्ट थे सिर पर खूब गहरी जटा थी, और अच्छी लम्बी दाढ़ी थी सारे बदन पर भभूत लगाये रखते थे । कपाल पर चंदन का गोल लम्बा तिलक करते थे । कानों में स्फटिक काँच के बड़े कुण्डल पहनते थे । कमर में छोटा सा लंगोट बाँधे रहते थे । जिससे पुरुष चिन्ह ढका रहे पलंग पर बगल में एक लम्बा सा लौहे का चिमटा पड़ा रहता था ।

खाखी बाबा के दर्शन करने वाले लोगों की भीड़ उनके तम्बू के सामने लगी रहती थी । परन्तु तम्बू के दरवाजे के आगे खाखी बाबा के जैसे ही स्वरूप वाले दो शिष्य बैठे रहते थे । जो लोगों को बारी बारी से तम्बू के अन्दर जाने की इजाजत दिया करते थे । दो चार व्यक्तियों के सिवाय अधिक व्यक्तियों को तम्बू के अन्दर जाने नहीं देते थे ।

दोपहर को बारह बजे के बाद ३ बजे तक कोई भी व्यक्ति उनका दर्शन नहीं कर सकता था । उस समय वे अपना भोजनादि कार्य किया करते थे और कुछ आराम भी लिया करते थे ।

उनके साथ एक पीतल का कोई ३, ४ फुट जितना ऊँचा सिंहासन था, जिसमें चांदी का बना हुआ शिव लिंग स्थापित था । संभ्या के

समय वह सिंहासन तम्बू के बाहर रख दिया जाता था और उसकी बड़े ठाठ से आरती उतारी जाती थी। उस समय खाखी बाबा के साथ वाले सब परिजन तथा आगंतुक यात्री सम्मिलित होकर भजन कीर्तन आदि किया करते थे। शिवलिंग की यह आरती पूजा आदि कोई रात्रि के दो तीन घंटे चलती रहती थी और खाखी बाबा उस सिंहासन के पास ही एक चौकी पर पद्मासन लगा कर बैठे रहते थे। वे प्रायः लोगों से कुछ विशेष बातचीत नहीं किया करते थे।

उनके लबाजमें की सारी व्यवस्था उनका जो मुख्य कामदार था वह किया करता था। भोजन के लिये दोपहर के बारह बजे बाद तैयारी होती थी। जो तीन चार बजे तक चलती थी। भोजन में प्रायः सदा मालपुआ अथवा चूरमाबाटी का व्यवहार होता था।

कुल मिलाकर उनके साथ पच्चीसेक मनुष्यों का काफिला था। जिनमें सात आठ छोटी बड़ी उम्र के उनके शिष्य थे जो खाखी बाबा के समान ही बदन पर भभूत लगाये रहते थे और कोपीन पहने रहते थे। कुछ का सिर बिल्कुल मुँड़ा हुआ था और कुछ के सिर पर छोटे बड़े तरह तरह के बाल थे। सभी के कानों में स्फटिक के कुन्डल थे। कुछ के गले में रुद्राक्ष की माला भी पड़ी हुई थी। इन खाखी शिष्यों को पढ़ाने के लिये दो तीन ब्राह्मण पंडित भी साथ में थे, जो यथा समय उनको व्याकरण काव्य आदि पढ़ाया करते थे।

जिन सेवक जी के साथ मैं सुखानन्द जी गया था वे सेवक जी भी उन खाखी बाबा से परिचित थे। अतः वे मुझे भी खाखी बाबा के दर्शन कराने के लिये ले गये। सेवक जी ऐसे समय वहाँ गये जबकि अन्य लोगों की कोई भीड़ नहीं थी। सेवक जी ने खाखी बाबा को नमस्कार किया और उनके सामने भेंट स्वरूप एक रुपया रखा। बाद में खाखी बाबा ने उनको कुछ प्रसाद दिया। उनकी तरह मैंने भी हाथ जोड़ कर खाखी बाबा को नमस्कार किया, पर मेरे पास भेंट चढ़ाने हेतु रुपया पैसा कुछ भी नहीं था। इसलिये मैं कुछ दूर खड़ा रहा और उनकी तरफ टकटकी लगा कर देखने लगा।

खाखी बाबा ने मेरी तरफ ध्यान पूर्वक देखा और फिर सेवक जी से पूछा—“यह बच्चा कौन है ?”

जवाब में सेवक जी बोले कि बानेण गाँव में कुछ समय पहले एक बहुत वृद्ध जैन यति कहीं बाहर से आये थे उनके साथ यह लड़का भी आया। यतिजी का स्वर्गवास हो जाने पर बानेण में जो एक यति रहते हैं, उनके पास यह लड़का रहता है। लड़का अच्छा बुद्धिमान है और इसकी विद्या पढ़ने की बड़ी इच्छा है। मैं इस भेले पर यहां आया तो इसको भी यह तीर्थ दिखाने साथ ले आया हूँ। लड़का कहीं रह कर विद्या पढ़ना चाहता है। आप जैसों की कुछ कृपा हो जाय तो इसका मनोरथ सफल हो सकता है।

सेवक जी की यह बात सुनकर न जाने उन खाखी बाबा के मन में क्या भाव पैदा हुए ? उन्होंने अपने हाथ के इशारे से मुझे अपने नजदीक बुलाया और मेरे चेहरे के सामने कुछ तीक्ष्ण नजर से देखकर फिर मेरे हाथ को अपने घुटने की तरफ लम्बा करने को कहा।

मैंने बड़े संकोच के साथ वैसा किया। बाद में मेरा दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर मेरी अंगुलियाँ देखी और हाथ की कुछ रेखाएँ भी देखी। बाद में मुझे मीठे स्वर से पूछा—“क्यों बच्चा तेरा नाम क्या है ?”

मैंने जवाब में कहा—“किशन लाल मुझे कहते हैं।”

फिर पूछा—“तेरे माँ बाप हैं ?”

जवाब में मैंने कहा—“बाप तो नहीं है पर माँ है।”

“तेरी माँ कहाँ रहती है ?”—उन्होंने पूछा

उत्तर में मैंने रूपाहेली का नाम बता दिया।

बाद में उन्होंने पूछा—“क्या तेरी पढ़ने की इच्छा है ?”

जवाब में मैंने केवल “हाँ” इतना ही कहा।

इतने में ५-७ व्यक्ति जोर जोर से नमस्कार करते हुए तम्बू

में आ गये, तब खाखी बाबा ने सेवक जी से कहा—“तुम फिर आना ।”

सेवक जी ने हाथ जोड़ कर—‘जो हुकम’ कहा और मुझे कहा कि चलो बाहर चलें ।

हम फिर सुखानन्द जी के कुंड में नहाने आदि के लिये चले गये । मेले में जो बहुत सी दुकाने लगी थीं, उनमें से सेवकजी ने कुछ पूड़ी आदि खाने का सामान लिया और उसे खाकर हम किसी विश्रान्ति स्थान पर जाकर आराम करने लगे ।

शाम होने पर हम मेला देखने चले । मेले में बहुत सी छोटी-बड़ी दुकानें लगी थीं, जिनमें ग्रामीण-जनों के उपयोग की चीजें रखी हुई थीं । मेले में जो प्रायः आसपास के लोग आये हुए थे, वे चीजें खरीद रहे थे । औरतें, बच्चे और नौजवान भी अपनी पसन्द की चीजें खरीद रहे थे । कुछ मिठाई आदि खाने की चीजों की भी छोटी-बड़ी दुकाने लगी हुई थी, जिनसे बच्चे आदि दो दो चार चार पैसे की चीजें बड़े उत्साह से ले रहे थे ।

मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसा मेला पहले कभी नहीं देखा था । मेले में चक डोलर जैसे भूले आदि भी लगे थे, जिनमें छोटे-छोटे बच्चे और बड़ी तथा बूढ़ी औरतें उत्साह के साथ बैठती और भूलती थी । यह देख कर मेरा भी मन भूले खाने को उत्सुक हुआ ; परन्तु उसके लिये देने को मेरे पास पैसा नहीं था । अतः मैं दूर खड़ा-खड़ा देखता रहा और जो लोग भूले का आनन्द ले रहे, मैं उनके आनन्द से ही मनमें आनन्दित हो रहा था ।

इतने में साँझ हो गई और खाखी बाबा के तम्बू में आरती होना प्रारम्भ हो गई । सेवक जी भी आरती में जाने को उत्सुक हुए और मुझे खोजते हुए मेरे पास पहुँचे और बोले—“किशन भाई चलो आरती देखने चलें ।”

हम दोनों फिर खाखी बाबा के डेरे पर गये । वहाँ कोई एक घन्टे तक आरती भजन कीर्तन आदि होते रहे ।

खाखी बाबा अपने तम्बु से बाहर आकर एक चौकी पर बैठे हुए थे । उनके पास जाकर लोग नमस्कार के साथ पैसे टके आदि भेंट करते थे । उनके पास एक लंगोट धारी अच्छा हूष्ट पुष्ट कुछ बड़ी उमर का शिष्य खड़ा हुआ था जो उन पैसों को लेता और बदले में उन लोगों को प्रसाद दिया करता था । खाखी बाबा खास कुछ बोलते नहीं थे, हाथ के इशारे से आशीर्वाद देते रहते थे ।

बाद में जब सब लोग चले गये और दो चार परिचित जन ही वहाँ बैठे थे, तब खाखी बाबा ने उन सेवकजी से कहा—“सोने का कहां इन्तजाम किया है ?”

तब सेवकजी ने हाथ जोड़कर कहा—“हुकुम हम यहीं कहीं आपकी सेवा में पड़े रहेंगे ।”

खाखी बाबा ने अपने एक परिजन को बुलाकर कहा कि इनके सोने का इन्तजाम कहीं अपने डेरे में ही कर दो । वह परिजन सेवक जी के साथ मुझे भी एक छोटी-सी छोलदारी में ले गया और बताया कि इसमें बाबाजी महाराज के कामदार सोते बैठते हैं और खास खास चीजें यहाँ रखते हैं, दूसरा कोई आदमी यहाँ नहीं आता जाता । आप लोग यहाँ खुशी से सो जाइये यह लड़का कुछ थका हुआ मालूम देता है, इसलिये यह यहाँ सो जाय और बाबाजी ने कहा है कि आप उनसे फिर मिल लीजिये !

मैं वास्तव में थका हुआ था । इसलिये मैं तुरन्त ही वहाँ पर जो एक दरी सी बिछी हुई थी, उस पर जाकर लेट गया । सेवकजी मुझसे यह कहते हुए उठ खड़े हुये—“किशन भाई तुम अच्छी तरह सो जाओ । मैं खाखी महाराज के पास जाऊँगा और उनसे कुछ बातें करूँगा मेरी

कोई फिक्र मत करना !”—और वे चले गये । मुझे तुरन्त ही नींद आ गई । सेवकजी वापिस कब लौटे इसका मुझे कुछ पता नहीं था ।

सवेरा होने पर हम उठे—सेवकजी ने कुण्ड में नहाने चलने को कहा इससे हम उधर ही चल पड़े, फिर स्नान करके महादेव जी के दर्शन किये । तब सेवकजी कुछ नमकीन मिठाई आदि नाश्ते के लिये ले आये और बोले कि—चलो उस भाड़ के नीचे बैठकर नाश्ता कर लें । जब हम नाश्ता कर रहे थे तब सेवकजी बोले—“किशन भाई, रात को मुझे खाखी बाबा ने कहा कि जो लड़का तुम्हारे साथ है, वह किसी बड़े खानदान का है—इसकी भाग्य रेखा बहुत अच्छी है आगे चलकर वह अच्छा नाम कमावेगा और बड़ा विद्वान बनेगा, इसलिये तुम्हारी जो विद्या पढ़ने की मन्शा है, वह अगर तुम इन खाखी महाराज के पास रहोगे तो अच्छी तरह पूरी हो सकेगी, खाखी महाराज चाहते हैं कि तुम इनके पास रहोगे तो तुम्हारे पढ़ने-लिखने और खाने पीने आदि का पूरा इन्तजाम कर देंगे । इतना ही नहीं यदि तुम इनके शिष्य बन जाओगे तो ये तुमको अपना मुख्य शिष्य बना देंगे । इनके पास बहुत लवाजमा है और कई जगह बड़े-बड़े मठ, मकान, मंदिर आदि हैं । इसलिये मेरी तुमको यह हितकर सलाह है कि तुम इनके शिष्य बन जाओ । बानेण में रहने से तुम्हारा कुछ भी भला न होगा और यतियों की अपेक्षा इन खाखी महाराज के पास रहने से बहुत से गाँव, शहर और देश देखने को मिलेंगे ।

पिछले कई महिनों से सेवकजी के साथ मेरा घनिष्ट परिचय हो गया था । वे मुझे अनेक तरह की अच्छी-अच्छी बातें कहा करते थे । बीच में वे मुझे उदयपुर भी जब ले गये थे, तब वहाँ उन्होंने मेरे विद्या पढ़ने की दृष्टि से एकाध महन्तजी वगैरह के स्थान भी दिखाये थे । इस लिये सेवकजी की बातों पर मेरी श्रद्धा-सी हो गई थी ।

सेवकजी ने खाखी बाबा के साथ रहने तथा विद्या पढ़ने की जी बातें मुझसे कहीं वे मुझे अच्छी लगी, और मैंने खाखी बाबा का जो कुछ

रंग ढंग देखा उससे भी मेरा मन कुछ आकृष्ट हुआ। मैंने सेवकजी से कहा कि अगर आप सलाह देते हैं तो मैं खाखी महाराज के पास रहना पसन्द करता हूँ। मेरी पढ़ने की इच्छा इससे पूरी हो सकेगी।

हम वहाँ से उठकर खाखी महाराज के डेरे पर गये तो वे उस समय अपने इष्टदेव की पूजा कर रहे थे। हम तम्बु के बाहर बैठे तो उन्होंने हमें देखकर अन्दर आने का इशारा किया। हम फिर अन्दर चले गये। सेवकजी ने साष्टांग नमस्कार किया। मैंने दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। उनकी पूजा का पाठ कुछ बाकी था। इसलिये हमें एक तरफ बैठने का इशारा किया और जल्दी-जल्दी उन्होने अपनी पूजा विधि पूरी की।

सेवकजी ने उनको हाथ जोड़कर कहा “महाराज यह किशन भाई आपकी सेवा में रहकर विद्या पढ़ना चाहता है। मैंने इससे सब बात कह दी है। आप जैसा चाहे वैसे इसके लिये इन्तजाम करने की कृपा करें।”

खाखी महाराज का सौम्य मुख गंभीर हो गया। वे कुछ विचार कर बोले—“आज का दिन वैशाखी पूर्णिमा का बहुत मंगलमय और उत्तम दिन है और यहाँ सुखानन्दजी का बड़ा पवित्र तीर्थ धाम है। हमारी इच्छा है कि यह आज ही गुरु मंत्र लेले और दीक्षित शिष्य बन जाय।”

फिर मेरे सामने पूर्ण सौम्य दृष्टि से देखकर वे बड़े वत्सल भाव से बोले “क्यों बच्चा तेरे को हमारी बात पसन्द है ?”

मैंने कहा—“महाराज आप जो कुछ कहें और करें मुझे स्वीकार है।”

खाखी बाबा के सानिध्य में उस समय मेरे मन में उनके शब्दों ने जादू का सा असर किया और उनकी इच्छा के अनुसार मैं करने को तैयार हो गया।

फिर खाखी बाबा ने सेवकजी से कहा—कामदार जी को जाकर

कहो प्राज्ञ बारह बजे के शुभ मुहूर्त में इस लड़के को गुरु मंत्र देकर दीक्षा देना है। इसलिये उसका इन्तजाम करे।

उसके बाद तुरन्त आरती का कार्यक्रम शुरू हुआ, जो आध पौन घण्टे तक चला, उस समय करीब आठ बजे होंगे, फिर कामदार जी हमको अपनी छोलदारी में ले गये और मुझसे कहने लगे “क्या तुम खाखी महाराज के चेले बनना चाहते हो ?”

मैंने कहा—“जैसा बाबाजी का हुकुम हो।”

तब कामदारजी बोले—“बाबाजी के चेले बनने के लिये तो तुमको सिर मुंडाना होगा। सारे बदन पर भभूत लगानी होगी। एक मात्र लंगोट पहननी होगी, हाथ में लौहे का चिमटा रखना होगा। दिन में तीन बार स्नान करना होगा। सुबह शाम देव-पूजा करनी होगी और फिर जैसे खाखी महाराज शिक्षा देंगे, उसे धारण करनी होगी।”

जवाब में मैंने कहा—“खाखी महाराज जैसा कहेंगे वैसा मैं करूँगा।”

फिर कामदारजी ने कहा—“खाखी महाराज का एक बड़ा चेला है, जो बहुत दुष्ट विचार का है और उसका चरित्र भी खराब है। इसलिये खाखी महाराज उससे नाराज रहते हैं और कुछ बरसों से उसको अपने पास नहीं आने देते। वह बारबार खाखी महाराज को धमकियाँ देता रहता है। खाखी महाराज अब काफी वृद्ध हो गये हैं, अतः इनके मन में ऐसा लगता रहता है कि कोई अच्छा सुयोग्य शिष्य मिल जाय तो उसको अपना उत्तराधिकारी बनावे। अभी और दो चार शिष्य जो इनके साथ हैं, उनमें कोई अच्छा बुद्धिमान और खानदान कुलका नहीं है। इसलिये अगर तुम पर खाखी महाराज की अच्छी कृपा हो गई तो तुम बड़े महन्त बन जाओगे। ऐसी बातें कहते हुए उन्होंने एक नाई को बुलवा भेजा। दूसरी तरफ खाखी महाराज के पास रहने वाला जो एक प्रोढ़ उम्र वाला दीक्षा धारी शिष्य था और जिसके पास रुपये पैसे आदि रहते थे उसको बुलाया और बोले—“आज ही बारह बजे के समय इस

नये लड़के को महादेवजी के मन्दिर में दीक्षा देनी है, इसलिये पूजा आरती आदि की सब सामग्री तैयार कर लेना और इसका सिर-मुंडन हो जाने पर स्नान आदि कराकर भभूत लगाकर कोपीन पहनाकर मंदिर में ले आना, जहाँ पर खाखी महाराज इसे गुरु मंत्र देकर दीक्षा देंगे ।”

खाखी महाराज के इस चेले ने बहुत गौर से बड़ी देर तक मेरे सामने देखा और कामदारजी से कहा कि गुरुजी ने चेला तो बहुत अच्छा पसन्द किया और फिर मुझ से पूछा—“भैया तेरा नाम क्या है ?”

मैं जवाब दूँ उसके पहले ही उन सेवकजी ने—जो मेरे पास ही खड़े थे, बोले—“इसका नाम किशन लाल है !”

सुनकर चेलाजी ने कहा—“तब तो यह आज से किशन भैरव बनेगा”—ऐसा कहकर कुछ गुनगुनाता हुआ वह शिष्य अपनी छोलदारी में चला गया ।

सेवकजी ने कामदारजी से पूछा—“इन चेलाजी महाराज का नाम क्या है और कितने बरस इनको दीक्षा लिये हुए हो गये ? ये रहने वाले कहाँ के हैं ?”

कामदारजी बोले—इनका नाम रुद्र भैरव है, इसको दीक्षा दिये दस बारह बरस हो गये हैं । मथुरा के किसी चौबे का लड़का है । खाखी महाराज का इस पर कुछ विश्वास है; परन्तु मिर्जाज जरा वैसा ही है । बात बात में बिगड़ जाता है और दूसरे चेलों से ईर्ष्या भी रखता है । इस लिये उनको बुरा भला कहा करता है !”

इतने में नाई आ गया तो वे मुझसे बोले—“ले भैया नाई के सामने बैठ जाओ, जिससे तुम्हारे माथे का मुंडन हो जावे ।”

कामदारजी का आदेश पाकर मैं मन में हँसता हुआ नाई के सामने बैठ गया । नाई ने तुरन्त अपना उस्तरा निकाला और पत्थर की सिल्ली पर दो चार बार उस्तरे को उल्टा सीधा फिरा कर उसकी धार बनाली और एक लौटे से पानी लेकर मेरे सिर के बाल गीले कर दिये, फिर

उस्तरा मेरे सिर पर फेरने लगा और मुझसे तरह तरह के प्रश्न पूछने लगा, बोला—“कँवर साहब कहाँ के हो ? क्या खाखी महाराज के चेले बन रहे हो, साथ में आपके कौन है? किस जाति के हो? खाखी महाराज के पास कितने दिन से रह रहे हो ?”

ऐसे कई प्रश्न वह करता जाता था और उस्तरे से मेरे सिर के बाल साफ किये जा रहा था । मैं उसकी बातों का कोई खास उत्तर नहीं देता था, तब वह फिर बोला—घर से लड़ भगड़ कर भाग आये मालूम देते हो, इस तरह अच्छी खानदान वाले घर के लोगों से चुपचाप भाग आना और ऐसे बाबा जोगटों की जमात में आ मिलना कोई अच्छी बात नहीं है । ये जोगटे न जाने कहाँ के, किस कोम के, किस खानदान के होते हैं । इनमें बहुत से बुरी आदत वाले, गांजा भांग पीने वाले, रंडी बाजी करने वाले होते हैं । आपको इनकी जमात में मिल जाने की किसने सलाह दी । ”

ऐसी अनेक बातें वह नाई बिना पूछे ही कहता जाता था । उसकी बातें सुनकर मेरे मन में कुछ विचार भी उठ रहे थे । सिरका मुंडन पूरा होते ही मैं उठ खड़ा हुआ इतने में कामदारजी आ गये और उन्होंने एक रुपया नाई को बखशीश दिया फिर वे मुझसे बोले—‘चलो भैया अब कुंड पर जाकर अच्छी तरह स्नान करलो, वहीं पर चेलाजी महाराज तुम्हारे शरीर पर भभूत लगावेंगे, तिलक आदि बनावेंगे ।

मैं शीघ्र उत्साह के साथ कुंड पर पहुँच गया । और पहना हुआ कुरता तथा मैली सी धोती थी उसे उतारकर साथ में जो एक मात्र पुराना गमछा था उसे कमर में लपेट लिया और कुंड में कूद पड़ा—अच्छी तरह शरीर खूब मलकर और सिर को खूब हाथों से रगड़ कर धोया—तब सेवकजी और कामदारजी के कहने से बाहर आया और महादेव जी के मंदिर के पास वहाँ के बाबाजी की जो कुटिया थी—हम सब उसमें गये । वहाँ पर खाखी बाबा के दो या तीन चेले बैठे हुए थे तथा सुखानन्द जी के खाखी बाबा भी एक मृगछाला बिछा कर उस

पर आसन जमाये बैठे थे। उनके सामने एक धूनी बनी हुई थी, जिसमें कुछ लकड़ियाँ जल रही थी और राख का ढेर जमा हुआ था। मुझे पहले सुखानन्द जी वाले बाबा के पांवा धोक लगाया गया। उन्होंने कुछ आशीर्वादात्मक शब्द कहे फिर मुझे एक तरफ खड़ा करके खाखी बाबा के उन बड़े शिष्य ने एक भगवे रंग की लंगोट का कपड़ा दिया और कहा कि जैसे हम लंगोट पहने हुए हैं वैसे तुम पहन लो। मुझे इससे पहले नदी, तालाब, बावड़ी आदि में स्नान करते समय लंगोट पहनने का अच्छा अभ्यास था इसलिये मुझे लंगोट लगाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। लंगोट के साथ कटि पर बाँधने के लिये मूँज की बनी हुई मोटी रस्सी भी दी गई फिर मुझे उस धूनी के चारों तरफ तीन चक्कर लगाने के लिये कहा गया, साथ में, 'ओं नमः शिवायः' इस मंत्र वाक्य का उच्चारण भी करते रहने की सूचना दी—बाद में धूनी के एक किनारे पर दोनों हाथ घुटनों की तरफ लम्बे करके खड़े रहने का आदेश दिया और फिर खाखी बाबा के बड़े शिष्य ने उस धूनी में से बारीक भभूत लेकर उसे गंगाजल में घोलकर मेरे सारे शरीर पर लेप कर दिया। मेरे कपाल, दोनों भुजाओं तथा छाती पर चन्दन का त्रिपुंड बनाया गया; मेरे दोनों कानों में लोहे के छल्ले पहनाये गये। मेरे कान पहले से बिधे हुए थे, दोनों हाथों में भी लोहे के पतले कड़े पहना दिये गये और दाहिने हाथ में लोहे का चिमटा दिया गया, जिसमें चार पाँच कड़ियाँ लगी हुई थी। बाँये हाथ में एक छोटा सा त्रिशूल धारण कराया गया—एक छोटा सा पीतल का कमण्डल तथा बैसे ही एक मृगछाला दूसरे हाथ की वगल में दी गई। गले में रुद्राक्ष की माला पहनाई गई।

ऐसा बटुक भैरव का स्वाँग धारण कर मैं महादेव जी के मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा मेरी दाहिनी तरफ खाखी बाबा के मुख्य शिष्य चल रहे थे। वे मुझे 'ॐ नमः शिवायः' इस वाक्य का उच्चारण करवा रहे थे और दायें हाथ में जो चिमटा था उसको इस तरह हिलाते जाना सिखा रहे थे जिससे उसमें लगी कड़ियों का छन्न-छन्नाट शब्द होता रहे।

महादेव जी के मन्दिर में जब हम पहुँचे तो वहाँ चौकी पर खाखी बाबा बैठे हुए नजर आये, तब मुझे दोनों हाथ जोड़कर उन्हें मुख तथा कपाल से लगाकर और दोनों घुटने जमीन पर टेक कर पंचांग प्रणिपात करने को कहा गया। वैसा करने पर खाखी बाबा ने अपने दाहिने हाथ में भभूती लेकर मेरे मस्तक पर तीन बार मल दी और कुछ मंत्र मन में बोलते हुए मेरे सारे शरीर पर भी उसी तरह भभूत लगाई फिर मेरे कान में उन्होंने कहा—‘मैं शिवानन्द भैरव तेरा गुरु हूँ और मैं अब तुझे भैरवी दीक्षा देकर अपना शिष्य बना रहा हूँ, तेरा नाम मैं किशन भैरव स्थापित करता हूँ।—इसी प्रकार के पाँच सात वाक्य उन्होंने संस्कृत भाषा में कहे। बाद में ‘ओं नमः शिवायः’ का जय घोष किया—जिसका वहाँ उपस्थित खाखी बाबा के शिष्य और परिजन आदि सबने मिलकर उच्चारण किया। बाद में महादेव जी की आरती उतारी गई और कुछ भजन गाये गये। उस समय उस मंदिर में बाहर के अन्य किसी जन को नहीं आने दिया गया था।

यह दीक्षा विधि पूरी करके खाखी बाबा मुझे अपने साथ लेते हुए सभी साथी एवम् परिजनों को जुलूस के रूप में अपने डेरे पर लाये।

डेरे पर पहुँचते ही शंख बजाया गया और खाखी महाराज की निज की पूजा उपासना का जो इष्टदेव की मूर्ति आदि रखने का चाँदी, ताँबा, पीतल आदि धातुओं से बना हुआ अच्छा बड़ा-सा सिंहासन था उसके सन्मुख आरती एवम् धूप दीप आदि पूजा विधि पूरी की गई, फिर मुझे एक चौकी पर आसन लगाकर बैठ जाने का आदेश हुआ। वह मध्याह्न कालीन आरती और पूजा विधि देखने के लिये बहुत से नर नारी वहाँ एकत्रित हो गये उनके सामने खाखी बाबा ने अपने नव दीक्षित शिष्य का कुछ बयान किया और सबको नमस्कार आदि करने की सूचना दी।

मैं एक छोटा-सा नव दीक्षित खाखी बाबा के स्वाँग में वहाँ बैठा हुआ मुस्करा रहा था। पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे आश्चर्य के रूप में

मुझे देखने को दौड़ आये । कई लोगों ने मेरे सामने कुछ पैसे टके रखे और हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगे । बाबाजी के शिष्य ने सबको किशन भैरव के नाम की जय पुकारने को कहा, साथ में अपने गुरु खाखी महाराज शिवानन्द भैरव की भी जय बोलने को कहा, इसके बाद भोजन का समारंभ शुरू हुआ ।

यूँतो खाखी महाराज के डेरे पर हमेशा ही माल ताल उड़ा करता है, पर उस दिन कुछ विशेष रूप से भोजन सामग्री बनाई गई थी । सब जनों को भोजन करवाने के पहले एक थाल भरकर तो देवता के भोग के लिये लाया जाता था और दूसरा थाल खाखी महाराज के भोजन के लिये लाया जाता था, उस दिन एक तीसरा थाल भी लाया गया जो नये शिष्य के खाने के लिये था खाखी महाराज ने अपने ही तम्बु में एक तरफ मुझे बिठाकर अपने हाथ से मेरे दाहिने हाथ में कुछ खाने की चीज रखकर मुझे 'ओं नमः शिवायः' इस वाक्य के साथ उसे खाने का आदेश दिया ।

उस मेले में और भी अनेक बाबा, साधु, संत, सन्यासी, बैरागी आदि आये हुए थे । उन सबको आज खाखी बाबा की ओर से भोजन देना निश्चित हुआ था । इसलिए उन सबको भी भोजन के समय बुलाया गया । खाखी बाबा के तम्बू के सामने मैदान में पांच सात अच्छे बड़े वृक्ष लगे हुए थे । उन्हीं के नीचे सबको भोजन करने बिठाया गया । कुल मिलाकर कोई सौ-सवासौ भोजनार्थी थे । इनमें कुछ स्त्रियाँ भी थीं जो साधु, बैरागी का सा भेष पहने हुई थीं । अनेक तरह की बोलियाँ बोलने वाले उनमें शामिल थे । कई जनों की बोली तो मेरी समझ में भी नहीं आती थी । पर उस भोजन के समय सभी की बातचीत का मुख्य विषय आज होने वाले बाबाजी के नव दीक्षित बटुक भैरव का था और इसीलिए बाबाजी ने आज यह भोजन समारंभ करवाया था । भोजन कर लेने के बाद वे सभी भोजनार्थी उठ-उठकर खाखी महाराज को बड़े आदर के साथ नमस्कार करने आये, खाखी बाबा ने उन सबको

यथायोग्य किसी को चबन्नी किसी को अठन्नी और किसी को रुपैया बक्षीश दिया ।

मैं भोजन कर लेने के बाद उस छोलदारी में चला गया और वहां पर मृग छाला बिछाकर उस पर पद्मासन लगाकर जा बैठा था । पास में वह चीमटा, त्रिशूल और कमंडल रख लिया था । खाखी महाराज ने कहा कि यहाँ बैठे-बैठे “ओम् नमः शिवायः” इसका मन में जाप करते रहना और जो कोई तेरे पास आवे और नमस्कार करे तो उसके सामने भी इसी मंत्र का उच्चारण करते रहना और किसी प्रकार की कोई बातचीत मत करना ।

खाखी महाराज के दर्शन करने के पश्चात् कई साधु संत मुझे देखने आये और कुछ बोलने भी लगे परन्तु मैं खाखी महाराज की आज्ञानुसार उक्त मंत्रोच्चार के सिवाय और कुछ नहीं बोलता था, मन में जरूर हँसता रहता था परन्तु ऊपर से गम्भीर भाव रखता हुआ शान्त होकर बैठा रहा ।

इतने में संध्या हो गई । और खाखी महाराज के डेरे के सम्मुख आरती और भजन कीर्तन की तैयारी हुई । उस आरती में अनेक लोग शामिल होने आये । आगन्तुक वे सभी अन्य साधु, सन्यासी, बाबा, वैरागी भी उपस्थित हुए । आरती की पूजा-विधि सम्पन्न होने पर कुछ भजन मंडलियाँ वहाँ बैठी और कोई तीन चार घंटे तक भजन, गान आदि चलते रहे । खाखी महाराज उसी तरह अपने तम्बू के आगे चौकी लगाकर उस पर निश्चल आसन से बैठे रहे । वैसाखी पूर्णिमा की वह मधुर रात थी, आकाश में चन्द्रमा का शीतल प्रकाश फैला हुआ था । सुखानन्द जी के आस-पास छोटी-छोटी पहाड़ियाँ चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में बहुत सुन्दर दिखाई दे रही थी । खाखी महाराज की आज्ञा से मेरे बैठने के लिए उस तम्बू के निकट ही एक बड़ा आम का वृक्ष था उसकी गहरी छाया में पत्थर का छोटा-सा चबूतरा बना हुआ था, उस

पर मेरे बैठने व सोने की व्यवस्था की गई थी। जब तक भजन मंडलियों का गान, वादन आदि होता रहा, तब तक मैं बैठा २ एकाग्र मन से वह सब सुनता और देखता रहा।

कोई रात को एक बजे वह सब कार्य समाप्त हुआ और लोग शिवानन्द भैरव महाराज की जय बोलते हुए अपने २ स्थानों की तरफ चले। मुझे काफी थकान सी मालूम हो रही थी। इतने ही में खाखी महाराज उठकर अपने उस मुख्य शिष्य को लेकर मेरे पास आये और मीठे स्वर से बोले—‘किशन भैरव’, नींद आ रही होगी अब तुम आराम से सो जाओ और उस अपने शिष्य से कहा कि इसके सोने का कहां इन्तजाम करना सोचा है? तब वह शिष्य बोला कि गुरु महाराज मैं अपनी छोलदारी में इन्तजाम कर दूं? या यहीं इस खुले चबूतरे पर कर दूं? तब खाखी महाराज ने मुझ से पूछा कि ‘बच्चा’ ‘कहाँ सोना पसंद करेगा।’ मैंने कहा ‘‘महाराज यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यहीं सो जाऊँ। क्योंकि यह अच्छी खुली जगह है और चांदनी रात में हवा भी अच्छी आ रही है।’’ खाखी महाराज ने कहा ‘‘बच्चा जैसी तेरी मर्जी, किसी प्रकार मन में डरना मत। मैं भी सामने उसी तम्बू के दरवाजे के आगे चौकी पर सोता हूँ।’’ ऐसा कहकर खाखी महाराज अपने तम्बू की तरफ चले गये। चेलाजी ने एक मोटा-सा कम्बल लाकर उस चबूतरे पर बिछा दिया। सिरहाने के नीचे रखने के लिए एक छोटा-सा तकिया और ओढ़ने के लिए भगवे रंग में रंगी हुई मोटी-सी चद्दर भी दी।

मैं लेट जाने की तैयारी में ही था कि वे सेवक जी मेरे पास आ पहुँचे और बोले कि भैया अब तो तुम महाराज वन गये हो। आज सारा दिन मैं तुम्हारी इस दीक्षा की व्यवस्था और खाने पीने आदि के लिए जो भोजन बना उसमें लगा रहा। ये खाखी महाराज मुझे बहुत बरसों से जानते हैं और कई दफा मैं इनके साथ घूमा फिरा हूँ। मैंने तुम्हारे विषय में बहुत कुछ बातें इनसे की हैं और ये तुम्हें बहुत अच्छी तरह रखेंगे, और विद्या पढ़ाने का इन्तजाम करेंगे। तुम्हारे चेहरे और

लक्षण वर्गरह देखकर इनका मन तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ है। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मन में न करना और अभी अपनी माँ को भी कुछ बात न कहलाना। मैंने इनसे कहा है कि तुम किसी ब्राह्मण के लड़के हो तुम्हारे पिता आदि कोई नहीं हैं। सो इस बात को ध्यान में रखना और किसी से और कोई बात न कहना। कल यहाँ से खाखी महाराज का डेरा उठेगा और जावद, नीमच आदि गांवों में होते हुए ये आषाढी पूनम के आसपास उज्जैन जाना चाहते हैं। वहाँ पर चौमासे के चार महीने रहेंगे। इत्यादि।

ऐसी बातें करते हुए वे सेवक जी भी उसी पेड़ के पास एक दूसरा अच्छा सा पेड़ था उसके नीचे जाकर सो गये। मैं अपने लिये बिछाये गये उस कम्बल पर लेट गया। कम्बल के पास ही मैंने अपना चीमटा, त्रिशूल और कमंडल रख लिया। रात को पहनने के लिए भगवे रंग में रंगी हुई एक कफनी भी चेला जी ने मुझे लाकर दे दी और कहा कि इसे पहनकर सो जाना। क्योंकि मेरे शरीर पर वह भभूति लगी हुई थी जिससे मुझे अटपटा सा लग रहा था अतः उस कफनी के पहनने से मुझे कुछ आराम सा लगा।

यद्यपि काफ़ी थकान के कारण मैं उस कम्बल पर कफनी पहनकर लेट गया परन्तु मुझे नींद नहीं आई। रात्री के उस शांत वातावरण में चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाये मैं पड़ा रहा और मेरे मन में आज के दिन की सारी घटना के विषय में अनेक प्रकार के विचार उथल-पुथल मचाने लगे। जिस दिन से रूपाहेली छोड़कर और अपनी माँ से अलग होकर उन स्वर्गवासी यतिवर श्री देवीहंस जी महाराज के साथ बानेण आया तब से लेकर आज के दिन तक की जीवन में घटने वाली विचित्र घटनाओं के सिंहावलोकन से मेरे मन में न जाने कैसे २ विचार आये। दो दिन पहले मैं बानेण से किस हेतु सुखानन्द जी की यात्रा करने आया था और किस प्रकार खाखी महाराज से मिलना हुआ और किस तरह अचानक ही एक रात में खाखी बाबा के चेला बन जाने का मन ने तय

कर लिया और आज दोपहर के एक घंटे के अन्दर ही शरीर पर भभूति लगाकर लंगोट पहन लिया और हाथ में चीमटा, कमंडल आदि लेकर खाखी बाबा का चेला बन गया। यदि माँ को इसकी खबर लगेगी, तो वह मन में क्या सोचेगी? इसका विचार होते ही मुझे एक प्रकार का हृदय में बड़ा आघात सा लगता हुआ मालूम दिया। उस समय मेरे मन में उस उद्वेग जनक रात्री का स्मरण हो आया जिसमें माँ ने किस प्रकार सारी रात अपनी छाती से लगाकर मुझे अपने पास सुलाया और बारम्बार अश्रू पूर्ण गालों से मेरा मुह भिगोती रही। मैं अपनी माँ को बिना ही किसी प्रकार की खबर कराये आज इस तरह एक अपरिचित खाखी बाबा का चेला बन गया। बानेण वाले धनचन्द्र यति भी जब यह बात सुनेगा तो उसके मन में भी क्या आयेगा और भी यति लोग जो मुझसे मिले थे और जिन्होंने मुझे अपने पास रखने आदि की बातें कहीं थीं वे भी यह घटना सुनेंगे तो क्या सोचेंगे। इस प्रकार के अनेक उलट-सुलट विचार मेरे मन में उत्पन्न हो रहे थे और उनके कारण निद्रा भी मेरे पास न आ सकी।

इतने में सवेरा हो गया सूर्योदय होने के पहले ही सवेरे पांच बजे खाखी महाराज उठ खड़े हुए। एक शिष्य ने पानी का भरा हुआ घड़ा उनके पास लाकर रख दिया जिससे उन्होंने स्नान कर अपना शरीर साफ किया और फिर तुरन्त उनके डेरे में जो धूनी लगी हुई थी उसमें से कुछ रक्षा लेकर छोटे से कमंडल में उसे धोलकर अपने शरीर पर लगा ली। फिर उच्च स्वर से ओम नमः शिवाय का जाप करते हुए अपने इष्ट देव की संक्षिप्त पूजा विधि करते हुए आरती करने का कार्य पूर्ण किया। अन्य शिष्यों आदि ने उपस्थित होकर शंख ध्वनि के साथ झालर आदि बजाये। फिर सबने खाखी महाराज को साष्टांग नमस्कार किये मुझे भी मुख्य चेलाजी ने आकर कहा कि चलो गुरु महाराज आरती कर रहे हैं, सुनकर मैं भी उनके साथ आरती में शामिल होने चल पड़ा तब चेलाजी ने कहा कि इस कफनी को उतार दो सो वैसा करके मैं उनके साथ हो लिया, फिर सबके साथ खाखी महाराज को

साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। खाखी महाराज ने पूछा कि क्यों बच्चा रात को नींद तो अच्छी आई न? जब मैंने कहा कि महाराज अनजान जगह आदि के कारण नींद कुछ ठीक नहीं आई; परन्तु चांदनी रात में इधर-उधर देखने में मेरा मन लगा रहा। खाखी महाराज ने कहा आज अपना डेरा यहाँ से उठेगा और जावद को जाना है। रुद्र भैरव और कामदार जी तुमको सब बातें बताते रहेंगे, उस तरह सब काम करते रहना किसी बात का मनमें संकोच न रखना।

फिर शौच आदि से निवृत्त होकर सुखानन्द जी के कुंड में नहाने गये। सभी ने अपने शरीर पर भभूति लगा ली। मैंने भी उनकी देखा देखी बड़े शौच से बदन पर भभूति मल ली। महादेव जी के दर्शन कर हम डेरे पर आये और फिर सब डेरा समेटने में लग गये। खाखी महाराज सुबह ठंडाई पिया करते थे, उस ठंडाई में बदाम इलायची आदि डाली जाती थी नियमानुसार मुख्य चेलाजी जब खाखी महाराज के लिये एक अच्छे बड़े से चांदी के लोटे में ठंडाई भरकर लाये तो खाखी महाराज ने चेलाजी से कहा कि एक गिलास भरकर इस नये बच्चे को भी दे दो, तदनुसार मुझे भी चेला जी ने एक चांदी का गिलास भर लाकर दिया। मैंने उसे खाखी महाराज की आज्ञा होने से बड़े संकोच के साथ पी लिया। चांदी के गिलास में पेय पीने का जीवन में वह प्रथम प्रसंग था इसलिये वह बात मन में सदा के लिए जम गई और जब कभी ऐसे चांदी के गिलास में दूध, चाय मोसम्बी का रस आदि पीने का प्रसंग उपस्थित होता है, उस दिन का वह प्रथम पानप्रसंग अवश्य याद आ जाता है।

खाखी महाराज के सब परिजन कूच करने की तैयारी में लग गये और डेरे आदि को समेट कर गाड़ी में रखने लगे। खाखी महाराज के काफिले में एक तो बूढ़ा सा हाथी था, तीन चार ऊंट और तीन चार ही घोड़े-घोड़ी थे तथा तीन चार ही बैलगाड़ियां थी। एक ऊंट पर दो नगारे रखे गये। और एक छोटा सा भगवा भंडा भी उस पर लगाया

गया एक दूसरे ऊँट पर खाखी महाराज की पूजा करने का सब सामान जिसमें महादेव जी आदि की मूर्तियां और उनका सिंहासन तथा आरती आदि की सब सामग्री रखी गयी। हाथी पर बैठने का लकड़ी का बना हुआ एक ठीक ढंग का हौदा था। उस पर भगवे रंग का मजबूत रेशमी कपड़े का बड़ा सा छाता लगा हुआ था। बाकी के ऊँट और घोड़े-घोड़ी सवारी के लिए थे। गाड़ियों में तम्बू-डेरे, बैठने की चौकी और खाने-पीने के काम के बर्तन आदि रखे गये।

जब चलने की सब तैयारी हो गई तो खाखी महाराज हाथी पर सवार हो गये। हाथी को चलाने वाला भभूत धारी खाखी शिष्य था जो काफी बड़ी उमर का तथा अच्छा हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला था। उसके एक हाथ में त्रिशूल था और दूसरे हाथ में हाथी को चलाने और बस में रखने के लिए लोहे का मजबूत अंकुश था। नगारे वाले तथा पूजा सामग्री वाले ऊँटों के सवार भी खाखी वेष धारी दीक्षित शिष्य थे। उस समय उस काफिले में हमेशा खाखी महाराज के साथ रहने वाले दीक्षित साधुओं के सिवाय उस मेले में आने वाले दस, बारह और भी बाबा, जोगी, साधु, बैरागी आदि साथ में हो लिये। इनमें चार पांच स्त्रियां भी थी जिनमें दो तो बिलकुल नव जवान सी लड़कियां थी और दो तीन प्रौढ़ और बड़ी उमर की थी। स्त्रियों के सिर मुंडे हुए थे। कपाल और मुंह पर भस्म लगी रहती थी। गले में सबके रुद्राक्ष मालाएँ पड़ी हुई थी बदन पर लम्बी भगवे रंग की कफनी पहने हुए थी। बगल में एक छोटा-सा बीटा लटकाये हुए और हाथ में पीतल का कमंडल लिए हुए आगे पीछे चल रही थी। चलने की सूचना के निमित्त नगारे वाले ऊँट पर बैठे हुए खाखी साधु ने सबसे पहले शंख बजाया और फिर नगरों पर डंके की चोटें लगायी, यह ऊँट सबसे आगे था, इसके पीछे खाखी महाराज का हाथी था, और उसके पीछे पूजा की सामग्री वाला ऊँट था। खाखी महाराज ने मेरे बैठने के लिए एक घोड़ी निश्चित की थी। एक घोड़ी पर रुद्र भैरव चलते थे, खाखी महाराज का जो कीमती सामान और रूपैया पैसा था उसमें से कुछ तो दो तीन छोटे संदूकों में

रखकर खाखी महाराज अपने बैठने के हाथी के हीदे के मध्य में रखते थे । कुछ परचुरणा कीमती सामान और पैसे टके रुद्र भैरवजी अपने सवारी वाले घोड़े पर जमा देते थे । बाकी का सब सामान जो गाड़ियों में रखा जाता था उस सबका हिसाब किताब कामदार जी के पास रहता था । ये कामदार जी किस जाति के और कहां के रहने वाले थे इसका तो मुझे आखिर तक पता नहीं लगा । परन्तु उनकी बोली से लगता था कि वे मथुरा प्रदेश के रहने वाले होंगे । कामदार जी बड़े चतुर और मिष्ट भाषी थे । सबके साथ अच्छा व्यवहार रखते थे । पहली ही बार जब मुझे उनकी छोलदारी में सोने का मौका मिला और उन्होंने मेरे मस्तक के मुंडवाने के लिए नाई को बुलाया और उसे दो चार शब्द में मस्तक मुंडने आदि के कारण की बात कही उससे मेरे मन पर एक सहानुभूति पूर्ण व्यक्ति के होने का असर पड़ा । उसी समय से वे बारम्बार देख-भाल करने की प्रवृत्ति रखने लगे । रुद्र भैरव जी ने चलते समय मुझे घोड़ी पर बैठ जाने को कहा परन्तु मैंने पैदल ही चलने की इच्छा व्यक्त की । मैंने कहा मुझे चलने का काफी अभ्यास है और चलने का शौक भी है । फिर मेरे साथ एक साधु को चलने का कहा गया । वे सेवकजी उस दिन बानेण जाने की सोचते थे परन्तु खाखी महाराज की सूचना-नुसार दो तीन दिन मेरे साथ ही रहना उन्होंने पसन्द किया और वे भी मेरी पद यात्रा में साथी हो गये, यों तो मैं अब तक कई बार पैदल चला था, परन्तु साधु जीवन की यह मेरी प्रथम पद यात्रा थी ।

सुखानन्द जी से चलकर हमारा काफिला अठाणा गांव में होता हुआ शाम को चार पांच बजे जावद पहुंचा । बीच में मध्याह्न के समय अठाणा के पास एक मैदान में जहाँ पर पांच सात घने वृक्ष थे और पानी का कुआँ था, वहीं पर विश्रान्ति ली गई । वहाँ भोजन के लिए दाल-बाटी बनाई गई ।

इस अठाणा गांव में मेरे परिवार का एक बन्धु रहता था । बहुत वर्षों पहले मैं अपने स्वर्गीय पिता के साथ अठाणा आया था । अठाणे

के जागीरदार रावजी के यहाँ कोई विवाह का प्रसंग था, जिसमें शामिल होने के लिए रूपाहेली से मेरे पिता आये थे। वह समय शायद वर्षा-काल का प्रारम्भ था। उस समय बड़ी जोर की वर्षा हुई थी, जिसके कारण अठाणा गाँव के पास बहने वाली नदी में पानी का बड़ा भारी पूर आ गया था। उस नदी के किनारे पर ही रावजी का कोई दरिबा सा मकान था जहाँ हमें डेरा दिया गया था। दरिबे में बैठकर नदी का पूर देखने में मुझे बड़ा आनन्द आया था। जिन्दगी में पहली ही दफे मैंने जोरों से बहने वाली नदी का प्रवाह देखा था इसलिए उसका स्मरण मेरे मन पर तादृश अंकित हो गया। उस समय की जोर की वर्षा से मैं उस दरिबा की पत्थर की फर्श पर फिसल पड़ा जिससे मेरे घुटने में बड़ी चोट आ गयी और मेरा घुटना सूज गया। फिर कई दिन तक उस पर पट्टा बांधे रखना पड़ा। इसका भी मुझे पूरा स्मरण बना रहा। खाखी का स्वांग धारण कर जब मैं अठाणा के पास से निकला तो उस घटना का भी मुझे स्मरण हो आया।

जावद के पास किसी देवस्थान के मैदान में हमारे काफिले का पड़ाव पड़ा और यथास्थान तम्बू डेरे आदि लगाये गये। जावद में खाखी महाराज को मानने वाले बहुत से महाजन, ब्राह्मण, राजपूत, धाकड़ आदि जाति के लोग थे; वे सब खाखी महाराज को नमस्कार आदि करने आये और रीति-रिवाज अनुसार निश्चित डेरा और खान-पान आदि का प्रबन्ध करने लगे। सांभ होने पर देवता की आरती और पूजा का समारम्भ मनाया गया। गाँव के पचासों स्त्री-पुरुष खाखी महाराज का दर्शन करने और पावां धोक देने के लिए आये-गये। गर्मियों के दिन थे इसलिए काफ़िला वाले सभी जन अपनी मन पसन्द की जगह में जाकर रात्री की विश्रांति ली। मैं भी पिछली रात्रि की तरह एक वृक्ष के नीचे अपना कम्बल डालकर सो गया। जावद में खाखी महाराज का मुकाम दो तीन दिन रहा। दूसरे दिन सवेरे खाखी महाराज ने मुझे अपने पास बुलाया और सुखानन्द जी से चलकर जावद आये उस विषय में पूछा कि बच्चा तेरी तबियत कैसी रही? कुछ

तकलीफ तो नहीं हुई ? मैंने तेरे लिए कामदार जी से कह दिया है कि वह तेरी पूरी तरह देखभाल करते रहें । अभी तू नया २ इस जमात में शामिल हुआ है, इसलिए दो चार दिन कुछ अटपटा सा लगेगा । फिर सबके साथ जान पहचान हो जाने पर तथा हमारी रीत-भात जान लेने पर कोई अड़चन नहीं मालूम देगी । तुम्हारी विद्या पढ़ने की व्यवस्था हम आज से ही शुरू कर देना चाहते हैं । हमारे साथ एक ब्राह्मण पंडित है वह हमारे और शिष्यों को भी कुछ पढ़ाते रहते हैं वे ही पंडित तुमको भी पढ़ाना शुरू कर देंगे इत्यादि । मैंने खाखी महाराज की बातों को जो हुकम कह कर सिर पर चढ़ाली । फिर स्नान आदि कर लेने पर रुद्र भैरव जी ने रोज किस तरह स्नान आदि से निवृत्त हो जाना, किस तरह भभूत आदि शरीर पर लगा लेना, किस तरह आरती पूजा आदि में भाग लेना, इत्यादि बातें संक्षेप से समझायी तथा किस समय पंडित के पास पढ़ते रहना इसकी भी सूचना दी ।

मेरे उठने बैठने तथा सोने के लिए एक छोटी सी छोलदारी नियत कर दी । उसमें और कोई उठता बैठता नहीं था । उसी दिन दस ग्यारह बजे उन पंडित जी को लेकर कामदार जी मेरे पास आये और बोले कि चेलाजी महाराज ये पंडित जी आपको हमेशा पढ़ाते रहेंगे । खाखी महाराज के और शिष्यों को भी ये पढ़ाते रहते हैं । यह कहकर वे कामदार जी तो चले गये और पंडित जी मेरे पास बैठकर पूछने लगे कि चेलाजी महाराज आप पहले किसी स्कूल में या पाठशाला में कुछ पढ़े हैं ? आपको कुछ लिखना बांचना आता है ? मैंने जवाब में कहा कि मैं किसी पाठशाला आदि में कुछ नहीं पढ़ा हूँ हां, मैं छपी हुई बच्चों की छोटी किताबें कुछ बांच लेता हूँ । लिखने का मुझे कोई अभ्यास नहीं है । यह सुनकर वे पंडित जी उठकर चले गये । थोड़ी देर बाद अपने हाथ में दो तीन छोटी पुस्तकें लेकर आये । जिसमें एक तो उस जमाने में पढ़ाई जाने वाली वर्णमाला और बारहखड़ी की पुस्तिका थी जिसमें पीछे के दो चार पन्नों में अंक और पट्टी-पहाड़े छपे हुए थे । एक दूसरी बड़ी छोटी पुस्तक थी जिसमें पहली किताब के से छोटे-छोटे

पाठ छपे हुए थे। एक तीसरी छोटी सी पुस्तिका थी। जिसमें आरती आदि के समय में गाये जाने वाले दस बीस भजन छपे हुए थे। पंडितजी ने पास में बैठकर मेरी परीक्षा की दृष्टि से क्रमशः वे पुस्तकें मेरे सामने रखीं और उनको पढ़ने के लिए कहा। मैं मन में कुछ मुस्कराता हुआ परन्तु संकोच के साथ उस वर्णमाला तथा पाठवाली पुस्तिका को धीरे से स्पष्टता के साथ पढ़ गया। तब वे पंडित जी बोले कि आप तो अच्छी तरह पढ़ना जानते हैं, फिर ऐसा कैसे कहा कि मैं किसी पाठशाला आदि में नहीं पढ़ा। जवाब में मैंने उनसे कहा कि मैं किसी पाठशाला आदि में तो नहीं पढ़ा हूँ किन्तु एक दो वर्ष पहले एक यति जी महाराज के पास कुछ समय रहने का मौका पड़ा था तब उन्होंने मुझे यह वर्णमाला आदि की पढ़ाई पढ़ा दी थी इसलिए मैं कुछ २ पढ़ लेता हूँ। यह सुनकर उन पंडित जी को मेरे विषय में कुछ जिज्ञासा हुई मालूम दी। परन्तु उसी समय रूद्र भैरव जी यह देखने आ गये कि पंडित जी ने पढ़ाने का काम शुरू किया या नहीं। पंडित जी ने उनसे कहा कि नये चेलाजी बांचना पढ़ना तो ठीक जानते हैं मैं तो इनको सारस्वत व्याकरण पढ़ाना शुरू कर देना चाहता हूँ। ऐसा कहकर पंडित जी अपने डेरे पर पुस्तक लेने चले गये तब रूद्र भैरव जी ने मुझसे कहा कि देखो भैया पंडित या और कोई साधु-संत तुमसे तुम्हारे विषय में कोई बात पूछे-ताछे तो किसी को कोई बात मत कहना गुरु महाराज ने यह बात तुमसे खास तौर पर कहने के लिए मुझे भेजा है। मैंने कहा बहुत ठीक यूँ मैं भी किसी से ज्यादा बात-चीत करना पसंद नहीं करता। फिर रूद्र भैरव जी ने कहा कि हमारी इस जमात में जगह २ तरह २ के बाबा, जोगी, साधु, संत आते रहते हैं। गुरु महाराज का बड़ा ठाठ और बड़ा नाम है इससे अनेक तरह के लोग आते जाते रहते हैं। इनमें कई अच्छे और कई बुरे भी होते हैं इसलिए हमको बहुत सावधान रहना पड़ता है। तुम इन बातों से अनजान हो परन्तु गुरु महाराज का ख्याल तुम्हारे बारे में बहुत अच्छा है इसलिए तुम इन आने जाने वाले लोगों से किसी प्रकार की कोई ज्यादा बातें मत करना और अपने पढ़ने में

लगे रहना । ऐसी बातें रुद्र भैरव जी जब कह रहे थे वे पंडित जी अपने हाथ में एक छोटी-सी पुस्तक लेकर आ पहुँचे और रुद्र भैरव जी से कहने लगे कि आज ही के इस शुभ मुहुर्त में नये चेलाजी को सारस्वत व्याकरण सिखाना प्रारम्भ कर देता हूँ, आप मेरी दक्षिणा का प्रबन्ध करें । सुनकर रुद्र भैरव जी कुछ मुस्कराते हुए बोले कि बहुत अच्छी बात है, आप पढ़ाने का काम शुरू करें मैं आपको रूपैया नारियल भेंट कर दूंगा । पंडित जी ने दोनों हाथ जोड़कर घणी खम्मा कहते हुए उनका अभिवादन किया और बोले शिवानन्द भैरव महाराज की जय हो, सुनकर रुद्र भैरवजी वहां से चले गये और पंडितजी मेरे पास बैठकर सारस्वत व्याकरण का प्रथम श्लोक मुझे कंठस्थ कराने लगे ।

यों मुझे अपने स्वर्गीय गुरु महाराज देवीहंस जी ने कातंत्र व्याकरण के कुछ पद कंठस्थ करा दिये थे । चाणक्य नीति के कितने ही श्लोक भी सिखा दिये थे तथा जैन सम्प्रदाय में प्रचलित कुछ प्राकृत और संस्कृत के छोटे २ स्तुति, स्तोत्र भी पढ़ाये थे । इसलिए मेरा शब्दोच्चारण ठीक था और संस्कृत शब्द और वाक्य भी मैं ठीक पढ़ लेता था । इसलिए पंडितजी के बताये हुए सारस्वत व्याकरण के उस आद्य श्लोक को कंठस्थ करने में मुझे कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई । यह देखकर पंडित जी जरा खुश हुए और बोले कि मैं आपको बड़ी अच्छी तरह पढ़ाऊंगा । पहले दिन का यह विद्या पाठ पूरा हुआ और फिर भोजन करने की झालर बज गई । पंडित जी भी यह कहकर उठ खड़े हुए कि भोजन का समय हो गया है सब संत वगैरह भोजन के लिए जायेंगे आप भी अब भोजन करें । “गुरु महाराज ने आपके भोजन की क्या व्यवस्था की है”, वे पूछने लगे । मैंने कहा—“यह सब व्यवस्था कामदार जी के जिम्मे है इसलिए वे जैसा प्रबन्ध करेंगे वैसा होगा ।” इतने ही में कामदार जी आ पहुँचे और बोले कि आपको गुरु महाराज अपने डेरे में भोजन के लिए बुला रहे हैं । कामदार जी का आदेश सुनते ही मैं अपने आसन पर से उठ खड़ा हुआ और एक हाथ में चीमटा और दूसरे हाथ में कमंडलु लेकर खाखी महाराज के डेरे में जा पहुँचा । वहाँ पर एक तरफ खाखी

महाराज के लिए भोजन का थाल लगा हुआ था उसी से थोड़ी दूर पर मेरे लिए भी एक थाली रखी हुई थी ।

खाखी महाराज ने पूछा कि क्यों बच्चा पढ़ाई का काम शुरू हो गया है न ? मैंने हाथ जोड़कर कहा महाराज पंडित जी ने आज मुझे सार-स्वत व्याकरण का प्रथम श्लोक पढ़ाया है । बाबाजी बोले कि क्या तुमने वह श्लोक याद कर लिया है ? मैंने कहा जी हां । तब वे बोले अच्छा बोलो तो वह श्लोक । मैंने तुरन्त ही वह श्लोक सुना दिया जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और नाम लेकर बोले कि किशन, तुम्हारी बुद्धि तो बहुत अच्छी मालूम देती है ? तुम तो पढ़कर बहुत होशियार हो जाओगे । शंकर भगवान की बड़ी कृपा है । यह कहकर उन्होंने भोजन कर लेने के लिए आज्ञा दी, और स्वयं भी भोजन करना शुरू किया भोजन सामग्री में मालपुए और उड़द-चने की दाल मुख्य थी । मेरा स्वभाव बचपन ही से जल्दी २ खाने का पड़ गया था और भोजन भी मेरा साधारणतया स्वल्प रहता था मेरी थाली में कोई आठ दस मालपुए रखे हुए थे और बड़ा-सा कठोरा भरकर दाल रखी हुई थी उसे देखकर मैंने बाबा जी से कहा कि महाराज मैं तो इतना खा नहीं सकता । मेरे लिए तो दो एक मालपुए ही बस हैं, इतने मालपुओं का क्या किया जाय, तब बाबा जी ने कहा कि वहां उस कोने में एक थाली कटोरा पड़ा है उसे उठाओ और बाकी के मालपुए और दाल उसमें रख दो । रुद्र भैरव अभी आयेगा सो उठाकर ले जायगा । मैंने बाबाजी की आज्ञानुसार वैसा ही किया और दो मालपुए जल्दी २ खाकर मैं निपट गया तब बाबा जी ने मेरे सामने देखा और बोले कि क्या तूने खा लिया ? मैंने जी हां कह कर जवाब दिया । वे बोले बच्चा मैं तो बुढ़ा हूँ मेरे दांत भी बहुत से नहीं हैं इसलिए मुझे तो भोजन करने में काफी देर लगती है तुम उठ जाओ और बाहर जाकर चुल्लु कर लो । मैं उनका आदेश पाकर अपना कमंडलु लेकर तम्बू के बाहर जाकर हाथ धोया और चुल्लु किया इतने ही में रुद्र भैरव जी बाबाजी की खबर निकालने आये । बाबाजी ने कहा कि किशन तो बहुत कम खाता है । सब मालपुए उधर थाली में निकाल

रखे हैं सो तुम उठाकर ले जाओ, मैं जहां और सब साधु संत भोजन कर रहे थे वहां पर एक किनारे खड़ा रहकर देखने लगा। भोजनार्थियों में तरह २ की हा-हा हो रही थी और परोसने वालों को जोर २ से पुकार रहे थे। एक तरफ पुरुष वर्ग बैठा था, दूसरी तरफ वे चार पांच स्त्रियाँ जो बैरागण, जोगन आदि के भेष में थी वे बैठी खा रही थी। खाखरे के पत्तों की बनाई हुई पत्तल पर मालपुए रखे हुए थे और दोनों में दाल दी गई थी। अलबत्ता भोजन बहुत अच्छा बना था, दाल भी बहुत अच्छी मसालेदार थी इसलिए सब खूब डट २ कर खा रहे थे। कोई घन्टा डेढ़ घन्टा तक यह भोजन व्यवहार चलता रहा। साधु, संतों के खा लेने के बाद फिर और जो नौकर चाकर आदि थे उनको भोजन कराया गया। साधु-संतों के भोजन का इन्तजाम रुद्र भैरवजी करते थे और बाकी के लोगों का प्रबन्ध कामदार जी देखते थे। यह व्यवस्था बाबाजी की उस जमात के लिए कायमी बनी हुई थी।

जावद में दो दिन मुकाम रहा। फिर वहां से नीमच के लिए प्रयाण हुआ। मेरे साथ आये सेवक जी भी अपने गाँव बानेण जाना चाहते थे इसलिए उन्होंने खाखी महाराज से जाने की इजाजत मांगी। बाबाजी ने प्रसन्न होकर उनको साफा आदि बक्षीस दिया और साथ में कुछ रुपये भी दिए, शायद बाबाजी की प्रसन्नता का कारण यह हो सकता है कि सेवकजी ने मुझे बाबा जी का शिष्य बन जाने में विशेष योग दिया था।

हम लोग नीमच की तरफ जा रहे थे। तब सेवकजी मेरे साथ हो लिए। मेरे हाथ में चीमटा, कमंडलु आदि देखकर तथा सारे शरीर पर भभूत लगी हुई देखकर उनके मन में कुछ विशेष विचार आ रहे थे। मैं तो अपने उस स्वांग को देखकर मन ही मन राजी हो रहा था। मेरे मन में ऐसा कोई गम्भीर भाव पैदा नहीं हो रहा था कि जिससे मेरे चेहरे पर उसकी कुछ झलक दिखाई दे। दो तीन दिन पहले किस देश में, किस विचार में सुखानन्द जी आया था और आज किस रूप को धारण

कर, किस कामना से बाबाजी की जमात का एक खास सदस्य बनकर यह प्रवास कर रहा हूँ। मेरे मन से भूतकाल के सब अनुभव विलुप्त होकर भविष्य की नई आकांक्षाएँ और नये जीवन के विचार अंकुरित हो रहे थे। सेवक जी मुझसे कहने लगे कि मैं आज बानेण जाऊँगा, तुम अच्छी तरह अपनी पढ़ाई के काम में चित्त लगाना खाखी महाराज तथा इनके शिष्य रुद्र भैरवजी और कामदार जी भी तुम्हें अच्छी निगाह से देख रहे हैं, और वे समझते हैं कि थोड़े ही समय में तुम पढ़कर अच्छे होशियार हो जाओगे। खाखी महाराज के चेलों में तुम्हारे जैसा कोई होशियार नहीं मालूम देता इसलिए आगे चलकर खाखी महाराज तुमको ही अपना सब कुछ समझने लगेंगे। तुम्हारी जमात जब उद्वेग पड़च जायगी तो मैं वहाँ फिर आ जाऊँगा।

मैंने सेवक जी से कहा कि तुम बानेण जाकर धनचन्द जी यति को क्या कहोगे? क्योंकि वह तुमसे पूछेगा कि किशनलाल कहाँ गया? जवाब में सेवक जी ने कहा कि मैं उनको कुछ ऐसी वैसी बातें कह दूँगा जिससे उनको कोई विशेष विचार न होगा। मैं कह दूँगा कि किशनलाल को रूपाहेली वाले कोई लोग सुखानन्द जी के मेले में मिल गये थे और उन लोगों ने किशनलाल की माँ की बीमारी आदि की बातें कही जिससे वह मेरे साथ वापस बानेण न आकर रूपाहेली चले जाने की बात कर रहा था। मेले में से वह कहां और कब चला गया इसका मुझे कोई पता न लगा। मैंने दो दिन तक मेले में उसकी खूब तलाश की परन्तु मुझे कहीं कुछ पता न चला। शायद वह रूपाहेली चला गया होगा इत्यादि। सेवकजी की ये बातें मुझे न अच्छी लगी और न बुरी लगी। मैं सुनकर चुप हो गया। फिर मैंने कहा कि तुम चाहे जैसी बात कर धनचन्द को समझा देना परन्तु यह मत कहना कि वह खाखी महाराज का चेला बन गया है। मेरा मन अपनी माँ को याद कर दुखी होता रहता है। परन्तु उसके पास चले जाने का भी मेरा मन नहीं हो रहा। न जाने मैं कब उसके पास जाऊँ। अगर वह सुनलेगी कि मेरा बेटा किसी बाबे का चेला हो गया है तो इससे उसको बहुत ही आघात

होगा । जब तक मैं बानेण था तब तक तो उसको यह आशा थी कि दो चार महीने में वह मेरे पास श्रवश्य आ जायगा । परन्तु यदि उसको यह पता लगेगा कि रिणमल बानेण छोड़कर कहीं और जगह किसी बाबा, जोगी, जति आदि के साथ चला गया है तो उसके दुःख का कोई पार न रहेगा । इसलिए मेरे विषय में रूपाहेली कोई समाचार न जाना चाहिये ।

सेवक जी कुछ समझदार आदमी थे और मेरे मन के भाव वे कुछ समझते थे इसलिए उन्होंने आखिर में कहा कि भैया आप ऐसी कोई चिन्ता न करें मैं कुछ ठीक ही सोच समझकर बात करूंगा, इत्यादि बातें बड़ी सहानुभूति के साथ सेवक जी ने मुझे कही और सुनी । बाद में हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए वे मुझसे बिदा हुए । हमारा डेरा नीमच के पास एक मैदान में लगा । दो तीन दिन जमात वहां पर रही और फिर वहां से कूच कर अगले मुकाम के लिए चल पड़ी ।

बाबाजी की जमात का नित्य का कार्यक्रम वैसा ही रहता था जैसा सुखानंदजी के वर्णन में किया गया है ।

मैं धीरे २ जमात की रीत-भांत से परिचित होता गया पाँच सात दिन में ही वह खाखी जीवन की दिनचर्या अभ्यस्त हो गई । खाखी महाराज मेरे व्यवहार से प्रसन्न रहते थे और मुझ पर उनका स्नेह भी बढ़ता जाता था । रुद्र भैरव जी के साथ वे मुझे भी कुछ निजि कामों की जानकारी कराते रहते थे और कुछ रुपये, पैसे आदि रखने-रखाने के लिए मुझसे भी यथा योग्य काम लेने लगे थे । रुद्र भैरव जी भी मुझसे स्नेह करने लगे थे और जमात सम्बन्धी कई छोटी बड़ी बातें वे मुझे समझाया करते थे । जिस दिन प्रवास होता था उस दिन तो पढ़ाई बंद रहती थी परन्तु जब किसी गांव में सारा दिन मुकाम होता था तब पंडित जी मुझे सारस्वत व्याकरण के सूत्र पढ़ाया करते थे । साथ में उन्होंने मुझे शिव स्तुति विषयक कुछ भजन तथा स्तोत्र भी पढ़ाने का

कार्य चालू किया। कुछ दिन बाद महीमन स्तोत्र का पाठ भी शुरू कराया। मैं रोज एक दो श्लोक कंठस्थ कर लिया करता था। संध्या या प्रातःकाल जब भी समय मिलता बाबाजी महाराज मुझसे मैंने कल क्या पढ़ा है यह पूछ लेते थे और जो मैं कंठस्थ कर लेता उसे सुन भी लेते थे। बाबा जी कहते रहते थे कि मुसाफिरी में पढ़ना इसी तरह होता रहता है। जब कहीं जाकर महीने दो महीने जमकर रहेंगे तब पढ़ाई ठीक अच्छी तरह चलेगी।

यों हमारी जमात का प्रवास धीरे २ आगे बढ़ रहा था कहीं दो दिन का, कहीं तीन दिन का, कहीं चार दिन का भी पड़ाव होता था। नीमच से चलकर मन्दसौर, प्रतापगढ़, जावरा, सैलाना, रतलाम आदि बड़े गांवों में भी जमात का पड़ाव रहा। कई जगह बाबा जी के जागीरदार वगैरह भी भक्त होते थे इसलिए वे यथा स्थान बाबा जी के दर्शन करने आते थे और कुछ भेंट पूजा चढ़ाते थे। इस तरह बाबा जी के सन्मुख रोज पच्चीस-पचास रुपये जमा होते रहते थे जिनको रुद्र भैरव जी रोज रात को सम्भाल कर गिन कर तथा उनका बीजक बनाकर खास सन्दूक में रख लेते थे। खाने-पीने का जो सामान ग्राम निवासी जनों की तरफ से मिलता था उसका हिसाब कामदार जी रखते थे और उसका प्रबन्ध भी वे ही करते थे। आटा-दाल, चावल, घी, गुड़, शक्कर आदि खाद्य, सामग्री का थोक काफी साथ में रहता था। एक दो गाड़ियाँ उसी के लिए रहती थी। पशुओं के लिए दाना, चारा आदि का प्रबन्ध ग्राम निवासी जनों की तरफ से रहता था। खाखी महाराज के व्यवहार से मुझे लगने लगा कि उनका लोगों पर काफी प्रभाव है और जगह जगह उनको मानने वाले अनेक भक्त रहते हैं।

वे अपने भक्त जनों को कंठी बन्धवाया करते थे और कुछ डोरे-धागे आदि का भी प्रयोग करते रहते थे। खास करके बहुत सी स्त्रियाँ जो अच्छे घराने की होती थीं और बड़ी उम्र तक भी जिनको कोई बाल-

बच्चा नहीं होता था वे स्त्रियां सन्तान की कामना की दृष्टि से अकसर उनके पास आती रहती थी और कुछ भेंट पूजा चढ़ा कर उनसे अपनी मनोकामना पूरी होने की प्रार्थना करती रहती थीं। खाखी महाराज उनको किसी न किसी प्रकार का आशीर्वाद देकर तथा मादलिया, ताबीज आदि बंधवाकर उनको संतुष्ट करते रहते थे। गांवों की अपेक्षा शहरों में ऐसी स्त्रियां बहुत आती रहती थीं।

इस तरह कोई डेढ़, पौने दो महीने के प्रवास के बाद आषाढ़ मास की एकादशी के दो तीन दिन पहले हम लोग उज्जैन पहुंचे और क्षिप्रा नदी के किनारे एक खास स्थान पर हमारा पड़ाव पड़ा। उज्जैन में वैसे और भी कुछ खाखी बाबाओं की जमातें पड़ी हुई थीं। खाखी महाराज ने चौमासे के दो महीने उज्जैन ही में बिताने का निश्चय किया था। अतः काफिले में जो ऊंट, घोड़े-गाड़ियां आदि थी उनको इधर-उधर भेज दिया गया केवल एक हाथी और एक ऊंट तथा एक घोड़ी रखली गयी थी उसके साथ नौकर चाकर जो थे उन्हें भी रजा दे दी गयी केवल आठ दस सन्यस्त बाबा और तीन चार कर्मचारी रहे थे। खाखी महाराज के संप्रदाय का यह निज का वहाँ पर एक बड़ा सा स्थान था जिसमें धर्मशाला जैसी बारहदरियां बनी हुई थी। दो तीन बड़े कमरे थे बीच में अच्छा मैदान था उसके मध्य में छोटा सा शिव मंदिर बना हुआ था। इस स्थान में दो तीन महीने रहने का निश्चय हुआ था। अतः उस प्रकार की सब सामग्री वहाँ जमा करली गयी थी। प्रवास में आते हुए खाद्य सामग्री भी बहुत बड़ी तादाद में एकत्र करली गयी थी जो कई गाड़ियों में भरकर वहाँ लायी गई थीं। उस स्थान की देखभाल रखने वाले तथा व्यवस्था करने वाले दो तीन खाखी सन्त वहीं रहते थे और उस स्थान का सारा प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था। वे खाखी बाबा हमारे महन्त जी के ही आमनाय वाले और उनसे विशिष्ट सम्बन्धित थे। इसलिए रूद्र भैरव जी ने उनको बुलाकर अपने डेरे आदि का सारा प्रबन्ध कैसे किया जाय वह समझाया। एक दो दिन में वहाँ की सारी व्यवस्था जम गई। आषाढ़ी एकादशी के दिन

एक उत्सव मनाया गया, जिसमें आस-पास के अन्य स्थानों के साधु-संत बाबा-जोगी आदि भी सम्मिलित हुए। उस दिन भोजन न होकर उपवास रखा गया पर साथ में कुछ फलादि खाने को दिए गये।

दूसरे दिन खाखी महाराज की तरफ से सौ डेढ़ सौ साधु संतों को दाल-बाटी का सादा भोजन कराया गया। उसी दिन से मालपुआ आदि का गरिष्ठ भोजन बनना बंद हो गया और केवल एक बार दाल-बाटी का सादा भोजन निश्चित हो गया। खाखी महाराज के लिए कुछ खास भोजन अलग से बनने लगा। हम सब छोटे बड़े बाबा लोग एक ही प्रकार का सामूहिक भोजन करने लगे।

खाखी महाराज ने इसके पहले का वर्षाकाल मध्य प्रदेश के किसी स्थान में बिताया था। वहां से चलते हुए नर्मदा नदी के किनारे ओंकारेश्वर की यात्रा की। वहां से फिर माहेश्वर होते हुए मांडु, धार, वहां से फिर इन्दौर, रामपुरा, भानपुरा आदि स्थानों में घूमते हुए उक्त प्रकार से वे सुखानन्द जी पहुँचे थे। रुद्र भैरव जी की और कामदार जी की बातों से संकेत मिलता था कि इस यात्रा में खाखी महाराज को काफी रुपैया, पैसा मिला था। शायद इतनी रकम पिछले कई वर्षों में उनको नहीं मिली थी। उस समय तक नोटों का व्यवहार नहीं था इसलिए वह सब धन-राशि चांदी और सोने के सिक्कों ही में उनके पास जमा थी। खाखी महाराज की चेष्टा से अनुभव होता था कि वे अपनी इस धन राशि को बड़ी सावधानी के साथ रखते थे। दिन-रात उनको इसकी पूरी देखभाल रखनी पड़ती थी। लकड़ी के बने हुए मजबूत दो तीन बक्सों में यह रकम रखी रहती थी जिन पर मजबूत ताले लगे थे। उनकी चाबियाँ खाखी महाराज खास अपने ही पास रखते थे। यों वे लंगोट पहने रहते थे जिससे चाबियों को अपने कंदोरे में लटकाये रखने का कोई अवसर नहीं था, इसलिए वे चाबियों को अपने निजी के कमंडलु में रखते थे। वह कमंडलु सदा सोते, उठते-बैठते अपने पास ही रखते थे। यहां तक कि शौचघर जाते तो

उसी कमंडलु को साथ ले जाते । जरूरत पड़ने पर चेला रुद्र भैरव को चाबीयाँ देते और अपनी आँखों के सम्मुख ही बक्से को खुलवाते और बन्द करवाते । भेंट-पूजा आदि के कारण जब ताबें या चाँदी के सिक्कों का ढेर जमा हो जाता तो उनको अच्छी तरह गिनवाकर और बीजक बनाकर रुद्र भैरव जी द्वारा कामदार जी को दिलवाकर कह देते कि रुपयों, पैसों का ढेर बहुत हो गया है । इसलिए सराफ की दुकान पर जाकर इनके मूल्य की सोने की मुँहरें अशर्फी आदि ले आओ । और फिर उनको गिनकर थैलियों में बाँधकर बक्से में रखवा लेते । ये बक्से सदा उनके निज के डेरे ही में रखे रहते थे ।

वे हमेशा एक काठ की चौकी पर सोया करते थे । उसी चौकी के नीचे ये बक्से रखे रहते थे । मुसाफरी में उनकी सवारी के हाथी के हौदे के बीच में ये बक्से रख दिये जाते थे । खाखी बाबा प्रायः अपने डेरे से कहीं बाहर नहीं जाते थे । केवल प्रातःकाल सूर्योदय के पहले वे शौच के लिए बाहर जाते थे तब रुद्र भैरव या कामदार जी को डेरे की निगरानी के लिए रख जाते थे । सुना जाता था कि उज्जैन में जब उक्त प्रकार से खाकी महाराज पहुँचे तो उनके पास पच्चीस तीस हजार का नगदी माल था । अन्यान्य चेलों में इस बात की कभी कभी काना फूँसी हुआ करती थी ।

उक्त रूप से नगद रकम के सिवाय खाखी महाराज के पास चाँदी की बनी हुई बहुत सी चीजें थी । थाल, लोटे, गिलास, सुराही आदि सैकड़ों तोलों की चाँदी की वजनी चीजें थी । पूजा वाली देवता की मूर्ति शिवालिंग उसका सिंहासन तथा धूप-दीप, आरती आदि के उपकरण भी चाँदी के बने हुए थे । इस प्रकार कई हजार तोलों भरी चाँदी का सामान उनके पास था । पर उनके साथ रहने वाले हमारे जैसे बने हुए खाखी बाबों के पास लोहे का चीमटा और पीतल का जूना पुराना कमंडलु एवम् छोटे से लोहे के त्रिशूल के सिवाय तार मात्र कोई वस्तु नहीं थी । हम छोटा सा लंगोट पहने हुए और शरीर पर भभूत रमाये हुए 'ओम नमः शिवाय' का जाप जपने में मस्त रहते थे । परन्तु हममे

से सभी कोई ऐसे मस्त नहीं थे। अनेकों के विलक्षण स्वभाव और चरित्र थे। महन्त जी महाराज जी के समय समय पर निकलने वाले उद्गारों से ज्ञात होता रहता था कि उनके पास दीक्षा लेने वाले मेरे जैसे कई शिष्य ऐसे निकले थे कि जो खाखी महाराज की अनेक मूल्यवान् वस्तुएं उड़ाकर ले भागे। कई शिष्य चांदी के थाल, लौटे, गिलास, कटौरियां आदि गायब कर गये थे। कई शिष्य धूप-दीप, आरती आदि के चांदी के उपकरण ले भागे। कई शिष्य भेंट के समय जमा होने वाले रुपये, पैसों को दबा गये। एक दो शिष्य तो नकदी रुपयों के बक्से तक उठा ले गये। इस प्रकार के अनुभव के कारण खाखी महाराज अपने साथ रहने वाले शिष्यों और बाबाओं से हमेशा बहुत सतर्क रहते थे। उस समय साथ में जो सात, आठ हम जैसे खाखी स्वांग धारी व्यक्ति थे उनमें से दो तीन को छोड़कर अन्यो पर उनका खास विश्वास नहीं था। परन्तु साथ में आठ, दस, बारह खाखी स्वांगधारी बाबाओं की जमात न हो तो, लोगों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए “जमात करामात है।” इस उक्ति के अनुरूप वे अपने साथ ऐसे व्यक्तियों को रखने में मजबूर रहते थे। इस परिस्थिति को लक्ष्य में रखकर खाखी महाराज ने उज्जैन में अपने निवास का प्रबन्ध किया था। उक्त मठ में तीन चार जो अच्छे पक्के कमरे थे उनमें सब सामान जमवाया गया। एक कमरा खाखी महाराज के सोने उठने बैठने के लिए था। दूसरे कमरे में देवमूर्ति के रखने का तथा उक्त कीमती सामान रखने की व्यवस्था की गई। एक कमरे में खाने-पीने का सब सामान रखा गया। एक कमरे में रूद्र भैरव जी और मेरे लिए सोने बैठने का इन्तजाम हुआ। और बारहदरी जैसे चार पांच दालान थे उनमें अन्य साधु सन्तों और कर्मचारियों के बिस्तर आदि लगे। मठ में ऊपर भी कुछ कोठरियां सी थी। उनमें भी किसी के ठहरने आदि का प्रबन्ध किया गया। साथ में जो पंडितजी पढ़ाने वाले थे उनको वहीं निवास की जगह दी गई।

आषाढी एकादशी के बाद ही जोरों की वर्षा होनी शुरू हुई। तीन

चार दिन तक हमेशा अच्छी वर्षा होती रही। इससे क्षिप्रा नदी में पानी का खूब जोरों से पूर आ गया। हमारे मठ के ऊपरी छत से नदी स्पष्ट दिखाई देती थी इसलिए कुतुहलवश मैं बारम्बार ऊपर जाकर नदी के प्रवाह को देखा करता था। और मन में खुश हुआ करता था। सुन रखा था कि उज्जैन बहुत पुराना और बहुत बड़ा शहर है इससे उसे देखने की मनमें इच्छा हुआ करती थी। परन्तु बटुक रूप में खाखी बाबा का स्वाँग धारण करने वाले मेरे जैसे चौदह वर्ष के बाबा को शहर में घूमने करने का कहां अवसर था। हाँ आषाढी पूर्णिमा के दिन हम सब बाबाओं की जमात उज्जैन के महाकालेश्वर के दर्शन करने जब गये तब शहर के कुछ भागों में होकर गुजरने का प्रसंग मिला।

पूर्णिमा के बाद निवास सम्बन्धी जब सब कार्य निश्चित हो गये, तब मेरी पढ़ाई का कार्य भी नियमित रूप से चलने लगा। रोज नौ बजे से बारह बजे तक तीन घंटे पंडित जी मुझे पढ़ाते रहते। पढ़ाई में सारस्वत व्याकरण मुख्य था। साथ में अमरकोष और महिम्न स्तोत्र पढ़ना चालू था। महिम्न स्तोत्र तो प्रवास ही में मैंने बहुत कुछ कंठस्थ कर लिया था सारस्वत व्याकरण का भी एक चतुर्थांश जितना भाग सीख लिया था। अमर कोष अब नया शुरू किया था। कोई पन्द्रह बीस दिन पढ़ाई चली होगी कि कुछ दिन की छुट्टी लेकर वे पंडित जी अपने देश चले गये। पंडितजी भी मथुरा ही की तरफ के थे।

साथ में जो अन्य साधु थे वे परस्पर कभी कभी खूब लड़ा करते थे और चीमटे बाजी की भी कभी नौबत आ जाया करती थी। प्रायः वे सब अपठित और असंस्कारी से थे तीन चार उनमें बीस से तीस वर्ष की उम्र तक के थे। बाकी के बड़ी उम्र के तथा चालीस, पचास पच्चपन वर्ष जैसे थे। किसी को दीक्षा धारण किये दो वर्ष, किसी को चार वर्ष, और किसी को पाँच, छह: वर्ष हुए थे। उनकी जाति-पाति का कोई खास पता नहीं लगा। एक दो जाति से शायद ब्राह्मण थे बाकी के सामान्यतः किसान वर्ग के थे। जो ब्राह्मण जाति के थे उनको वे पंडित जी कुछ पढ़ाया करते थे। उनकी पढ़ाई का विषय सामान्य हिन्दी

था और कुछ भजन कीर्तन सिखाया करते थे। उन बाबाओं में भंग पीने वाले विशेष थे। कुछ गांजा भी पीने वाले थे। तमाखू की चिलम तो सभी अच्छी तरह दिन-रात पीते-रहते थे। दिन में दो तीन दफ़े स्नान करना, दो तीन दफ़े भभूत लगाना यह उनकी मुख्य विनचर्या थी। सुबह शाम खाखी महाराज जब पूजा आरती करते तब वे सब वहाँ उपस्थित हो जाते और खाखी महाराज को साष्टांग दंडवत्, प्रणाम करते। इसके सिवाय बाबाजी महाराज के पास अधिक आने जाने का उन्हें कोई कारण नहीं था। वे प्रायः बिना किसी श्रम के अपनी अच्छी तरह उदर-पूर्ति करने की दृष्टि से ही खाखी का स्वांग धारण किये हुए थे। न उनमें पढ़ने लिखने का कोई शौक था, न किसी प्रकार की विचार गोष्ठी के सुनने का ही रस था। न उनको अपने जीवन के विषय में ही कोई कल्पना थी। न किसी प्रकार का कोई लक्ष्य ही था। खूब अच्छी तरह खाना, सोते रहना और खाखी बाबा के जैसों के साथ देश देशान्तरों में घूमते फिरना।

इनमें आचार विषयक कोई भावना नहीं थी। प्रसंग न मिलने से ये कुछ अनाचार नहीं कर पाते थे। पर उसकी ताक में सदा रहा करते थे। परस्पर अश्लील व्यवहार भी करने में इनको कोई लज्जा महसूस नहीं होती थी। मेरा इनके साथ उठने बैठने का कोई प्रसंग नहीं रहता था। मेरा परिचय केवल रूद्र भैरव के साथ ही था। वह कुछ शिष्ट और संस्कारी था। व्याकरण आदि तो वह कुछ नहीं पढ़ा था परन्तु हिन्दी अच्छी तरह बोलना पढ़ना जानता था। संप्रदाय के उपयोगी भजन, कीर्तन, स्तुति, स्तोत्र आदि इसको बहुत से याद थे और जो साधु थे उन पर इसका काफी प्रभाव था। उन सबको वह धमकाता रहता था। इसलिए वे सब इससे डरते थे। खाखी महाराज का केवल इसी पर विश्वास था और यह भी उन पर पूरी श्रद्धा रखता था।

उज्जैन के उस मठ में स्थायी रूप से रहने वाले जो दो तीन खाखी बाबा थे उनका अपना कारोबार अलग ही था। उनकी वहाँ की जो स्थायी आमदनी थी उसका प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था। उनका खान-

पान आदि का भी प्रबन्ध स्वतंत्र था। खाखी महाराज का उनपर कोई नियंत्रण नहीं था। उनके और रूद्र भैरव जी के बीच में कभी कभी संघर्ष हो जाता था। धीरे धीरे उनको ज्ञात हुआ कि खाखी महाराज के पास बहुत बड़ी धन राशि है और रूद्र भैरव उनका मुख्य कर्ता प्रवर्तक है तब उनके दिल में कुछ ईर्ष्या सी पैदा होने लगी।

वर्षा के सावन-भादों दो महीने इस प्रकार व्यतीत हो गये। मेरे मन पर इस सारी परिस्थिति का कोई अच्छा प्रभाव नहीं रहा। एक तरफ पढ़ाने वाले वे पंडित जी भी चले गये जिनके वापस आने के कोई समाचार नहीं मिले उस जमात में किसी के साथ अच्छी बातचीत करने का भी कोई साधन नहीं था। उन मूर्ख और असंस्कारी बाबाओं के पास जाकर बैठने या बोलने का जरा भी मन नहीं होता था। मेरे ऐसे व्यवहार की भी उनको ईर्ष्या होती रहती थी। दूसरी तरफ खाखी महाराज का मुझ पर स्नेह बढ़ रहा था। जिसे देखकर शायद उनके मन में विष भी अंकुरित हो रहा था। इतने में उन स्थानिक बाबाओं और महन्त जी के साथ वाले बाबाओं में किसी कारण को लेकर कड़ी लड़ाई छिड़ पड़ी। वे परस्पर मुक्का-मुक्की और हाथापाई करने लगे। जिसे सुनकर खाखी महाराज को बड़ा दुःख हुआ और रूद्र भैरव को उन्होंने कहा कि तुम जाकर उनको कुछ समझा बुझा कर शांत करो। रूद्र भैरव ने वहां जाकर उन स्थानिक बाबाओं से कहा कि ऐसा लड़ाई भगड़ा क्यों कर रहे हो? तो भट से वे रूद्र भैरव पर टूट पड़े और उसको बहुत बुरी गालियां देने लगे और साथ में खाखी महाराज के बारे में भी कुछ बुरी-बुरी बातें कहने लगे। खाखी महाराज ने रूद्र भैरव को बुलाकर कहा कि तुम इस समय चुप रहो कुछ मत बोलो यहां का रंग ढंग कुछ अच्छा नहीं दिखाई देता है इसलिए सब तरह से सावधान रहो। मैं इस अखाड़े बाजी को देखकर मनमें शंकित होने लगा। खाखी महाराज की उक्त प्रकार की बात सुनकर मेरे मनमें किसी और ही प्रकार की कल्पना उठने लगी।

मुझे अनुभव हुआ कि खाखी महाराज स्वभाव से शांत हैं। वे ज्यादा बोलते नहीं अपने पास आने वाले भक्तों से भी कोई विशेष बात चीत नहीं करते। लोगों की उनके विषय में श्रद्धा थी कि वे कोई सिद्ध पुरुष हैं। उनके आशीर्वाद से भक्तों की कुछ कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। अतः लोग उनका आशीर्वाद लेने हमेशा आते रहते थे, और बदले में उनको यथा शक्ति रुपया-पैसा भेंट करते रहते थे। मुझे यह भी अनुभव हुआ कि खाखी महाराज स्वभाव से बहुत लोभी थे। पैसे-पैसे का उन्हें ह्याल रहता था। कौन भक्त किस समय क्या भेंट कर गया है इस पर उनकी पूरी नजर रहती थी। और उन पैसे टकों को निरंतर संभालते रहते थे। वे कभी किसी को प्रसन्न होकर कुछ रुपया पैसा बक्षिस कर देते थे। उनकी जमात में बाहर से कई साधु-संत, बाबा, जोगी आकर मिलते रहते थे और कितने कुछ दिन उनके साथ रहकर फिर कहीं अन्यत्र चले जाते थे। उन आगन्तुक साधु-संतों को भोजन के सिवाय अन्य किसी प्रकार की आर्थिक सहायता उनकी तरफ से नहीं दी जाती थी। वे न आगन्तुक साधु-संत कई तरह के होते थे। लंगोट धारी खाखी स्वांग वालों के अतिरिक्त वस्त्रधारी भी कई बाबा, बैरागी, साधु, सन्यासी वगैरह होते थे। जैसा कि ऊपर सूचित किया है। इस वर्ग में स्त्रियाँ भी होती थी। ये आगन्तुक इस आशा से इनकी जमात में आते रहते थे कि खाखी बाबा शिवानन्द भैरव बड़े महन्त हैं और इनको भक्तों की ओर से काफी धन मिलता रहता है, अतः इनके पास कुछ दिन रहने से जाते समय कुछ रुपया-पैसा या कपड़ा लत्ता बक्षिस रूप में मिल जाय। परन्तु खाखी बाबा की ओर से ऐसा कुछ उनको नहीं दिया जाता था, इसलिए वे आगन्तुक जन प्रसन्न होकर नहीं जाते थे, और लोगों के सामने बाबाजी की लोभी वृत्ति के बारे में ऐसी-वैसी बातें करते रहते थे।

बाबाजी अपने साथ वाले शिष्यों के बारे में भी कोई खास दिल चस्पी नहीं लेते थे। यद्यपि शिष्यों को पढ़ाने के निमित्त एक मामूली पंडित उन्होंने अवश्य रख छोड़ा था। परन्तु वह किसको क्या पढ़ाता

है, और कौन क्या पढ़ता है, इस विषय में वे कभी कोई जानकारी नहीं करते थे। उनका खयाल केवल लोगों को यह बतलाने का रहता था कि खाखी महाराज के पास बहुत से चेले हैं, और वे कुछ विद्याएं पढ़ते रहते हैं। यों खाखी महाराज स्वयं भी कुछ अधिक पढ़े हुए नहीं थे हिन्दी और संस्कृत कुछ सामान्य रूप से जानते थे। उनके संस्कृत उच्चारण भी शुद्ध और स्पष्ट नहीं होते थे। वे अपनी सम्प्रदायानुरूप कुछ क्रिया विधियाँ और पूजा पद्धति आदि ठीक जानते थे। इसके सिवाय साहित्य, काव्य, व्याकरण आदि का उन्हें कोई परिज्ञान नहीं था। पूर्वावस्था में उन्होंने कुछ प्राणायाम और आसन वगैरह का अभ्यास किया होगा। ऐसा उनके बोलने चलने से लगता था। परन्तु उनकी मुखाकृति सौम्य और प्रभावशाली थी। इस समय उम्र भी पैंसठ और सत्तर के बीच की लगती थी। यूँ तो जैसा कि ऐसे महन्त और सन्त माने जाने वाले व्यक्तियों का रिवाज होता है वे अपनी उम्र का खास परिचय नहीं देते। सामान्यतया बहुत बड़ी उम्र अर्थात् सौ बरस के ऊपर की आयु लोग समझे, ऐसा उनका अभिप्राय रहा करता है। इन खाखी महाराज के विषय में भी लोगों की वैसी ही धारणा बनी हुई थी।

रुद्र भैरवजी के कहने से मालूम पड़ता था कि खाखी महाराज का स्वास्थ्य अब अच्छा नहीं रहता है। उनको रात में नींद नहीं आती है और मन में अपने उत्तराधिकारी तथा खास मठ कि सम्पत्ति आदि की चिन्ता बनी रहती है।

उनका एक मुख्य शिष्य है जो कई वर्षों से खाखी महाराज से नाराज रहता है। उस शिष्य को इन्होंने बचपन ही से अपने पास रखा था। और उसे दीक्षित बना दिया था। वह काशी के एक पंडे का अनाथ बच्चा था। उसको कुछ अच्छी तरह इन्होंने पढ़ाया था और उस पर इनका अधिक स्नेह था। पर वह स्वभाव का दुष्ट क्रोधी प्रकृति का और चालाक वृत्ति वाला था। ज्यों २ वह बड़ा होता गया, त्यों-त्यों

वह खाखी महाराज के व्यवहार के विरुद्ध बर्तने लगा । जमात में जगह जगह आकर मिलने वाले आगन्तुक साधु-संतों आदि के साथ प्रायः उसका अहंकार भरा हुआ दुर्व्यवहार रहता था । कुछ स्त्री वर्ग के साथ वह छेड़-छाड़ भी किया करता था । इससे तंग आकर खाखी महाराज ने उसको अपनी जमात में से निकाल दिया । वह बड़ा हूष्ट-पुष्ट, लट्टू-बाज और गाली गलौच आदि करने में उस्ताद बन गया । वह चाहता था कि खाखी महाराज के पास जो रुपया-पैसा आता है, वह उसी के पास रहे । खाखी महाराज ने जब अपने पास से उसको निकाल दिया तो फिर वह इनका जो खास मठ था वहाँ जाकर बैठ गया । खाखी महाराज का वह मठ कहीं हरद्वार के पास था उस मठ के साथ काफी सम्पत्ति और जमीन-जायदाद आदि भी है । पिछले सात, आठ वर्षों से खाखी महाराज अपने उस मठ में नहीं गये और इस प्रकार देश देशांतर में घूमते रहे । उस मठ की सार संभाल और सम्पत्ति आदि की व्यवस्था उस मठ में रहने वाले खाखी बाबा के ही कोई गुरु-बन्धु रखते थे । परन्तु उसका स्वामित्व शिवानन्द भैरव महाराज के अधिकार में था । शिवानन्द महाराज जिसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें और सरकार से उसकी रजिस्ट्री करादे वही कायदेनुसार सम्पत्ति का मालिक बन सकता है । अतः वह शिष्य इस बात की कोशिश कर रहा था कि शिवानन्द भैरव महाराज उसको अपना उत्तराधिकारी प्रकट कर दें ।

हम लोग जब उज्जैन पहुँचे तो उसको यह बात मालूम हुई कि खाखी महाराज ने एक कोई नये चेले को दीक्षा दी है और वह चेला कुछ बुद्धिमान और अच्छे खानदान का है । खाखी महाराज का इस चेले पर बहुत स्नेह बढ़ रहा है और दो चार वर्ष में इसे अच्छी तरह विद्या पढ़ा कर होशियार करके इसको अपना उत्तराधिकारी बना देना चाहते हैं । फिर उसने यह भी सुना कि खाखी महाराज ने पिछले दो चार वर्षों में काफी धन इकट्ठा कर लिया है । आने वाले दो-चारवर्ष खाखी महाराज मालवा, गुजरात, राजस्थान आदि प्रदेश ही में घूमना चाहते थे ।

ये सब बातें जान सुनकर वह चेला उज्जैन चला आया और वहाँ

पर किसी अन्य मठ में जाकर ठहर गया। वहाँ बैठा २ खाखी महाराज की सारी परिस्थिति की जानकारी वह करने लगा। धीरे २ वहाँ पर वह कुछ ऐसे-ऐसे दो चार खाखी गुण्डों को भी लालच देकर अपने वश में करने की कोशिश करने लगा। इस बात का जब खाखी महाराज को पता लगा तो वे अधिक चिन्तित होने लगे। उन्हें भय होने लगा कि वह दुष्ट कभी रात बिरात यहाँ आकर दंगा फिसाद, मार-पीट आदि न कर बैठे। मुझे भी कामदार जी ने, जिनकी मेरे साथ अच्छी सहानुभूति थी। इन बातों का कुछ परिचय दिया।

मैं इन सब बातों को सुनकर मन में उद्विग्न होने लगा, मैं उस समय ऐसी परिस्थितियों से सर्वथा अनभिज्ञ था, मुझे न किसी बात का लालच था और न किसी वस्तु पर मोह था। उस समय न मेरा कोई सहायक ही था और न कोई अभिभावक था। न कोई मेरी चिन्ता करने वाला था और न कोई मेरी सुध ही लेने वाला था। मैं अपने आपको सर्वथा एकाकी और असहाय अनुभव करता था। मेरी इच्छा केवल विद्या पढ़ने की थी। न मुझे खाने-पीने की और कपड़े लत्ते की ही चाट थी। मैं जिस चर्चा और स्वांग में पिछले तीन चार महीनों से रह रहा था मुझे उसमें आनन्द आता था।

उस पंडित के चले जाने के बाद मेरा पढ़ना बन्द हो गया था तथा उन पिछले श्रावण-भादों के दो महीनों में उज्जैन वाले उस मठ में रहते हुए उन बाबा जोगटों का जो जीवन व्यवहार देखने में आया उससे मेरा मन खिन्न होने लगा। दिन-रात मैं सोचने लगा कि किस विचार से मैं उस सेवकजी के कहने से इन खाखी बाबा की मूर्ख और अशिष्ट जमात में शामिल हो गया। इसके साथ मेरे मन में पिछले वर्ष बानेण और कानोड़, भिंडर आदि स्थानों में जिन जैन यतियों का जो सम्पर्क हुआ उसकी याद भी मुझे आने लगी। मैं सोचने लगा कि इन मूर्ख खाखियों की अपेक्षा वे जती लोग काफी शिष्ट संस्कारी और कुछ पढ़े लिखे हुए थे। यद्यपि उनमें कुछ गंजेड़ी और भंगेड़ी भी थे परन्तु सामान्यतया वे अच्छे व्यवहार वाले और आचार वाले थे। मेरा मत बनने लगा कि

यह खाखी का स्वांग धारण करने में मैंने गलती की है। और जैसा कि यहाँ का वातावरण बन रहा है शायद मेरा जीवन भी खतरे में पड़ सकता है। मुझे धीरे २ मालूम होने लगा कि खाखी महाराज का वह दुष्ट चेला इनकी घात में फिर रहा है। मौका मिलने पर वह इनको किसी तरह खत्म कर इनका धन कब्जे कर लेना चाहता है। वैसी स्थिति में मुझ पर भी वह क्या संकट नहीं ला सकता? वे बानेण वाले सेवकजी मुझसे कह गये थे कि तुम्हारे उज्जैन पहुँचने पर मैं वहाँ मिलने आ जाऊँगा। उनकी याद मुझे बराबर होती रही क्योंकि उस समय मेरे लिए और कोई व्यक्ति मौजूद नहीं था जिसके सामने मैं अपनी यह मानसिक दुश्चिन्ता व्यक्त कर सकूँ और कुछ सलाह ले सकूँ।

अकस्मात् श्राद्ध पक्ष का अन्तिम दिन जब था तब सायंकाल के समय वे सेवकजी हमारे पास पहुँचे। आते ही उन्होंने कहा कि श्रावण-भादौ के दो महीने बानेण में अपने खेतों वगैरह की बुवाई आदि के काम में लगा रहने से इससे पहले मेरा आना न हो सका। अब कल से नवरात्रि प्रारम्भ हो रही है इसलिये मैंने सोचा कि उज्जैन में जाकर चौसठ जोगनियों के सामने नवरात्री की पूजा आदि करूँ, और तुमसे भी मिल लूँ। बाद में सायंकाल के आरती के समय हम खाखी महाराज के सन्मुख नियमानुसार उपस्थित हुए और आरती की पूजा विधि में भाग लिया। बाद में सेवकजी ने खाखी महाराज को साष्टांग प्रणाम किया। तब सेवकजी को अनुभव हुआ कि खाखी महाराज का शरीर काफ़ी उतर गया है और चिन्ता से बहुत जर्जरित हो रहे हैं। खाखी महाराज ने सामान्य रूप से उनसे पूछा कि तुम कब आये? सेवकजी ने यथा योग्य उत्तर दिया और कुछ वे नहीं बोले।

बाद में सेवकजी कामदार जी से मिले तब उनको वहाँ पर दो महीने में होने वाली सारी परिस्थिति की जानकारी हुई।

कामदार जी ने सेवकजी से यह भी कहा कि दो चार दिन में शायद बाबाजी का वह शिष्य जिसका नाम विक्रान्त भैरव था। (और

जिसे रुद्र भैरव विकराल भैरव के नाम से संबोधित किये करता था) यहां आयगा और दो चार खाखी गुंडों को साथ में लाकर कुछ तूफान मचाना चाहता है। इसलिए हम कुछ अपनी व्यवस्था करना चाहते हैं। खाखी महाराज की यह इच्छा है कि किशन भैरव जी को अभी कहीं और जगह भेज दिया जाय। ये और जो बाबा लोग है। उनका कोई विश्वास नहीं है। मैं और रुद्र भैरव जी दोनों कुछ सामान लेकर मथुरा जाना चाहते हैं जहाँ हमारे कुछ अच्छे रिश्तेदार हैं और वहां से हम दो चार अच्छे मजबूत चौबों को ले आना चाहते हैं। जो इस दुष्ट शिष्य को ठीक कर सकें।

दूसरे दिन सबेरे जल्दी मैं जब शौच जाकर आया और पास वाले कुएँ पर बैठकर स्नान करने की तैयारी कर रहा था तो सेवक जी मेरे पास आये और मुझसे वे सब बातें करने लगे। सेवक जी यह भी कहने लगे कि खाखी महाराज की यह इच्छा है कि तुम भी कामदार जी के साथ मथुरा चले जाओ वहाँ पर तुम्हारे लिए सब इन्तजाम करा दिया जायगा। उस समय मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका। मैंने सेवक जी से कहा कि एक दो दिन ठहरकर विचार करना ठीक होगा। एक दो दिन इसी उलझन में बीते। तीसरे या चौथे दिन मथुरा से चार पाँच अच्छे मजबूत लट्ट बाज चौबे वहाँ आ पहुँचे। इसकी जानकारी उस विक्रान्त भैरव को भी हो गई क्योंकि उसके साथ आये हुए एक दो गुंडे से खाखी साधु सदा हमारे मठ में आया करते थे और इधर उधर की डराने धमकाने की भी बातें वे किया करते थे। एक दिन सबेरे जब रुद्र भैरव अकेला शौच के लिए बाहर गया हुआ था तो विक्रान्त भैरव के दो साधुओं ने जा घेरा और उसे बहुत कुछ बुरा-भला कहा और उसे यह भी कहा कि तू अपने गुरु को समझादे कि वह अपने चले को समझा बुझा कर अपने पास बुला ले नहीं तो तेरी और तेरे गुरु की खैरियत नहीं है। फिर रुद्र भैरव ने आकर अपने गुरुजी से ये सब बातें कह सुनाई। उसी दिन रात को कामदार जी और रुद्र भैरव तो मथुरा से आये हुए तीन आदमियों को साथ लेकर खाखी महाराज के मूल्यवान

जो बक्से थे उनको लेकर मथुरा के लिए खाना हो गये। हमको भी इसकी कुछ मालूम नहीं पड़ने दी। दूसरे दिन सेवक जी जब खाखी महाराज से मिले तो उनसे उन्होंने कहा कि अभी यहां का मामला कुछ गड़बड़ है सो किसन भैरव को तुम किसी अन्य जगह ले जाओ। मामला शांत होने पर हम फिर अपने पास बुला लेंगे। हमारी राय है कि किसन भैरव अभी मथुरा चला जाय, वहां भी हमारा मठ है और दो तीन साधु संत वहाँ रहते हैं। वे पंडित जी भी मथुरा ही में रहते हैं। हमारे लिख देने से वे इसकी पढ़ाई का काम चालू कर देंगे। इसकी वहां पर किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी। तुम स्वयं जाकर इसे वहां छोड़ आओ।

सेवक जी की यह बात सुनकर मैंने उनसे कहा कि मुझे अब इन बाबा जोगड़ों की संगति अच्छी नहीं लगती। इन चार महीनों में मैंने इनको अच्छी तरह समझ लिया है। तुम्हारे ही कहने से मैं इनकी जमात में शामिल हो गया। यद्यपि खाखी महाराज बहुत भले हैं और इनका स्नेह भी मुझ पर अधिक है। यदि इनकी जमात की ऐसी बुरी रीत-भात न होती और ये अकेले ही होते तो मैं इनकी सेवा करता परन्तु इनकी परिस्थिति तो बहुत विषम है, अतः मैं इस स्वांग को छोड़कर निकल जाना चाहता हूँ। तुम्हारे ही कहने से मैंने यह स्वांग धारण किया था और अब तुम्ही मुझे इससे छुड़ाकर बाहर निकाल दो।

सेवक जी की मेरी तरफ बहुत सहानुभूति थी, और वहां की परिस्थिति देखकर उनको भी विश्वास हो गया कि किसन का इस जमात में रहना अच्छा नहीं है। तब उन्होंने कहा कि हम कल सवेरे ही यहाँ से कहीं चल देंगे। उधर उस विक्रांत भैरव को यह पता लग गया कि खाखी महाराज ने मथुरा से कुछ लठ्ठबाज चौबों को बुलाया है और उनके साथ रूद्र भैरव के हाथों अपना कीमती सामान कहीं भिजवा दिया है। तथा दो तीन चौबे भी अपनी रक्षा के लिए मठ में

रख छोड़े हैं। हमने सुना कि इसके लिए वह भी कुछ कड़ी तैयारी कर रहा है। इसलिए शीघ्र ही यहां से रवाना हो जाना अच्छा है।

सायंकाल की आरती के समय खाखी महाराज के पास नमस्कार करने गया तो उन्होंने मेरे सिर पर बड़े स्नेह से हाथ फेरा और बोले कि वह दुष्ट यहाँ आया हुआ है और कुछ भगड़ा, तूफान आदि मचाना चाहता है, इसलिए मैंने सेवक जी से कहा है कि वे तुमको हमारे मथुरा वाले मठ में रख आवें। सो तुम वहाँ चले जाओ बाद में ठीक ठाक हो जाने पर हम तुमको अपने पास बुला लेंगे हमारी तुम पर बड़ी आशा है हमने उस दुष्ट को बड़ी अच्छी तरह रखा, पढ़ाया और सब तरह से तैयार किया परन्तु वह दुराचारी निकला। इसलिए हमने उसको अपनी जमात से बाहर निकाल दिया है। परन्तु कुछ बदमाशों के साथ मिलकर वह हमारे साथ लड़ाई भगड़ा करना चाहता है। हम इसके लिए अब कुछ कानूनी कारवाई करना चाहते हैं। वह यहां मठ में आकर कुछ तूफान भी मचाना चाहता है इसलिए अभी तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं समझकर हमने सेवक जी को वैसे करने को कहा है। तुम धबराना मत और किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करना। शंकर भगवान की कृपा हुई तो तुम्हारा सब तरह से भला होगा। मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि, महाराज जैसी आपकी आज्ञा हो।

उस रात को मठ की ऊपर वाली कोठड़ी में जाकर अपना कम्बल बिछा कर लेट गया, सेवक जी तो बहुत देर तक खाखी महाराज से कुछ इधर-उधर की बातें करते रहे और फिर अन्य साधुओं के साथ बैठकर गप्पे हाँकते रहे। मुझे सारी रात नीद नहीं आई और सुखानंद जी से लेकर उज्जैन की आज तक की परिस्थिति के विचारों में मन उद्वेलित होता रहा। बाद में पिछली रात को सेवक जी जब मेरे पास आये तो मैंने उनसे कहा कि सुबह जल्दी यहां से उठकर क्षिप्रा नदी में स्नान करना चाहता हूँ। और शरीर पर लगी हुई इस भभूत को धोकर और लंगोट को उतार कर क्षिप्रा में बहा देना चाहता हूँ।

तुम्हारे पास कोई कुर्ता और अंगोछा हो तो वह मुझे पहनने को दे देना । फिर गाड़ी में बैठकर रतलाम चल देना है । सेवक जी के मन में यह बात ठीक लगी और उन्होंने वैसा करने में अपनी सम्मति बताई उस रात तक उस मठ में भी कई लोग आते जाते दिखाई दिए । उन साधु, संतों में भी सारी रात किसी न किसी तरह की गपशप चलती रही ।

मैं और सेवक जी सवेरे चार बजे ही मठ में से निकल पड़े । मैंने वह कम्बल और चीमटा लपेटकर, बगल में दबा लिया तथा कमंडलु हाथ में ले लिया । क्षिप्रा नदी पास ही में बह रही थी । नवरात्री के दिन थे इसलिए बहुत से स्त्री-पुरुष जल्दी सवेरे वहाँ स्नान करने चले आते थे । एक किनारे बैठकर मैंने तथा सेवक जी ने स्नान किया । खूब अच्छी तरह शरीर मलकर मैंने उस भभूति का विसर्जन किया । रात्री को पहनने के लिए जो पुरानी, फटी कफनी मेरे पास थी उसको तथा लंगोट को नदी में बहा दिया, उसके साथ वह चीमटा और कमंडलु भी क्षिप्रा के प्रवाह को समर्पण कर दिया । जल्दी से सेवक जी ने जो अंगोछा दिया था उससे शरीर पोंछ लिया और फिर उसी को कमर पर लपेट लिया । एक पुराना सा धोया हुआ कुर्ता सेवकजी के पास था उसे पहन कर फिर मैं उसी तरह पुराना किशनलाल बन गया ।

(८)

मण्डप्या निवास—जैन यतिवेश धारण

स्नान कर स्टेशन की तरफ चलने को तैयार हुए तो सेवकजी ने कहा कि पास ही में महाकालेश्वर का मंदिर है वहाँ पर शंकर भगवान के दर्शन करते चलें हम उस मंदिर में गये। ओम नमः शिवाय का मंत्रोच्चारण करते हुए मैंने शिवजी की स्तूति का उच्चारण किया, कुछ पांच सात श्लोक महीम्न स्तोत्र के भी बोला। इस प्रकार उस जीवन में अभ्यस्त नमः शिवाय वाक्य का अन्तिम बार उच्चारण करता हुआ मैं मंदिर से बाहर निकला।

हम स्टेशन पर पहुँचे और जो गाड़ी मिली उसमें बैठकर रतलाम की ओर रवाना हुए। उस समय तक मेरा यह निश्चय नहीं हुआ था कि अब मुझे यहाँ से कहां जाना है। कहां रहना है, और क्या करना है। गाड़ी में बैठे-बैठे मन में कुछ ऐसे विचार उठ रहे थे कि जिनका उद्देश्य मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। यह भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ, और क्या करता आ रहा हूँ। मेरी कुछ मानसिक उद्विग्नता को देखकर सेवकजी बोले कि किशन भैया ! क्या विचार कर रहे हो। यह सब कैसा विचित्र नाटक हो गया। मेरी भी समझ में कुछ नहीं आया। मैंने कहा विधाता ने जो कुछ भाग्य में लिखा है वही होता रहता है। न मालूम अब आगे क्या होने वाला है। मैंने उनसे पूछा कि तुमने सुखानन्द जी से बानेण जाकर धनचन्द जी को क्या कहा, और उसने तुमसे क्या कहा ? सेवकजी बोले कि मैंने उनसे वही बात कही जो मैंने नीमच से चलते वक्त रूपाहेली चले जाने के बारे में कही थी। और कोई बात मैंने उनसे नहीं कही मेरी बात को सुनकर धनचन्द जी न राजी हुए और न नाराज हुए। उन्होंने कहा कि रूपाहेली चला गया हो तो ठीक ही है, उसकी मां को कुछ

तसल्ली हो जायगी। यदि रूपाहेली न गया हो और अन्य कहीं चला गया हो तो उसका पता जरूर तुमको लगाना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि मेरी बदनामी हो इत्यादि। फिर सेवक जी बोले कि अब कहां चलना है क्या बानेण ही चलना है। या उदयपुर चलना है। क्योंकि उदयपुर में भी तुम्हारे योग्य एक दो जगह मैंने देख रखी है। मैंने कहा मैं बानेण तो अभी नहीं जाना चाहता। उदयपुर के स्थानों को मैंने ठीक से देखा नहीं है इसलिए किसी अनजान स्थान में एकदम जाकर रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। रतलाम में एक यति जी हैं जिनका शिष्य बानेण के पास मंडप्या गाँव में रहता है। वह यति कई बार बानेण आया जाया करता था। उसके गाँव मंडप्या में भी मैं दो चार बार गया आया था। वह यति कुछ पढ़ा-लिखा और बोल चाल में चतुर है। व्यवहार भी उसका बहुत अच्छा है वह मुझ पर स्नेह भी अच्छा रखता है। उसकी जो स्त्री है वह भी अच्छी सुशील मालूम देती है। उसने कई बार मुझसे कहा था कि तुम कुछ दिन यहां मंडप्या आकर हमारे पास रहो। मैं कल्प सूत्र आदि अच्छी तरह बांचना जानता हूँ और जन मंदिरों में पूजा आदि, पढ़ाने का काम करता हूँ। इसलिए मैं तुमको यह सब सिखा दूँगा और फिर किसी अच्छी पाठशाला में भर्ती करा दूँगा, जिससे तुम्हारी पढ़ाई अच्छी हो सकेगी। वह यति हॉरमोनियम तथा तबला भी बजाना जानता है, और कंठ भी उसका बहुत अच्छा है जिससे गाना बजाना भी उसे अच्छा मालूम है। उन यति जी के पिता या गुरु रतलाम में रहते हैं, जो अच्छे मालदार भी हैं, और कुछ कारोबार भी करते हैं। वे भी एक दो बार मुझे मंडप्या में मिल गए थे। और उन्होंने अपने चेले से कहा था कि किशनलाल को मेरे पास भेज दो तो मैं रतलाम की अच्छी पाठशाला में इसे भर्ती करा दूँ। इसलिए मेरा विचार होता है कि यदि रतलाम में उनका पता लग जाय तो पहले वहां चलें। वे सेवकजी उन मंडप्या वाले जति जी से भी अच्छे परिचित थे। उन यति जी का नाम ज्ञानचन्द जी था। उनके पिता का नाम अब मुझे स्मरण नहीं है। यति ज्ञानचन्द जी की पत्नि जो अच्छी रूपवान और सुशील भी थी। टोंक के एक यति जी की लड़की थी। टोंक वाले यति

जी भी अच्छे सम्पन्न थे । और वे अपनी लड़की को लेने, रखने मंडप्या आते रहते थे । उनके पास एक बहुत अच्छी घोड़ी थी उसी पर सवार होकर टोंक से मंडप्या आते जाते थे । वे यति जी अच्छे कदावर और रूपरंग से खूबसूरत थे । उनकी बड़ी लम्बी मूछें थी । उनके चेहरे का मुँहे अब भी अच्छा स्मरण है । ऐसी बातें करते हुए हम रतलाम स्टेशन पर पहुँचे ।

सेवकजी मंडप्या वाले यति ज्ञानचन्द जी से अच्छे परिचित थे, और वे उनके गुरु को भी अच्छी तरह जानते थे । रतलाम में उन यति जी का घर ढूँढ लिया । वहाँ जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि वे यति जी मन्दसौर गये हुए हैं ।

मन्दसौर में एक यति जी रहते थे, जो बानेण वाले धनचन्द जी यति के गच्छ के श्री पूज्य कहलाते थे । उनका स्थान मैंने एक दफ़े धनचन्द जी के साथ देखा था । सेवक जी बोले अपन यहाँ से मन्दसौर चलें । फिर हम गाड़ी में बैठकर मन्दसौर गये । उन श्री पूज्य जी का मकान मन्दसौर की जनकुपुरा नामक बस्ती में था । वे श्री पूज्य जी अच्छे वैद्य थे इसलिए मन्दसौर में उनकी काफ़ी प्रसिद्धि थी । हम उनके मकान पर पहुँचे तो उन्होंने मुझे तुरन्त पहचान लिया । और पूछने लगे कि तुम यहाँ कैसे आये । सेवकजी ने बात बना कर कहा कि हम लोग नबरात्रि का उत्सव मनाने उज्जैन की चौंसठ जोगनियों माता की पूजा करने गये थे । उज्जैन का दशहरा का उत्सव भी देखना था । इसलिए भाई किशन लाल जी के साथ हम उज्जैन गये, और वापस लौटते हुए यहाँ आपसे भी मिलने आ गये हैं ।

उन श्री पूज्य जी का नाम पन्नालाल जी था । वे जैन संप्रदाय के खरतर गच्छीय पिप्पलिया शाखा के श्री पूज्य कहलाते थे । बानेण वाले धनचन्द जी यति भी उसी शाखा के थे । धनचन्द जी के पूर्वज यतियों के साथ मन्दसौर वाले श्री पूज्य जी का ऐसा कोई व्यवहार बन्धा हुआ था जिससे कुछ गाँवों के मन्दिरों और उपाश्रयों पर बानेण वाला का अधिकार भाना जाता था । इसलिए साल में एक दो बार धनचन्द जी

अपने अधिकार का हिस्सा लेने के लिए मन्दसौर जाया करते थे। श्री पूज्य जी बड़े चालाक और स्वाबदार थे। उनकी वैद्य की खूब चलती थी और कई स्थानों पर जमीन, जायदाद वगैरह भी थी। उनका मन्दसौर में एक अच्छा और पक्का बना हुआ मकान था। इनके पास एक दो घोड़ों की बग्गी तथा सवारी के दो तीन तांगे भी थे। तांगे उनके किराये पर चलते रहते थे। जरूरत पड़ने पर तांगे के घोड़ों को बग्गी में जोड़कर उससे भी किराया पैदा कर लिया करते थे। आवश्यकता होने पर वे स्वयं बग्गी में बैठकर गांव में निकला करते थे, मकान पर दो तीन नौकर, नौकरानियां थी। कुछ गायें भैंसे भी थी जिनका काफी दूध होता रहता था। अपनी आवश्यकता के सिवाय का दूध हलवाईयों को बेच दिया जाता था। उनके घर में एक प्रौढ़ उम्र वाली हूष्ट-पुष्ट और दिखने में अच्छी स्त्री थी। यह तो मुझे ज्ञात नहीं हुआ की वह परिणिता थी या रक्षिता। पर उनको कोई संतान नहीं थी। उनके पास एक छोटा बच्चा था जिसकी उम्र कोई सात, आठ वर्ष की थी। वह शायद उनका पालीत पुत्र था। श्री पूज्य जी का घर दुमंजला था, नीचे के मंजिल में उनका औषधालय चलता था। ऊपर के मंजिल में उनका निज का निवास था। उनके ऊपर वाले कमरे में एक पुरानी टाईप की बड़ी सी घड़ी लगी हुई थी, उसमें आधा घन्टा और घन्टा के बजने के जो टंकारे लगते थे उसकी आवाज बड़ी मधुर लगती थी मैंने अपनी जिन्दगी में उसके पहले कोई ऐसी घड़ी नहीं देखी थी, जिससे उस घड़ी को देखकर और उसकी वह विचित्र भंकार सुनकर आश्चर्य मय आनन्द होता रहा।

श्री पूज्य जी ने एक छोटे से अलग कमरे में बिठाकर हमको भोजन कराया। भोजन नौकरानी ने परोसा था। पहले भी मैं जब धनचन्द यति के साथ वहां गया था तब भी उसी कमरे में इसी तरह हमको जिमाया गया था। श्री पूज्य जी ने मेरे विषय में सेवकजी से कुछ बातें की। श्री पूज्य जी को ये मालूम था कि मैं रूपाहेली से स्वर्गीय यति जी

श्री देवीहंस जी के साथ बानेण आया था । जब धनचन्द जी यति ने देवीहंस जी महाराज के स्वर्गवास निमित्त जो भोजन समारंभ किया था उसमें इन श्री पूज्य जी को नहीं बुलाया गया था । इसलिए ये धनचन्द जी से कुछ नाराज थे । इन्होंने सेवकजी से कहा कि रूपाहेली वाले यति जी महाराज के पास बहुत धन था जो धनचन्द ने सब दबा लिया है । और अब इस लड़के को वहां से निकाल देना चाहता है । सेवकजी ने इसके जवाब में क्या कहा सो तो मुझे ठीक ज्ञात नहीं हुआ; परन्तु सेवकजी ने दो चार बार उनसे यही बात कही कि यह लड़का अच्छा बुद्धिमान है और इसकी विद्या पढ़ने की बहुत अभिलाषा है, सो कहां रहकर यह पढ़ सकता है, इसकी कोई सलाह आप दें । श्री पूज्य जी ने कहा कि मंडप्या वाला यति ज्ञानचन्द अच्छा पढ़ा लिखा यति है और व्यवहार में भी अच्छा है वह हर साल चातुरमास के समय में मालवा और गुजरात के अच्छे गांवों में जाता रहता है । और उधर के श्रावकों को व्याख्यान आदि सुनाता रहता है । इससे उसकी जान पहचान बहुत अच्छे श्रावकों के साथ रहती है । यदि उसके साथ इस लड़के का रहना हो जाय तो इसकी पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था वह कहीं कर देगा, गुजरात या काठियावाड़ की किसी अच्छी पाठशाला में इसकी भर्ती हो जाय तो यह अच्छी तरह पढ़ सकेगा । बानेण में रहने से तो इसका कुछ भला नहीं होगा इत्यादि ।

उसी दिन शाम को रतलाम वाले वे यति जी इन श्री पूज्य जी से मिलने आये और वहां पर परस्पर मेरे विषय में भी कुछ चर्चा हुई श्री पूज्य जी ने उनसे कहा कि मंडप्या में ज्ञानचंद जी के पास यह लड़का रहे तो अच्छा है इत्यादि बातें हुई रतलाम वाले यति जी को भी वह बात पसन्द आई, और वे बोले कि आज ही रात की गाड़ी से मैं मंडप्या जा रहा हूँ इसलिए मैं इसको साथ ले जाऊंगा सेवक जी जो इन सब बातों की मध्यवर्ती कड़ी थे उनको भी यह बात पसन्द आई और मुझसे कहने लगे कि किसन भैया अपन मंडप्या चलें । मैंने उसमें अपनी सम्मति दिखलाई क्योंकि मंडप्या वाले जति जी के साथ मेरा अच्छा परिचय हो गया था ।

रात की गाड़ी से हम रवाना होकर सुबह निम्बाहेड़ा स्टेशन पर उतरे रतलाम वाले यति जी को तो लेने के लिए मंडप्या से एक घोड़ी आई थी जिस पर सवार हो कर वे चले गये, हमने कहा कि हम पैदल ही वहां पहुँच जायेंगे। निम्बाहेड़ा से मंडप्या शायद दस बारह मील की दूरी पर था। इसलिए सबेरा होने पर निम्बाहेड़ा स्टेशन पर कुछ नमकीन, सेव खाकर और पानी पीकर चल दिए। उस जमाने में चाय का बिलकुल ही प्रचार नहीं था। दूध और मिछई आदि अन्नस्य मिलते थे; लेकिन उसके लिए हमारे पास बिलकुल ही पैसा नहीं था। उज्जैन से निम्बाहेड़ा तक रेल का किराया सेवक जी ने अपने पास से चुकाया था उनके पास भी अब कोई पैसा शेष नहीं था। और मैं तो सर्वथा ही अकिंचन था। उज्जैन के मठ में से मैं जब रवाना हुआ तब मेरे पास तो लोहे का एक चीमटा था, दोनों हाथों में पतले से लोहे के दो कड़े थे, और एक पुराना सा छोटा पीतल का कमंडलु था इन धातु के उपकरणों को अपनी एक लंगोटी और आधी फटी हुई कफनी के साथ क्षिप्रा नदी में बहा दिया था। उस समय मैं पूरा निरग्रंथ, अपरिग्रहि, अनगार था, मेरे पास सूत का तार मात्र भी नहीं था। सेवक जी ने मुझे अपना दिगम्बर पना ढांकने के लिए एक पुराना सा जो श्रंगोछा दिया था और भभूत से तड़की हुई चमड़ी को ढकने के लिए पुराना कुर्ता दिया था उसी को पहन कर मैं उज्जैन से निम्बाहेड़ा तक पहुँचा था। मन्दसौर वाले यतिजी ने मेरा ऐसा विरूप वेष देखकर मन में कुछ सोचा या नहीं, इसका मुझे कुछ मालूम नहीं हुआ। परन्तु उनको इस विषय में कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुई ही ऐसा मुझे अनुभव नहीं हुआ। उन्होंने शायद धनचंद यति के कारण मुझे कुछ उपेक्षा ही की दृष्टि से देखा हो अस्तु।

कोई शाम को तीन चार बजे हम मंडप्या पहुँचे। ज्ञानचन्द जी को उनके पिता के द्वारा हमारे पहुँचने की खबर मिल गई थी, इसलिए वे हमारी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। हमारे मकान पर पहुँचने पर ज्ञानचन्द जी ने बड़े सौजन्य के साथ मुझे बुलाया और हँसते हुए बोले कि भैया

बहुत कुछ घूम आये चलो सारे दिन के भूखे होंगे, मुंह धो लो और रोटी तैयार है खाली, फिर शांति से सब बातें करेंगे तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता मत करो और अपने बड़े भाई के घर में आ गये हो ऐसा समझो । फिर उन्होंने सेवकजी को भी अच्छे मीठे शब्दों से बुलाया और बोले कि सेवक जी महाराज मालूम देता है कोई रहस्य भरी विद्या सीख आये हो । उज्जैन में चौंसठ योगिनियों के तथा हर सिद्धि माता जी की अच्छी आराधना की मालूम देती है. हमको भी उसकी कुछ प्रसादी देना चाहिये इत्यादि हंसी मस्करी की बातें करते हुए हम तीनों ही साथ भोजन करने बैठे । उनके पिताजी कहीं पास के गांव में कुछ लेन देन का हिसाब करने गये थे जो संध्या काल को कुछ देर से पहुँचे हम काफ़ी थके हुए थे इसलिए मकान के पास वाले कमरे में जाकर सुख से सो गये ।

मण्डप्या एक छोटा सा गांव है । बानेण से सात आठ मील की दूरी पर है । मैं बानेण से वहाँ पर तीन चार दफ़े गया था इसलिए गांव से मैं परिचित था । आस पास में कुछ दूरी पर छोटी-बड़ी पहाड़ियां भी हैं । उस गांव में यति ज्ञानचन्द जी की कुछ खेती-बाड़ी थी । मैं जब उज्जैन से वहाँ पहुँचा तब मक्का की फसल तैयार हो गयी थी । शरद पूर्णिमा की रात को मक्का काटने का प्रारम्भ होना था ।

सुबह जब हम उठे तो हाथ मुंह धोने की दृष्टि से ज्ञानचन्द जी के खेत पर चले गये । वहीं पर कुएं में से पानी निकालकर दातुन आदि किया । स्नान भी किया । ज्ञानचन्द जी ने मेरे पहनने के लिए एक मामूली लट्ठे की धोती और नया कुर्ता भी दिया । वहीं खेत पर बैठे २ सेवकजी के साथ भी बात-चीत होती रही, सेवकजी बोले कि मैं आज बानेण जाना चाहता हूँ । धनचन्द जी मुझसे तुम्हारे विषय में पूछेंगे तो मैं उनसे क्या कहूँ । मेरी तरफ से ज्ञानचन्द जी ने कहा कि किसन लाल कहीं साधु-संतों के साथ यात्रा करने चला गया था, सो मुझे यह उज्जैन में मिल गया फिर मेरे कुछ कहने से यह अभी मण्डप्या में ज्ञानचन्द जी के पास आकर रहा है और इसकी इच्छा ज्ञानचन्द जी के पास

कल्प-सूत्र आदि बांचना सीख लेना चाहता है अतः अभी इसकी मर्जी मंडप्या ही में रहने की है। कुछ दिन बाद बानेण भी आकर तुमसे मिलना चाहता है इत्यादि। सुनकर सेवक जी बोले ठीक है मैं ऐसा ही उससे कह दूंगा। ऐसी बातें करते हुए हम फिर ज्ञानचन्द जी के घर पहुँचे और भोजन आदि किया। दोपहर बाद सेवकजी बानेण के लिए रवाना हो गये।

मैंने दूसरे ही दिन सवेरे खेत की रखवाली का काम सम्भाला। ज्ञानचन्द जी का खेत उनके घर से कोई आधा पौना मील के फांसले पर था। सुबह उठकर मैं खेत पर चला जाता और कुसी, फावड़ा आदि लेकर खेत के आस पास जो काँटों वाली झाड़ियां उग रही थी उनको काटना और खोदकर जमीन साफ करने का काम शुरू किया। ज्ञानचन्द जी के पास दो तीन गायें थी उनको भी साथ ले जाता और चारा चराया करता। दोपहर को आकर मकान पर रोटी खा लेता और फिर वहीं खेत पर चला जाता जो फिर शाम को सात आठ बजे वापस मकान पर आ जाता। यति ज्ञानचन्द जी की पत्नि कुछ सुशील थी। उसका व्यवहार मेरे साथ अच्छा रहता था। कभी २ ज्ञानचन्द जी खेत पर चले आते और दोपहर के समय की रोटी भी मेरे लिए ले आते। ज्ञानचन्दजी जरा आराम प्रिय प्रकृति के थे। उनको खेती का काम स्वयं करना पसन्द नहीं था ना ही वे अपनी पत्नि से भी वैसी कुछ मजदूरी का काम कराना पसन्द करते थे। गाने बजाने का उनको अधिक शौक था इसलिए वे प्रायः मकान पर दो तीन घण्टे इसमें बिताया करते थे। जैसा कि बहुत से यतियों का लोगों को दवा-दारू आदि देने का खास व्यवसाय होता है, वैसा ये कुछ नहीं करते थे। पत्ते बाजी खेलने का इनको बहुत शौक था इसलिए ये अपने मकान पर दो चार व्यक्तियों के साथ बैठे २ पत्ते-बाजी खेला करते थे। शतरंज का खेलना भी इनको प्रिय था। परन्तु वह तभी खेलते जब कोई उसके खेलने वाला अच्छा व्यक्ति आ जाता। दोपहर बाद तीन चार बजे वे प्रायः भांग भी पीया करते थे।

यों बोलने चालने में अच्छे व्यावहारिक थे । उनके श्वसुर यति जो टोंक में रहते थे वे काफ़ी मालदार थे, उनकी तरफ से ज्ञानचन्द जी की पत्नि को कपड़े लत्ते आदि की बहुत मदद मिलती रहती थी । दो तीन महीने में उनका एक चक्कर मंडप्या में अवश्य हो जाता था और वे हर समय पांच पच्चीस रुपये ज्ञानचन्द जी को दे जाते थे । रतलाम वाले उनके पिता की तरफ से उनको कोई आर्थिक सहायता मिलती हो ऐसा अनुभव नहीं हुआ । ज्ञानचन्द जी का अपने श्वसुर तरफ जितना आकर्षण था वैसा पिता की तरफ नहीं था । उसका कारण शायद यह था कि पिता की स्त्री कोई अन्य वर्ग की थी । उनके पिता तो जमीन-जायदाद आदि की सम्भाल लेने के लिए कभी २ मंडप्या चले आते थे परन्तु उनकी स्त्री वहां कभी नहीं आती थी । इसी तरह ज्ञानचन्द जी की स्त्री भी कभी अपनी सास के पास नहीं जाती थी । ये सब बातें मुझे शनैः शनैः ज्ञानचन्द जी की पत्नि से मालूम हुई थी ।

शरद-पूर्णिमा की चाँदनी कि रात में मक्का काटने का मुहुर्त किया गया । मैं पिछले साल जब बानेण था तब यह काम सीख लिया था । पर बानेण में तो इस काम में धनचन्द जी और उनकी स्त्री का ही मुख्य कार्य था । मैं तो उस समय सीखाऊ मजदूर था । बानेण में तो एक खेत में जब मक्का या ज्वार की बुवाई की तब धनचन्द जी के पास कोई बैल-जोड़ी न होने से और किराये की सामग्री लाने का साधन न होने से हल के खींचने का काम मैंने और धनचन्द जी की स्त्री ने बैल की तरह स्वयं किया । बानेण का वह खेत शायद धनचन्द जी ने स्वर्गस्थ गुरु महाराज देवीहूस जी के पैसे से खरीदा था और उसकी रजिस्ट्री भी मेरे नाम से करायी गई थी ।

मंडप्या में ज्ञानचन्द जी के खेत में जो स्वेच्छा से मैंने मजदूरी करनी स्वीकार की उसमें मेरे साथी दो तीन मजदूर वैसा ही मजदूरी पेशा करने वाले थे । तीन चार दिन में मक्काई काटने का काम पूरा हुआ । दिवाली के नजदीक ज्ञानचन्द जी को किसी गांव के जैन भाईयों की ओर से पूजा आदि उत्सव में भाग लेने के लिए बुलावा आया इस-

लिए वे वहां चले गये। मैं मंडप्या में रहकर मक्कई आदि छुलवाने का काम यथाशक्ति करता रहा और इसमें ज्ञानचन्द जी की पत्नि की भी मदद मिलती रही। पन्द्रह सत्रह दिन के बाद ज्ञानचन्द जी वहाँ आ गये। कुछ दिन बाद धनचन्द जी भी बानेण से मिलने आये और मुझे बानेण चलने के लिए बहुत ही सद्भाव के साथ बड़ा आग्रह किया। उनको नाराज न करने की दृष्टि से मैं कुछ दिन के लिए बानेण चला गया। वहां पर धनचन्द जी ने मुझे कहा कि वर्षा के सावन-भादों के महीने में रूपाहेली से तुम्हारी मां ने उस ओसवाल महाजन को तुम्हें वहां ले जाने के लिए भेजा था। परन्तु सुखानन्द जी के जाने के बाद तुम्हारी कोई ठीक खबर मुझे नहीं मिली थी इसलिए मैंने उससे कह दिया था कि किशनलाल तो तीन चार महीने से कहीं मुसाफरी करने गया है वह अभी कहां है इसका कोई समाचार हमको नहीं है। यह बात सुनकर वह महाजन खिन्न होकर चला गया। उसने कहा कि तुम्हारी मां दिन-रात तुम्हें याद कर कर रोती रहती है। उसका शरीर बिल्कुल सूख गया है। वह मकान से भी बाहर नहीं निकलती है। और किसी से कोई बातचीत भी नहीं करती है। दो-दो, तीन-तीन दिन तक मुंह में अन्न तक भी नहीं डालती है। उसको शायद ऐसी भी कुशंका होती रहती है कि मेरा बेटा कहीं मर गया हो और जिसकी मुझे खबर न मिल रही हो।

धनचन्द ने मुझसे कहा कि अगर तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तुम्हें रूपाहेली ले चलूँ और तुम्हारी मां से मिला लाऊँ। मेरी उस समय इस अवस्था में रूपाहेली जाने की इच्छा बिल्कुल नहीं हुई। मैं सोचने लगा कि मैं कैसी आशा और उमंग लेकर स्वर्गीय गुरु महाराज की सेवा करने की इच्छा से घर से निकला था। गुरु महाराज की मृत्यु के बाद मैं किस प्रकार बानेण में रहा और फिर किस प्रकार सुखानन्द जी में खाखी बाबा की जमात में बाबा बनकर चला गया और किस प्रकार उज्जैन में उस स्वांग को छोड़कर मंडप्या चला आया और आज मैं कैसी अकिंचन, असमर्थ और असहाय दशा का भुक्त भोगी बन रहा हूँ, ऐसी स्थिति में

मैं मां को अपना मुंह किस तरह दिखाऊँ इसलिए मेरा मन रूपाहेली जाने को बिल्कुल भी तैयार नहीं था ।

मैं कुछ दिन बानेण में रहा । अधिकतर उस बावड़ी पर बैठा रहता था जिसके पास मैंने अपने हाथों से गुरु महाराज के मृत शरीर को अग्नि की चिता में भस्मी भूत बना दिया था । उस बावड़ी का वह एकान्त स्थान मुझे अच्छा लगता था और साथ में कुछ खेत का काम भी करता रहता था । कोई महीना भर हुआ था कि मंडप्या से यति ज्ञानचंद जी मुझे लेने आये । उन्होंने धनचन्द जी से कहा कि गंगापुर में एक मन्दिर की प्रतिष्ठा होने वाली है । जिसका कार्य वहाँ के महाजनों ने मुझे सौंपा है । प्रतिष्ठा में पांच सात और यतियों की भी आवश्यकता रहेगी इसलिए मैं आपको भी उस समय बुलाऊंगा । मैं अभी भाई किशनलाल को मंडप्या ले जाना चाहता हूँ, जिससे उस प्रतिष्ठा विधि में बोलने के लिए मंत्र-पाठ तथा शान्ति आदि का पाठ इसको सिखा दूँ । इसका शब्द उच्चारण आदि अच्छा है । और कुछ सारस्वत व्याकरण और अमर कोष के कुछ श्लोक वगैरह भी इसको आते हैं इसको स्व० देवीहंस जी महाराज ने ब्रसगहरम् आदि कुछ स्मरण भी सिखाये थे जिससे प्रतिष्ठा विधि के कार्य में इसका अच्छा सहयोग मिल सकेगा । ऐसी बातें कह कर वह मुझे अपने गांव ले गये । मैं भी धनचन्द जी के साथ रहने की अपेक्षा ज्ञानचन्द जी के साथ रहना अधिक पसन्द करता था ।

मंडप्या में रहकर ज्ञानचंद जी से पूजा-प्रतिष्ठा आदि के समय बोले-जाने वाले कितने मंत्र, स्तुति पूजा के कुछ स्तवन आदि कंठस्थ कर लिये । शायद माघ या फागुन मास में वह प्रतिष्ठा महोत्सव होने वाला था । कोई महीने भर पहले ही हम लोग गंगापुर पहुँच गये । वहाँ एक स्थानिक जति रहते थे पर वे कुछ विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे । उनके साथ ही उपाश्रय में हम लोगों ने डेरा डाला । हमारे भोजन के लिए तो गांव के बनियों ने यह व्यवस्था की थी कि उनके घरों से रोज सुबह, शाम गोचरी के रूप में आहार ले आया जाय । यति जी ज्ञानचंद जी ने यह काम मेरे सुपुर्द किया । यों तो मैं सिर पर एक मामूली

काली-टोपी, बदन पर कुर्ता और सादी धोती पहने करता था, परन्तु बनियों के यहाँ गोचरी जाने के समय नंगा सिर होना आवश्यक था तथा शरीर पर भी एक हल्की सी मलमल की धोती चद्दर ओढ़ना जरूरी था। इसलिए वहाँ गंगापुर जाकर ज्ञानचंद जी ने मुझे वह चादर ओढ़ादी और मेरे सर पर से टोपी उतरवा दी। ज्ञानचन्द जी ने वहाँ के बनियों के सम्मुख मुझे स्व० देवीहंस जी महाराज के शिष्य के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। बनिये भी वह मेरा नूतन यति भेष देखकर कुछ प्रसन्न ही हुए। कई दफे वे सुबह आकर मुझे मांगलिक पाठ भी सुनाने को कहते थे। मैंने दो तीन लकड़ी के पात्र एक भोली में रखकर बनियों के यहाँ से भिक्षा लाने का मुहूर्त किया। इसके पहले मैंने कभी कहीं भिक्षा नहीं मांगी थी। मैं एक खानदान राजपूत घराने का लड़का इस तरह यतियों के साथ रहकर बनियों के यहाँ भिक्षा मांगने के लिए जब चला तब न जाने मेरे मन में कैसे २ विचार उत्पन्न हुए। परन्तु मनुष्य परिस्थिति से लाचार होकर क्या-क्या नहीं करता रहता है। मैं भी उसी परिस्थिति के वश होकर जीवन में पहली दफे रोटी की भिक्षा लेने चला। परन्तु उस प्रथम गोचरी के लिए गंगापुर के ओसवालों में जो मुखिया थे और जो उस प्रतिष्ठा के कराने में भी अगुवा थे उन्हीं के घर जाना हुआ। वे महाजन मुझे अपने साथ ले गए। यति लोग किसी बनिये के यहाँ भिक्षा लेने जब आते हैं तब उस घर में प्रवेश करते समय “धर्मलाभ” ऐसा वाक्य उच्च स्वर से बोलते हैं जिससे घर की स्त्रियों को यह पता लग जाय की कोई यतिजी गोचरी लेने आये हैं। मैंने भी उस दिन अपने जीवन में पहली बार इस “धर्मलाभ” वाक्य का उच्चारण किया। मेरी छोटी सी चौदह पन्द्रह वर्ष की उम्र वाले लड़के को यति के चेले के रूप में अपने घर भिक्षा लेने निमित्त आये देखकर वे स्त्रियां कुछ क्षण तक तो मेरे सामने टकटकी लगाकर देखने लगी। पर इतने ही में सेठ जी अन्दर आ गये और बोले कि अपने मंदिर की प्रतिष्ठा कराने के लिए जो यति जी महाराज आये हैं उनके साथ ये एक बड़े गुरांसां के चेले हैं। छोटी उम्र के हैं परन्तु पढ़े लिखे

अच्छे हैं। मंगलिक आदि अच्छी सुनाना जानते हैं। सुनकर सेठानी ने हाथ जोड़े मैंने भोली में से लकड़ी के दो तीन पात्र निकाल कर नीचे जमीन पर रख दिये। किसी कारणवश उस दिन उस घर में विशेष रूप से भोजन बना था। जिसमें मुख्यता खीर-पुड़ी की थी। कुछ सब्जियां चने आदि की दाल सी थी। सेठानी ने एक छोटे पात्र में खीर डाली, दूसरे पात्र में शाक-दाल डाले और तीसरे बड़े पात्र को पुड़ियों से भर दिया। हम उस उपाश्रय में तीन चार जन ही खाने वाले थे, जिनमें वहां के जो स्थानिक यति थे वे तो हमेशा की तरह बनियों के यहां से अपनी बंधी हुई रोटियां आदि ले आते थे। मैं अपनी भोली उठाकर अपने डेरे पर गया और ज्ञानचंद जी के सामने वह भिक्षा रख दी। ज्ञानचन्द जी उसे देखकर बोले कि किसन भैया तू तो बड़ा नसीबदार माखूम देता है। पहली ही दफे आज इस प्रकार गोचरी लेने गया और खीर तथा पुड़ियों से पात्र भर लाया। किसके यहाँ गोचरी गया था। वहां पास ही में बैठे हुए स्थानिक यतिजी ने कहा कि अमुक सेठजी इसको अपने घर ले गये थे। आज उनके यहां कोई शुभप्रसंग है इसलिए कई कुटुम्बी जनों को जीमने के लिए बुलाया है इसलिए उनके यहां खीर-पुड़ी बनाई गई है।

तीनों चारों जनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। स्थानिक यति जी जो गोचरी लाये थे उसका भी हमने कुछ हिस्सा लिया और मैं जो कुछ लाया था उसको भी सभी ने यथा योग्य बांट लिया।

धीरे २ उस प्रतिष्ठा महोत्सव की तैयारी होने लगी। ज्ञानचन्द जी उसके लिए आवश्यक सभी सामग्री बनियों से मंगवाने लगे। निश्चित तिथि के पांच सात दिन पहले ज्ञानचन्द जी ने अपने खास परिचित चार पांच और भी यतियों को बुला लिया। उनमें बानेण वाले धनचन्दजी भी एक थे। इन सब यतियों के भोजन की व्यवस्था स्वतन्त्र रूप से गांव के बनियों ने कर दी थी। फिर मेरा गोचरी के लिए जाना बन्द हो गया। परन्तु उसके पहले गांव के मुख्य २ ओसवालों के घर भिक्षा निमित्त मैंने देख लिए थे। और वहां पर चेला जी महाराज के नाम से

मैं प्रसिद्ध हो गया था। मन्दिर में जब प्रतिष्ठा की तैयारी होने लगी तब बहुत से स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे मन्दिर में दर्शन के लिए आते रहते थे। ज्ञानचन्दजी हारमोनियम पर स्तवन वगैरह घंटे दो घंटे रोज गाया करते थे। इससे लोगों का आकर्षण बना रहता था। मैं भी मन्दिर में देवताओं की मूर्ति की पूजा आदि किये करता था और जो कोई दर्शनार्थी आते थे उनको मांगलिक भी सुनाता रहता था। अन्य यतियों की तरह मैंने भी सादा यति वेष धारण कर लिया था।

प्रतिष्ठा की क्रिया विधि तथा योग्य रीति से निश्चित मुहूर्त में पूरी हुई। गांव के महाजनों ने उसके निमित्त जो कुछ भोजन समारम्भ आदि तय किये थे, वे सम्पन्न हुए। आसपास के हजार पांच सौ लोग भी वहाँ एकत्रित हुए। बाद में प्रतिष्ठा के कार्य में भाग लेने वाले यतियों को भी ज्ञानचन्द जी ने यथा योग्य दक्षिणा दिलाई। उनको खुद को कितने रुपये मिले इसका तो मुझे ठीक पता नहीं लगा, परन्तु चहर, शाल आदि कुछ विशेष रूप से उनको भेंट की गई। मुझे भी एक चहर, एक धोती मिली। और पांच रुपये नगद मिले। मेरे लिए ये नगद रुपये बड़ी अद्भुत वस्तु थी। क्योंकि इसके पहले जीवन में मुझे कभी किसी से नगद रुपया नहीं मिला था। इन पांच रुपयों की प्राप्ति का स्मरण मेरे मनमें एक विशिष्ट स्थान रख रहा है। सैकड़ों ही बार प्रसंग विशेषों पर मुझे इन पांच रुपयों का स्मरण होता रहा है। पर इन रुपयों को मंडप्या में जाकर मैंने ज्ञानचंद जी की पत्नी को दे दिये। जिससे वह बड़ी खुश हुई थी।

प्रतिष्ठा का कार्य इस प्रकार समाप्त होने पर हम लोग मंडप्या चले गये। ज्ञानचन्द जी भी बानेण गये। मैं फिर मंडप्या में ज्ञानचन्दजी के पास जैन धर्म का कल्पसूत्र जो खास करके पयूषणों के दिनों में जैन लोग सुना करते हैं, उसको थोड़ा २ बांचने का अभ्यास करने लगा। राजस्थानी, गुजराती मिश्रित भाषा में लिखी हुई एक पुरानी पोथी ज्ञानचन्द जी के पास थी, उसी को मैं पढ़ता रहता था ताकि वह ज्ञाने

वाले चोमासे में कहीं जाकर जैन लोगों को उसे सुना सकूँ । कुछ ही दिनों में मैंने उसे ठीक पढ़ लिया मैं गंगापुर से वापस मण्डप्या में आया तब मेरा वह पुराना भेष बदल गया था । ज्ञानचन्द जी की तरह ही मैं भी नंगा सिर रखता था और घर से बाहर निकलने पर बदन पर चद्दर डाल लेता था । टोपी और कुर्ते की अपेक्षा वह भेष मुझे अच्छा लगने लगा । पर उस भेष से लोग मुझे यति जी महाराज के चेले के रूप में पहचाना करते थे । यद्यपि मैं विधीवत् किसी यति का चेला नहीं बना था । मण्डप्या में रहते हुए मेरे पास खास कोई काम नहीं था । ज्ञानचन्द जी की खेती एक फसली ही होती थी । अतः गर्मियों के दिनों में कोई काम नहीं रहता था । उन्हीं दिनों रतलाम से ज्ञानचन्दजी के गुरू मण्डप्या में आये ।

वे किसानों वगैरह को कुछ रुपया पैसे के लेन-देन का काम किया करते थे । बदले में किसानों से गल्ला वसूल कर बनियों को बेच देते थे । एक दिन आकर उन्होंने ज्ञानचन्दजी से कहा कि अमुक जगह पांच सात आम के वृक्ष हैं । उन पर अच्छी केरियां लगी हुई हैं, किसी जागीरदार के वे पेड़ हैं । उसने उनको ठेकेपर दे देने को मुझसे कहा है और पचास, पचत्तर रुपये मांग रहा है । यदि उनको ठेके पर ले लिया जाय और अच्छी रखवाली की जाय तो उससे सौ, सवासौ रुपये मिल सकते हैं । उन्होंने कहा तुम इसका प्रबन्ध कर सको तो मैं रुपया दे जाऊँ ज्ञानचन्द जी ने कहा कि उन आमों की रखवाली कौन करे और उन केरियों को बेच बाच कर रुपया कौन वसूल करे । चूंकि यह जगह यहां से डेढ़ दो कोस दूर है और वहां केवल जंगल है, आसपास में वैसे कोई बस्ती भी नहीं है इसलिए वहां रखवाली करने को रहे भी कौन आदि ज्ञानचन्द जी के पिता ने मेरे सामने देखकर कहा कि वह किसनलाल रखवाली का काम सम्भाल ले तो यह सौदा बैठ सकता है । मैंने यूँ ही उत्साह में आकर कहा कि गुराँसा इन गर्मियों के दिनों में यहां और कोई काम नहीं है इसलिए मैं उस रखवाली का काम कर

सकूंगा। सुनकर ज्ञानचन्द जी तो कहने लगे कि नहीं २ हमको ऐसा कुछ नहीं करना है।

हमें क्या वैसी आवश्यकता पड़ी है, परन्तु उनके पिता का जो बहुत ही बनिया बुद्धि की वृत्ति रखने वाले थे बोले यदि किसनलाल की हिम्मत हो तो इसको वैसा करने देने में क्या हरकत है। पांच पचास रुपये सहज में मिल जायेंगे और पके आम भी खूब खाने का लाभ होगा। मैं उनकी बातें सुनकर कुछ उत्साहित हुआ और ज्ञानचंद जी, जिनको मैं दादा भाई के नाम से पुकारा करता था से कहा कि मुझे वह जगह देख लेने दो जहां पर वे आम के पेड़ खड़े हैं।

दूसरे दिन सवेरे ज्ञानचन्द जी के पिता मुझे वहां ले गये, मैंने देखा कि वहां पर एक अच्छा सा तालाब बना हुआ है जिसमें थोड़ा बहुत पानी भी भरा हुआ है। उसकी पाल से थोड़ी ही दूरी पर वे पांच सात पेड़ खड़े थे। उन पर काफी केरियां लगी हुई थी और अच्छी बड़ी किस्म की केरियां थी। वहां पर नजदीक में किसी का खेत या कुवा नहीं था। परन्तु एक आध फल्लंग की दूरी पर दो चार खेत थे। उनके पास ही तीन चार भीलों की भोंपड़ियां थी। मैंने उन यति जी से कहा कि यदि इन भोंपड़ियों वालों में से किसी को कुछ हिस्सा दे देने का तय कर लिया जाय तो उसको साथ में रखकर रखवाली का काम मैं कर लूंगा। यति जी ने फिर उन भोंपड़ियों में से किसी एक बृद्ध आदमी को बुलाया और कहा कि 'बासा' इन आमों के पेड़ों का हमने ठेका लिया है। और इनकी रखवाली हमारे ये भाई साहब वगैरह करेंगे। तुम अगर इनके साथ यहां रहोगे तो रोज के दो आने तुमको दिये जायेंगे और दो चार टोपलियां केरी भी मिल जायगी। सुनकर वह बृद्ध भी खूब राजी हो गया और बोला कि गुरांसा मैं इनकी चाकरी में पूरा हाजर रहूंगा और किसी को यहां ठुकने नहीं दूंगा। आदि बातें उससे तय करके उन यति जी ने आम के मालिक जागीरदार को जो देना कहा था उसे देकर उसकी लिखा पढ़ी कर ली। और ज्ञानचन्द जी को वह सब काम संभला गये। मैं दूसरे ही दिन सवेरे रोटी खाकर वहां जाने

लगा और सारा दिन उन आम के पेड़ों के नीचे बैठकर उनकी रखवाली करने लगा । साथ में मैं उस कल्प-सूत्र की पोथी को भी ले जाया करता था । जिसको बारम्बार पढ़ा करता था ।

वह पोथी कुछ पुरानी लिखी हुई थी । और शुद्ध राजस्थानी या गुजराती न होकर मिश्रित भाषा थी ऐसी पुरानी भाषा के ग्रन्थों को बालाव बोध कहते हैं । वह पोथी वैसी ही कल्प-सूत्र के बालाव बोध रूप थी । उसकी पुरानी लिपी और शब्दों को ठीक पढ़ लेने के लिए मैं वहाँ बैठा २ प्रयत्न करता रहता था जो शब्द मेरी समझ में नहीं आते थे उनको मैं ज्ञानचन्द जी से पूछता रहता था परन्तु उन शब्दों का ठीक परिचय तो उनको भी नहीं था । उनके पास कल्प-सूत्र की ऐसी दो तीन और भी पुरानी पोथियाँ थी, जिनको भी धीरे २ पढ़ने का मैंने अभ्यास चालू रखा । पांच सात दफ़े उनको ठीक २ पढ़ लेने से मेरी समझ में उसका अर्थ और सम्बन्ध ठीक-ठीक आने लग गया था । कोई दो महीने तक उन आम की रखवाली का मेरा काम बराबर चालू रहा । मैं रोज सुबह जल्दी उठकर घर से वहाँ पहुँच जाता था । खाने के लिए रोटियाँ ज्ञानचन्द जी की पत्नी रोज शाम को बना रखती थी । जिन्हें लेकर मैं चला जाता था और सारा दिन उन्हीं आम के पेड़ों के नीचे बैठा रहता था । बैसाख-जेठ की लू भी दिन में काफी चलती थी उससे बचने के लिए खाखरों के पत्तों की एक छोटी सी टपरी भी बना ली थी । बीच २ में उस बुडढ़े भील के बच्चे-बच्ची भी वहाँ आ जाया करते थे जिनको दो चार केरियाँ देकर मैं उनको खुश रखता था ।

कभी २ उस वृद्ध जन के परिवार के बच्चे भी वहाँ आ जाते थे । मैं अपनी रोटी में से एक दो रोटियाँ उन बच्चों को दे देता था । दिन भर खूब गरम लू चलती रहती थी उसके सबब से आम के पेड़ों से केरियाँ टूट २ कर नीचे गिरती रहती थी । उनमें से ५-१० केरियाँ उस वृद्ध जन और बच्चों को दे देता था । बाकी बची हुई को एक कपड़े में गठड़ी के रूप में बांधकर शाम को ज्ञानचन्द जी के घर पर ले आता

था। जेठ सुद ग्यारस अर्थात् निर्जला एकादशी के दिन दोपहर बाद खूब जोरों से आंधी चली। शाम होते २ बादल भी खूब उमड़ आये। मूसला धार वर्षा होने लगी और खूब ओले भी गिरने लगे। उन पेड़ों के नीचे मैं बैठा हुआ अपनी आत्म रक्षा का उपाय ना देखकर एक बहुत बड़ा आम का पेड़ था, उसके ऊपर चढ़कर उसकी मजबूत टहनियों के अन्दर अपने को छुपाकर बैठा रहा। आधे पौन घंटे के बाद वह तूफान शांत हुआ। पर वर्षा खूब हो जाने के कारण गांव में जाने का रास्ता बंद हो गया। रात भी पड़ गई और वर्षा रह-रहकर आती रही। आम के पेड़ पर से हजारों केरियां टूट २ कर नीचे गिर गई। उस तालाब की पाल के दूसरे किनारे पर छोटी सी पहाड़ी थी, जिस पर ५-७ छत्रियां बनी हुई थी। जो शायद गांव के ठाकुर के पूर्वजों की समाधी स्थान के रूप में थी। मैं रात बिताने की दृष्टि से उन छत्रियों के पास चला गया। एक अच्छी बड़ी सी छत्री थी, जिसका चोंतरा काफी ऊंचा था उसकी आड़ में मैं बैठ गया। इतने में वर्षा भी बन्द हो गई। बादल भी हट गये। आकाश में चाँद निकल आया। मैंने अपने कपड़े उतार कर उन्हें नीचोया और सुकाने की कोशिश की। आस पास में कोई भी मनुष्य नहीं था। बिल्कुल एकांत जंगल था, कुछ डर भी लगे ऐसी जगह थी यूं तो वह वृद्ध जन कहा करता था कि रात को इस तालाब में पानी पीने के लिए बघेरा आता रहता है इसलिए रात को अकेला, दुकेला कोई मनुष्य यहां नहीं रह सकता। उस वृद्ध की कही हुई बात भी मेरे मन में कुछ शंका उत्पन्न कर रही थी। परन्तु एक तो मैं उन छत्रियों के आश्रय में था और दूसरी बात यह थी कि खूब वर्षा हो जाने के कारण रात को बैसे जानवर के वहां आने की खास संभावना नहीं थी। पर सारी रात मैं जगता हुआ उसी तरह छत्री के एक कोने के पास बैठा रहा। उस दिन निर्जला एकादशी थी इसका स्मरण मुझे उन दूर वाली भोंपड़ियों में रहने वाले भील और मीणों की स्त्रियों से ज्ञात हुआ।। उन छत्रियों के पास एक छोटा सा महादेव जी का मन्दिर था जिसमें चार भुजा आदि देवताओं की भी मूर्तियां थी, जिनकी पूजा करने निमित्त रोज सुबह गांव से एक ब्राह्मण आया करता था उसने उस दिन उन भोंपड़ियों में रहने

वाली स्त्रियों को कहा कि आज निर्जला एकादशी है इसलिए ठाकुर जी को नारियल वगैरह कुछ चढ़ाना चाहिये, इसलिए वे स्त्रियां उस मन्दिर में दर्शन करने आईं और एक दो नारियल वगैरह चढ़ाये जिनको पुजारी ले गये यह दृश्य मैंने उन आम के पेड़ों की रखवाली करते हुए देखा था। अतः मुझे निर्जला एकादशी का उस दिन का वह दृश्य तथा दो बरस पहले उसी एकादशी के दिन मैंने अपने स्व. गुरु देवीहंस जी के साथ रूपाहेली से प्रयाण किया था और उस रात को रूपाहेली से रेल में सवार होकर चित्तौड़ के लिए रवाना हुए थे। उसकी अगली रात माँ के साथ सोते हुए किस तरह व्यतीत हुई थी उसका भी स्मरण मुझे हो आया।

सवेरा होने पर जल्दी उठकर मैं गांव में गया। ज्ञानचन्द जी कहीं बाहर गए हुये थे अतः उनकी स्त्री बोली कि मैं सारी रात तुम्हारी चिन्ता करती रही आंधी और तूफान के कारण गांव में भी कई लोगों के भोंपड़े आदि उड़ गए। भाड़ टूट पड़े। तुम्हारे दादा भाई बाहर गए हुये हैं अतः तुम्हारी तपास के लिए किसी को भोजना भी सम्भव नहीं हुआ इत्यादि। मैंने उससे कहा कि मैं तो रात को किसी तरह बच गया हूँ परन्तु जिन आम के पेड़ों की मैं रखवाली कर रहा था उन पर से हजारों केरियां टूटकर नीचे गिर गई हैं इसलिए उनको उठाकर लाने की तजबीज करनी है। फिर पास ही में एक गृहस्थ रहते थे और उनके पास गाड़ी बैल थे इसलिए हमने उनकी गाड़ी किराये कर वहां ले गए और उस वृद्ध जन तथा उसके परिवार के बच्चे और स्त्रियों ने मिलकर जमीन पर गिरे हुए सब आमों को इकट्ठे कर गाड़ी भर कर मकान पर लाये। आंधी के कारण इस प्रकार आम की केरियों के गिर पड़ने से काफी नुकसान हुआ। फिर शाम को यति ज्ञानचन्द जी भी वहां आ गये और उन गाड़ी भरी हुई केरियों को लोगों को देने करने की व्यवस्था की। ५-७ दिन के भीतर बची हुई केरियों को भी उतरवा ली गई और गांव में केरी बेचने वालों को बेच दी गई। उनका कितना रुपया आया उसका तो मुझे पता नहीं लगा परन्तु उस सौदे में नुकसान नहीं रहा इतना मुझे अवश्य ज्ञात हुआ। उन केरियों में से २-४ मन ज्ञानचन्द जी

ने अपने घर में भी पकाने की दृष्टि से रख ली थी, ज्यों २ पकती गई उनको परचुरण लोगों को बेच दी जाती रही। इनके बेचने का काम खुद मैं ही करता था। मैं एक टोकरी में केरियां भरकर सिर पर उठाकर गांव के ऐसे मोहल्लों में बेचने निकल जाता था जहां पर बच्चे तथा स्त्रियां पैसे दो पैसे की केरियां खरीदते रहते थे। इस प्रकार चार-छः घण्टे घूम फिर कर मैं उन केरियों को बेचता रहा और रोज के १०-२० पैसे कमाता रहा।

कोई १०-१५ दिन यह क्रम चला। केरियों की मौसम भी खतम हो गई। इधर आषाढ सुदी का पक्ष शुरू हो गया और वर्षा की मौसम भी आ गई। गांव के लोग अपने खेतों की बुवाई हंकाई आदि में लग गये। जैन लोगों के चातुर्मास बैठने के दिन नजदीक आ गये थे इसलिए ज्ञानचन्द जी यति अपने हमेशा के कार्यक्रम के मुताबिक कहीं चोमासे के २-३ महीने व्यतीत करने के लिए जैन लोगों से पत्र व्यवहार करने शुरू किये। ५-१० दिन में ही उनको २-३ गांवों से बुलावे के पत्र मिले। उन्होंने मुझसे कहा कि अबकी बार पर्युषणा करने के लिए मुझे कहीं गुजरात के गांव में जाने की इच्छा है। अगर किसी अच्छे गांव में रहने का मौका मिल गया तो मैं तुम्हको भी अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। इस विचार से उन्होंने अपनी जाने की तैयारी की। मैं भी उनकी इच्छानुसार उनके साथ जाने को तत्पर हो गया। ज्ञानचन्दजी किसी अच्छे मुहुर्त का दिन निकालकर मंडप्या से रवाना होकर नीमच गये। मैं भी उनके साथ था। नीमच से रेल में बैठकर हम लोग रतलाम गये जहां पर ज्ञानचन्दजी के पिता अथवा गुरु रहा करते थे। २-३ दिन रतलाम में ठहरकर गुजरात की सरहद पर आये हुए बारिया नामक गांव के लिए प्रस्थान किया। उस गांव में पहले भी ज्ञानचन्दजी ने एक दो पर्युषण पर्व किये थे। उस गांव वालों को उन्होंने पत्र लिखा था परन्तु उनका कोई जवाब नहीं मिला था। ज्ञानचन्दजी ने सोचा कि अब पर्युषणा के दिन नजदीक आ रहे हैं इसलिए वहां चले जायं और स्थान खाली होगा तो रह जायेंगे। इस विचार से हम दोनों बारिया के

लिए रवाना हुए। बारिया दाहोद के रेलवे स्टेशन से १२-१५ माइल दूर था। हम दाहोद स्टेशन पर उतरकर पैदल ही बारिया शाम तक पहुँचे। वहाँ के जैन पंच का जो मुखिया श्रावक था और जिससे ज्ञानचन्दजी की काफी जान पहचान थी उसके मकान पर पहुँचे। पहुँचने पर मालूम हुआ कि पर्यूषणा के लिए किसी अन्य यति का आना निश्चित हो गया है अतः वहाँ पर कोई जगह नहीं रही। वह रात हम उस श्रावक के मकान में रहे। सायंकाल का भोजन आदि हुआ। मैंने पहली ही दफे गुजरात के लोगों का पहरवेश देखा तथा खाना-पीना आदि का व्यवहार भी देखा। मेवाड़, मारवाड़ आदि के रहने वाले लोगों से गुजरात में रहने वाले लोगों का सामाजिक व्यवहार कुछ विशेष उदार और ममता भरा हुआ मालूम दिया। बारिया गांव एक जागीरी का ठिकाना होने से और गाँव अच्छा व्यापार का केन्द्र होने से गाँव के बाजार आदि में अच्छी चहल-पहल दिखाई दी। दूसरे दिन सवेरे उस श्रावक के यहाँ भोजन करके हम वहाँ से रवाना हुए। चलते वक्त उस श्रावक ने २-३ रुपये ज्ञानचन्दजी को भेंट किये और १ रुपया मुझे भी दिया। हम वहाँ से वापस रतलाम आये ज्ञानचन्दजी के गुरु ने कहा कि मालवे में अमुक २-३ गांव खाली हैं इसलिए उधर कहीं चले जाओ। किसन को भी किसी एक गाँव में बिठा देना। हम वहाँ से बड़नगर गये। जहाँ पर ज्ञानचन्दजी का रहना तय हो गया। वहाँ पर उनको मालूम हुआ कि बदनावर में अभी एक नया जैन मंदिर बन रहा है। वहाँ पर कोई यति का स्थान नहीं है। बदनावर के एक महाजन जो ज्ञानचन्द जी के जान-पहचान वाले थे, उनसे मिले, और कुछ बातचीत निकलने पर उस महाजन ने कहा कि हमारे यहाँ नया मंदिर बन रहा है और उसमें बिराजमान करने के लिए मूर्तियां भी हम ले आये हैं। पर्यूषणा के दिनों में मांगलिक तथा कल्प-सूत्र सुनाने के लिए इन चेलाजी को भेज दें तो वहाँ पर इनकी व्यवस्था हो जायगी। ज्ञानचंदजी ने मुझसे पूछा तो मैं उसके लिए तैयार हो गया।

दूसरे दिन मैं उस ओसवाल महाजन के साथ बदनावर जाने को निकला तो ज्ञानचन्दजी ने कहा कि तुम वहाँ पर मन्दिर में दर्शन करने जो भाई-बहिन आवें उनको मांगलिक सुनाते रहना । पर्यूषणा के दिनों में कल्प-सूत्र जो तुमने पढ़ लिया है उसको सुना देना । बीच में मैं कभी तुम्हारी खबर लेने के लिए आ जाऊंगा । जो महाजन तुमको ले जा रहा है, वह अच्छा भला आदमी है । इसलिए तुमको वहाँ किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी । और पर्यूषणा में दस-बीस रूपयों की प्राप्ति हो जायगी । पर्यूषणा बाद हम मिल लेंगे और आने पर तुम्हारी पढ़ाई आदि की बातें सोचेंगे ।

मैं फिर वहाँ से उस महाजन के साथ बदनावर चला गया । उस महाजन ने रास्ते में मुझसे कई बातें पूछी-ताछी, मैंने संक्षेप में स्व० यतिवर श्री देवीहँसजी का कुछ परिचय दिया । और बानेण में किस तरह ज्ञानचंदजी यति के साथ परिचय हुआ वह बताया ।

बदनावर में उस समय एक नया जैन मंदिर बन रहा था । उसका नीचे का काम प्रायः तैयार हो चुका था और ऊपर शिखर का काम बाकी था । उस मंदिर के पास ही एक पुराना मकान था, जिसमें मंदिर में विराजमान करने के लिए लाई गई तीन चार जिन मूर्तियां रखी हुई थी । उसी मकान में मुझे ठहरने को कहा । उस मकान से तीन चार मकान बाद उस महाजन का रहने का घर था । ज्ञानचंदजी ने उस महाजन से कह दिया था कि यह किसन भाई गोचरी नहीं करेगा । इसके पास पात्रा वगैरह नहीं हैं । इसके भोजन के लिए आप लोग पारी पारी से एक थाली में रोटियां और कुछ साग सब्जी रखकर इसके पास पहुँचा दिया करना ।

मैं जिस दिन बदनावर पहुँचा उस दिन तो शाम के वक्त उस महाजन ने अपने घर ले जाकर भोजन कराया । संध्या के समय मंदिर में पुजारी आरती करने आया तब उस महाजन ने पुजारी को भेजकर चार पांच मुख्य श्रावकों को बुलाया और वहीं बैठकर उनसे कहा कि

इन चेलाजी को मैं वड़नगर से ज्ञानचन्द्रजी यति को कहकर पर्युषणा के लिए यहां ले आया हूँ । अपने यहां इस वर्ष कोई यति जी नहीं हैं और मंदिर का काम भी पूरा करना है सो इस निमित्त से अपने को पर्युषणा में कल्प-सूत्र सुनने का मौका मिल जायगा इत्यादि । फिर उस महाजन ने मेरे भोजन के बारे में भी वैसे व्यवस्था बनाली, जिससे मेरे पास रोज एक घर से खाने का भोजन पहुँच जाया करे । परन्तु प्रारम्भ में दो चार दिन के लिए तो उस महाजन ने अपने ही घर पर भोजन करने के लिए इच्छा प्रकट की ।

तदनुसार मैं सुबह शाम नियत समय पर उनके यहाँ भोजन करने चला जाता था ।

वह श्रावक कुछ धार्मिक वृत्ति वाला था । पति-पत्नि दोनों ही मृदुल और स्नेही स्वभाव के थे । उनके कोई सन्तान नहीं थी । छोटा सा अपना व्यापार करते रहते थे । गाँव के महाजनों में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी । उनकी पत्नी अधिक कोमल स्वभाव की थी । मैं जब उनके यहां भोजन करने बैठता तब वह श्राविका बाई बहुत स्नेह के साथ मुझे भोजन खिलाने का प्रयत्न करती थी । यों मेरा भोजन बहुत स्वल्प रूप में होता था । मैं साधारणतया दो तीन रोटी ही खाने का अभ्यासी था जिसे देखकर वह बाई कुछ अधिक रोटी खाने का आग्रह किया करती थी । और कहती रहती थी कि भाई साहब आप कुछ संकोच कर रहे हैं और पूरा पेट भरकर भी रोटी नहीं खाते हैं सो क्या बात है इत्यादि । बीच २ में मुझसे मेरे कुटुम्ब या माता-पिता आदि के बारे में भी वह बड़ी जिज्ञासा के साथ पूछा करती थी । परन्तु मैं अपने बारे में कुछ अधिक जानकारी नहीं देना चाहता था । उस श्रावक-दम्पति का सौहार्द्र पूर्ण भाव जानकर मेरा मन भी वहाँ ठीक लगने लग गया ।

मैं उस मंदिर में अकेला ही रहता था । मेरे पास केवल एक छोटा सा पीतल का लोटा था जो पानी पीने आदि के सब काम में आता

था। बिछाने के लिए एक छोटी सी पुरानी दरी थी। पहनने के लिए मामूली लट्टे की दो धोती थी बदन पर पहनने का आधी बांह का मामूली कुर्ता था और ओढ़ने के लिए दो सादी मल मल की चदरें थी। बस यही मेरा उस समय वस्त्र का परिग्रह था। बारिया से जिस जैन गृहस्थ ने एक रुपय्या मुझे दिया था। वह मेरी अंटी में हमेशा सुरक्षित रहता था। सुबह जल्दी उठकर गांव के बाहर दूर शौच के लिए चला जाता था गांव के नजदीक एक छोटा सा नाला बहता था। जो उन दिनों में वर्षा के कारण पानी से भरा रहता था। मैं शौच से निवृत्त होकर उसी नाले में स्नान कर लेता था। शौच जाने की दृष्टि से मेरा जीवन भर एक ही बार निवृत्त होने का रहा है। नाले में स्नान करके मैं मन्दिर में आ जाता और फिर एक किनारे बैठकर “उत्सव हरम” आदि जो जैन स्मरण मुझे याद थे उनका पाठ कर लेता था। फिर जो पांच, सात भाई बहिन मन्दिर में दर्शन करने आते थे उनको मांगलिक सूत्र सुना दिया करता था। बाकी दिन के भाग में हिन्दी की छोटी छोटी स्कूली किताबें पढ़ता रहता था और उनको देख देख कर कागज पर अच्छे अक्षरों में नकल करने की कोशिश करता रहता था। स्कूली किताबों में छापे के बड़े बड़े अक्षरों को देखकर उन्हीं के जैसे गोल और सुडोल अक्षर लिखने का मैं अभ्यास किया करता था।

इस प्रकार मेरी पढ़ने की कुछ रुचि देखकर उस महाजन को ख्याल हुआ कि ये चेलाजी कुछ ठीक पढ़े हुए मालूम देते हैं। तब उसने एक दिन मुझसे पूछा कि क्या तुम कल्प-सूत्र पढ़ना जानते हो। तब मैंने कहा कि थोड़ा बहुत पढ़ लेता हूँ। तब उसने छपी हुई कल्प-सूत्र की एक पुस्तक मुझे लाकर दी। जो तीन थुई वाले सम्प्रदाय के प्रवर्तक राजेन्द्र सूरी द्वारा छपाई गई थी। उस गांव के ओसवाल शायद उसी सम्प्रदाय के मानने वाले थे। मैंने उस पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ना शुरू किया। क्योंकि इसके पहले मैंने मण्डप्या में उक्त रूप से कल्प-सूत्र की हाथ की लिखी हुई दो तीन पोथियाँ पढ़ लेने का ठीक

प्रयास किया था । अतः यह छपी हुई पुस्तक पढ़ने में मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम दी बल्कि उसके पढ़ने में मुझे बहुत रुचि उत्पन्न हुई ।

मैं दोपहर को दो घण्टे उसी महाजन के घर पर बैठकर उस कल्प-सूत्र के कुछ पन्ने उनको सुनाये करता था । उसके घर पर उसकी पत्नी के साथ और भी दो चार वृद्ध स्त्रियां वहाँ आकर बैठ जाती और उस पुस्तक का श्रवण किया करती । यह देखकर वह महाजन बहुत प्रसन्न रहता था । फिर एक दिन उसने मुझे पहनने के लिए नया धोती जोड़ा तथा कुर्ता और अंगोछा भी लाकर दिया । मैंने बड़े हर्ष के साथ उनको स्वीकार किया ।

□

(६)

जैन सम्प्रदाय के स्थानक वासी आम्नाय में दीक्षित होना

इन्हीं दिनों उस गांव के जैन भाईयों को समाचार मिले कि दिगठान गांव में एक जैन साधु महाराज ने ५२ दिन के उपवास किये हैं और उन उपवासों का अंतिम दिन अमुक है। उस अवसर पर आस पास के गांवों के सैकड़ों ही जैन भाई उन तपस्वी साधु महाराज के दर्शन करने निमित्त जाने वाले हैं और उनकी तपस्या के पारणा के दिन सैकड़ों ही श्रावक वहाँ उपस्थित रहेंगे इत्यादि। बदनावर के कई जैन भाई बहिन भी उस समय वहाँ जाने के लिए उत्सुक हुए। उनमें वह महाजन दम्पति भी थे। जिनके यहां मैं भोजन किया करता था। उन्होंने मुझसे भी कहा कि “चेलाजी महाराज, आप भी हमारे साथ दिगठान चलो” मैंने उसका आनन्द पूर्वक स्वागत किया क्योंकि इसके पहिले मैंने किसी जैन साधु को ठीक से देखा नहीं था, मैं जब बानेण में था तब दो तीन साधु १-२ दिन के लिए वहाँ फिरते हुए आये थे। परन्तु उनके सम्पर्क में मैं नहीं आया था। मैं उन लोगों के साथ दिगठान चला गया। हमारे वहाँ जाने के बाद दो तीन दिन पश्चात् उन तपस्वी साधु महाराज का पारणा हुआ उस समय आस पास के अनेक गांवों से जैन भाई बहिन एकत्रित हुए थे। तपस्वी जी महाराज जिन्होंने ५२ दिन के उपवास किए थे वे ही अपने साथ वाले साधुओं के गुरु थे। उनके साथ उस समय तीन और साधु थे जिनमें एक साधु छोटी उम्र के करीब मेरी ही अवस्था के थे उनके पिता भी उनके साथ ही दीक्षित हो गए थे। कोई एक १॥ साल पहिले ही उन पिता-पुत्र ने दीक्षा ली थी वे साधु महाराज

रोज एक घंटा भर धर्मोपदेश दिया करते थे जिसको आगंतुक सभी भाई बहिन श्रद्धा पूर्वक सुना करते थे । जैन समाज में प्रायः ऐसा रिवाज है कि ऐसे धार्मिक उत्सवों के दिनों में जो लोग साधु महाराज का व्याख्यान अर्थात् धर्मोपदेश सुनने के निमित्त आते हैं उनको कुछ मालदार ग्रहस्थों की तरफ से बादाम, बताशे, पेड़े, शक्कर के पुड़े, छुवारे आदि वस्तुयें भेंट स्वरूप दी जाती हैं । जिस दिन साधुजी महाराज की तपस्या का पारणा था उस दिन उनका धर्मोपदेश सुनने को आने वाले सभी जनों को कोई १०-१५ मालदार ग्रहस्थों की तरफ से उक्त प्रकार के पदार्थ भेंट दिए गए । जैन भाइयों में इसको प्रभावना कहते हैं । एक-दो ग्रहस्थों ने तो प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक नारियल भेंट दिया मैं भी उस व्याख्यान सभा में उपस्थित था इसलिए मुझे भी उक्त सभी वस्तुएँ भेंट स्वरूप मिलीं । इन वस्तुओं का क्या किया जाय इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं था मेरे जैसे अनेक लड़के व लड़कियाँ वहाँ उपस्थित थे उनको भी यह सब चीजें मिली सो उन्होंने तो जा जाकर अपने मात-पिता आदि को दे दीं । मेरे पास उनको रखने बांधने का ही कोई साधन नहीं था और मैं स्वयं बदनावर वाले उन दम्पति के साथ किसी एक अन्य परिवार के यहाँ ठहरा हुआ था । भोजन तो दिगठान वाले लोगों की तरफ से आने वाले सभी भाई बहिनों को दिया जाता था । मैं बड़े संकोच के साथ अपने उस तौलिये में प्रभावना स्वरूप मिली हुई सब चीजों को लेकर उस दम्पति के सामने रख दी और पूछा कि इनका क्या किया जाय ? तब उन्होंने कहा कि यह तो सब तुम्हारे खाने के लिए है इसलिए इनको संभालकर रखो और धीरे-धीरे इनका उपयोग करो । मैंने कहा मेरे पास तो इनके रखने की कोई चीज नहीं है तब उन्होंने एक बालटी लाकर मुझे दे दी और कहा कि इसमें रखलो । मैंने पूछा कि यहाँ से वापस बदनावर कब जाना होगा तो उन्होंने कहा कि पर्युषणा अब दो तीन दिन बाद ही शुरू होंगे अतः हमारा विचार तो पर्युषणा यहीं करने का है और इन तपस्वी महाराज की सेवा-भक्ति करना चाहते हैं तुम भी हमारे साथ यहीं रहो तुमको किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं होगी

और जिस घर में हम यहाँ ठहरे हुए हैं वे हमारे नजदीक के रिश्तेदार हैं इत्यादि। मेरे मन में भी उन साधु महाराज की तपस्या आदि की बातें जानकर कुछ कौतूहल और कुछ जिज्ञासा उत्पन्न हो रही थी अतः उन दम्पति युगल का यह प्रस्ताव मुझे और भी अधिक रुचिकर हो गया। २-३ दिन में, केवल तपस्वी जी ही के तपस्या के पारणा निमित्त आने वाले भाई-बहिन तो अपने-अपने स्थानों पर चले गए कुछ ५-१० ऐसे परिवार पर्युषणा-पर्व मनाने के लिए वहीं ठहर गए।

तपस्वी जी महाराज जिन्होंने ५२ दिन के उपवास किये थे। वे शरीर से कुछ (नाटे) ठींगने और वर्ण से ठीक श्याम थे। शरीर का गठन उनका मजबूत था उस समय कोई ४०-४५ वर्ष जितनी उम्र उनकी थी। रोज एक घंटा सुबह वे धर्मोपदेश दिया करते थे। ५२ दिन के उपवासों में भी उनका यह उपदेश-क्रम बराबर चालू रहता था। अंतिम दिन और पारणा वाले दिन भी उन्होंने वैसा ही उपदेश-क्रम जारी रखा। मुझे यह सब जानकर कुछ आश्चर्य और जिज्ञासा बढ़ी। इन साधुओं के जीवन क्रम के बारे में मुझे कोई विशेष परिचय नहीं था इसके पहिले मैंने सुखानन्द जी में खाखी बाबा शिवानन्द भैरव जी के पास शैव दीक्षा लेकर खाखी बाबा हो गया था, जिसका कि वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। और उन महंतजी के शिष्यों के जीवन क्रम का मुझे यथेष्ट कटु अनुभव हो चुका था परन्तु इन जैन साधुओं का जीवन क्रम मुझे और ही ढंग का लगा और मेरी जिज्ञासा उसके विषय में बढ़ने लगी। मैं समय-समय पर उन साधुओं के स्थानक में जाकर बैठे रहने लगा और उनकी सब प्रकार की दिनचर्या का ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करने लगा। मेरे साथ अक्सर वह बहिन भी आती रहती थी जिसके साथ मैं बदनावर से वहाँ पहुँचा था। एक दिन मैं और वह बहिन तथा जिस कुटुम्ब के साथ हम दिगठान में ठहरे हुए थे उसकी मुखिया बहिन भी साथ थी। इन दो तीन दिनों के बीच में मेरे विषय में बदनावर वाली बहिन और दिगठान वाली बहिन के बीच भी कुछ बातचीत होती

रही उनकी यह जिज्ञासा बढ़ रही थी कि मैं कौन हूँ—कहाँ का हूँ—और कहाँ रहता हूँ इत्यादि—पर मेरी तरफ से उनको कोई स्पष्ट जवाब नहीं मिलता था अतः उनके दिल में कई प्रकार की शंकाएँ भी शायद उठती रहती थी मेरा स्वभाव यूँ साधारणतया मिलनसार है, मैं कहीं भी किसी के साथ ठीक ठीक मिलकर रहने का आदि हो गया था और बोलचाल में भी मेरा व्यवहार लोगों को अच्छा लगता था शरीर से भी मैं ठीक ही था । किसी प्रकार की चंचलता या अविवेक का उपयोग मैं नहीं करना चाहता था । हाँ, तो मैं उस दिन उन दो बहिनों के साथ साधु महाराज के स्थानक में गया तो सबसे पहिले तो उन्होंने उस बदनावर वाली बहिन के आगे-पीछे के समाचार पूछे क्योंकि वे साधु महाराज उस बहिन के परिवार से परिचित थे । बाद में उन्होंने मेरे विषय में पूछा कि यह भाई कौन है ? शायद उन्होंने सोचा होगा कि मैं भी कोई उस बहिन का रिश्तेदार होऊँगा तब उस बहिन ने मेरे बदनावर आने संबंधी और यतिजी आदि के बारे में बात कही । यह सुनकर साधु महाराज के मन में कोई और ही प्रकार का भाव जागृत हुआ जिसकी कल्पना मुझे उनके चेहरे आदि से भास होने लगी । भाई ने मेरे विषय में कहा कि यह लड़का बहुत सुशील और समझदार है यद्यपि यह अपनी सही-सही बात हमको नहीं बताता है परन्तु हमको कोई विशेष परिस्थिति में कहीं से किसी बड़े ठिकाने से चला आया मालूम देता है इत्यादि प्रकार की कई बातें उस बहिन ने अपनी ओर लें बढ़ा-चढ़ाकर कहीं और वह बारम्बार मेरे मुख के सामने देखती जाती और पूछती जाती कि क्यों भाई मैं ठीक कह रही हूँ न ? जिसका कोई जवाब मेरे पास सिवाय मौन रहने के नहीं था । फिर साधु महाराज ने मुझसे पूछा कि क्या भाई तुम कुछ पढ़े हो यतिजी के साथ रहने से कुछ धर्म का कोई ज्ञान तो जरूर प्राप्त किया होगा इत्यादि । मैंने कहा महाराज कुछ पढ़ा तो नहीं हूँ मेरे एक परम गुरु के समान और मेरे कुटुम्ब के पास हितैषी वृद्ध यतिजी महाराज से अक्षर बोध जरूर प्राप्त किया और जैन धर्म के कुछ स्तुति-स्तोत्र

जरूर याद किए हैं इत्यादि । मेरी बात सुनकर साधु महाराज ने पूछा कि “भाई, कौन से स्तुति-स्तोत्र तुम्हें याद हैं ? तो मैंने उनको बतलाया कि उवसग्गहर स्तोत्र, नमिभ्रूण स्तोत्र, भक्तामर स्तोत्र, आदि मैंने सीखे थे । तब वे बोले अच्छा किसी स्तोत्र की कुछ गाथाएँ बोलो तो मेरे मुंह से सहसा सबसे पहिले संसार वावानल बाह नीरं इस स्तुति का पाठ निकल गया परन्तु उन साधु जी महाराज को इस स्तुति का कोई ज्ञान नहीं था यह स्तुति किस की बनाई हुई है और कहाँ बोली जाती है इससे वे सर्वथा अपरिचित थे । उनको सुनकर आश्चर्य हुआ बात यह थी कि यह स्तुति स्थानक वासी जैन सम्प्रदाय में ज्ञात नहीं है यह स्तुति जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक सम्प्रदाय में प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं के समय पढ़ी जाती है । मुझे यह स्तुति सबसे पहले अपने वृद्ध परम गुरु ने सिखाई थी और वे रोज मुझसे इसका पाठ कराया करते थे तबसे लेकर यह स्तुति मुझे प्रिय लग रही है । और आज भी मैं इसका उसी तरह यथा समय पाठ किया करता हूँ । मुझे उस समय अनुभव हुआ कि उन साधु महाराज के सूत्र उच्चारण आदि की अपेक्षा मेरे उच्चारण उनको अधिक अच्छे लगे और मुझसे कहने लगे कि अभी तो यह हमारी श्राविका यहीं रहने वाली है और इसके साथ तुम भी यहीं रहने वाले हो, सो यहाँ हमारे पास बैठा उठा करो और कुछ पढ़ते भी रहो । उनके पास मेरी ही समान उम्र का एक बाल साधु था जो सामने बैठा हुआ कुछ सूत्र-पाठ पढ़ रहा था उसको दिखाकर मुझे कहा कि ‘देखो, यह साधु तुम्हारी ही उम्र का है और अच्छी तरह पढ़ने में इसका चित्त लगा रहता है तुम भी आबो और इसके पास बैठकर यह जो पढ़ता है इत्यादि बातें पूछते रहो । इसके बाद मैं प्रायः सारा दिन उस स्थानक में ही बैठा रहता और जो-जो भाई-बहिन लड़के लड़कियाँ आदि वहाँ पर आया करते थे, उनके साथ मेरा परिचय भी होता रहा ।

इस तरह कोई १२-१५ दिन दिगठान में बीत गए । पयुष्षणा के बाद वह महाजन-दम्पति अपने गाँव बदनावर जाने को तैयार हुए और

मुझसे कहने लगे कि हम तो अभी अपने गाँव जा रहे हैं परन्तु थोड़े दिनों बाद वापस हम यहाँ आवेंगे तब तक तुम यहीं आनन्द से रहो। उनकी यह बात मुझे ठीक ही लगी क्योंकि इतने दिनों के परिचय से मेरा मन स्वयं वहाँ ठहरने का और उन साधु महाराज से अधिक सम्पर्क साधने का हो रहा था। उस दिगठान गाँव के भी कई भाई बहिन मेरे परिचित हो गए थे और उनका भी उन्हीं की तरह मुझ पर स्नेह भाव बढ़ रहा था। मैं धीरे धीरे साधु महाराज के पास अधिक रहने लगा और रात को भी उसी स्थानक के बगल में एक छोटा सा मकान था वहीं अपना निवास करता रहा। साथ में कुछ दो-चार और भी भाई-बहिन वहाँ आ जाते और ताश वगैरह खेलने का कार्यक्रम चला करता उन साधु महाराज के पास जो बाल दीक्षित साधु था वह उस समय दशवैकालिक सूत्र का मूल पाठ याद किया करता था। मुझे भी कहा गया कि तुम भी इसके साथ बैठकर यह सूत्र पाठ याद किया करो परन्तु मैंने अनुभव किया कि उस बाल साधु का कोई भाषा विषयक ज्ञान नहीं था वह हिन्दी भी पढ़ा नहीं था। दीक्षा लेने के बाद ही उसने अक्षर-बोध प्राप्त किया और तदनंतर, जैसा कि स्थानक वासी जैन संप्रदाय में प्रचलित है प्रथम प्राकृत मूल सूत्रपाठ ही पढ़ाना शुरू कराया जाता है। मैंने इसके पहिले कुछ हिन्दी भाषा सीख ली थी और छोटी बड़ी कहानियाँ आदि की पुस्तकें भी पढ़ी थी और गुरु महाराज ने मुझे शब्द उच्चारण की ठीक प्रारम्भिक शिक्षा भी दे दी थी और जब मैं उक्त रूप में खाखी बाबा का चेला बन गया था तब सारस्वत व्याकरण, अमरकोष आदि के भी कुछ पाठ सीख लिए थे। इससे मेरा पढ़ना और बोलना कुछ ठीक था। मुझे तपस्वीजी महाराज ने कहा कि तुम दशवैकालिक सूत्र के प्रथम दो तीन अध्ययन को कंठस्थ करो। मैंने वे अध्ययन दो दिन में ही कंठस्थ कर लिए जिनको वह बालक दीक्षित साधु कई दिन से सीख रहा था यह देखकर साधुजी महाराज को यह आभास हुआ कि मेरी पढ़ने की शक्ति भी कुछ ठीक तेज है। इत्यादि।

यूँ, वहाँ रहते उन साधु महाराज का तथा अन्य भाई बहिनों का परिचय ज्यों बढ़ता गया त्यों मेरे मन में यह भावना जागृत हुई कि क्यों न मैं भी इन साधुओं की जीवनचर्या का अनुसरण करूँ और इसी तरह का जैन साधु बन जाऊँ। वे साधु और उनके भक्त भाई बहिन भी मुझे इस बात की प्रेरणा करने लगे और कहने लगे कि यदि मैं इस छोटी उम्र में दीक्षा ले लेता हूँ तो भविष्य में मैं अच्छा पढ़ा विद्वान बन सकूँगा और हजारों लोगों का पूज्य बन सकूँगा। कुछ दिन बाद यति ज्ञानचन्दजी जिन्होंने मुझे बड़ नगर से बदनावर भेज दिया था मुझे लेने के लिए बदनावर आए और उस महाजन युगल से मेरे विषय में पूछ-ताछ की। वहाँ से वे फिर दिगठान आए और मुझसे मिले तथा कहने लगे कि चलो अब हम वापस मेवाड़ चलें। मैंने कहा मैं तो अभी यहीं रहना चाहता हूँ और इन साधु महाराज के पास कुछ पढ़ना चाहता हूँ।

ज्ञानचंदजी को जब मेरा यह विचार मालूम हुआ कि मैं इन स्थानक वासी सम्प्रदाय के जैन साधु जी का शिष्य बन जाना चाहता हूँ तब उनने इस संप्रदाय के बारे में बहुत सी बातें मुझे कहीं। वे कहने लगे कि हम यति लोग इस संप्रदाय के विरोधी हैं। क्योंकि ये लोग जैन धर्म का सबसे अधिक मुख्य अंग जो मंदिर बनवाना उनमें तीर्थंकर भगवान की मूर्तियाँ विराजित कर उनकी पूजा, प्रतिष्ठा आदि करना तथा उसके निमित्त अनेक उत्सव आदि मनाना उसके ये बड़े विरोधी हैं। ये लोग न मंदिरों में जाते हैं न कोई वैसा उत्सव मनाते हैं और ना ही शत्रुंजय, गिरनार, आबू, केसरिया नाथ जी आदि तीर्थों की यात्रा करते हैं। इन लोगों के आचार विचार भी हम लोगों से बहुत भिन्न हैं। ये न कभी स्नान करते हैं, न हाथ मुँह आदि धोते हैं, कपड़े भी हमेशा मैले और गंदे रखते हैं। मुँह पर कपड़े की पट्टी बांधे रहते हैं। इत्यादि कई प्रकार की इनकी ऐसी बातें जो तुमको पसन्द नहीं आयेगी। तुम्हारी विद्या पढ़ने की जो बहुत इच्छा है वह इनके पास रहने से कभी सफल नहीं होगी। ये लोग हमारे जो पुराने शास्त्र हैं उनको बिलकुल नहीं पढ़ते। अपने यतियों में कई ऐसे बड़े २ ठिकाने हैं और उनके मालिक

बड़े २ विद्वान हैं । अभी तुमने उन यातियों के कोई बड़े ठिकाने नहीं देखे हैं । और ना ही शत्रुजय आदि तीर्थों की यात्रा ही की है । इन तीर्थ स्थानों में तथा अहमदाबाद आदि शहरों में सैकड़ों मंदिर हैं, अनेक पाठशालाएँ हैं जहाँ यतियों के शिष्य भी पढ़ते रहते हैं । बड़े २ मालदार जैनी लोक हैं जो तीर्थयात्रा के लिए सैकड़ों हजारों आदमियों को साथ लेकर संघ निकालते हैं, उनमें अच्छे २ विद्वान यतियों को बुलाते हैं । श्री पूज्यों को भी बुलाते हैं और बड़े ठाठ से उनकी पधरामणी आदि करते हैं सैकड़ों रुपये तथा शाल-दुशाले आदि उनको भेंट करते हैं । तुम्हारे बारे में तो मैं ऐसे किसी बड़े ठिकाने वाले यति जी के वहाँ रखवाकर तुमको अच्छी तरह विद्याभ्यास करने की व्यवस्था करवा देना चाहता हूँ । यहाँ से हम अभी रतलाम चलें और फिर वहाँ से आगे का ऐसा कोई कार्यक्रम बनावें । मेरी इच्छा एक दफे तुमको शत्रुजय तीर्थ की यात्रा भी करा देने की हो रही है । फिर वहाँ से अहमदाबाद शहर चलेंगे । जहाँ कई बड़े २ श्रावकों के उपाश्रय हैं वहाँ कई अच्छे यति भी रहते हैं । इसी तरह इन्दौर में भी एक यति जी का बहुत बड़ा उपाश्रय तथा जागीरी का ठिकाना है वहाँ पर कई यतियों के शिष्य आदि रहते हैं । जिनकी पढ़ाई का प्रबन्ध उस ठिकाने की ओर से होता है । रतलाम जाकर एक दफे अपन इन्दौर भी चलें ।

इन साधुजी के पास दीक्षा लेने से तुम्हारा कोई विशेष भला न होगा । यति पने में रहने से तुम अच्छी विद्या भी पढ़ सकोगे और वैद्य करने वाले किसी अच्छे नामी यतिजी के पास रहकर तुम वैद्यक का ज्ञान अच्छा प्राप्त कर लोगे तो तुम हजारों रुपये भविष्य में कमा सकोगे । जैसे तुम्हारे स्व० गुरु देवीहँसजी महाराज का बड़ा नाम था और बड़े २ जागीरदार सेठ साहूकार आदि उनके भक्त थे वैसे ही नाम तुम भी कमा सकोगे । इस सम्प्रदाय का साधु बन जाने से तुम्हारे जीवन का कुछ भी विकास नहीं होगा । ये लोग हमेशा पैदल चलते हैं अपना सामान आप उठाते हैं । ६-६ महिनो में सिर के केश अपने हाथ से उखाड़ते हैं । केवल कुछ ही जैन सूत्रों को पढ़ते रहते हैं और

ढाल, चौपाई आदि भाषा के ग्रन्थों को गा गाकर लोगों को सुनाते रहते हैं। संस्कृत भाषा के ग्रन्थ ये बिलकुल नहीं पढ़ते। इनका घूमना फिरना उन्हीं स्थानों में होता है जहां इनको मानने वाले श्रावक लोग होते हैं। ये न कहीं सभाओं उत्सवों आदि में जाते हैं, और ना ही कोई इनको बुलाते हैं। ये केवल कुछ उपवास वगैरह की तपस्याएं करते रहते हैं जिसके कारण चौमासे में बहुत से और गांवों के लोग भी इनके दर्शन वंदन आदि करने आते रहते हैं इत्यादि।

ज्ञानचन्द जी दो तीन दिन दिगठान रहे और मुंभसे इस प्रकार की बहुत सी बातें करते रहे। परन्तु मेरा मन उस समय ऐसे किसी साधु संत के पास रहकर अपना जीवन विरक्ता रूप में बिताने की ओर खिचता जाता था। मैंने पिछले दो तीन वर्ष यतियों और खाखी बाबों के साथ रहकर जो अनुभव किये उससे मेरे मन में एक प्रकार की विरक्ती ही हो गई। और इन नये साधु महाराज के पास निरंतर बैठे रहने से और उनके द्वारा संसार की असारता तथा कुटुम्ब परिवार की मिथ्या ममता आदि की बातें सुन कर मेरे मानसिक संस्कार वैसे बनने लगे। अपने पिता के परिवार की भी विषम घटनाओं का स्मरण कर मेरा मन एक प्रकार से जीवन से उदार सा भी होता रहता था। इसलिए मैंने सोचा कि इन साधुओं के जैसा विरक्त जीवन व्यतीत करने से भविष्य में कुछ कल्याण ही होगा। इसलिए ज्ञानचन्दजी की कही हुई उक्त प्रकार की बातों से मेरा मन आकृष्ट नहीं हुआ कुछ और भी बातें उन्होंने कही-सुनी पर जब मेरा निश्चय उनको मालूम हुआ तो वे फिर कभी आकर मिलने की बात कहते हुए अपने गांव की तरफ चले गए। मैं दिगठान में उक्त प्रकार से अपना समय बिताता रहा और आखिर मन में यह निश्चय किया कि मैं इन साधु महाराज के पास दीक्षा ले लूँ।

मेरा यह विचार उन साधुजी महाराज द्वारा वहाँ के महाजनों को ज्ञात हुआ तो उन्होंने “शुभ्रय शीघ्रम्” इस न्याय को सोचते हुए तुरन्त ही मेरे दीक्षा महोत्सव की तैयारी सोचने लगे। कई अच्छे परिवार मेरा

उत्साह बढ़ाने की दृष्टि से मुझे बधाइयाँ भी देने लगे रोज अन्य अन्य घर वाले मुझे भोजन के लिए बड़े भाव के साथ आमंत्रित करने लगे । जिस कुटुम्ब के यहाँ हम पहले पहल ठहरे थे उस कुटुम्ब की एक मुकन्या जो बहुत ही रूपवान, चतुर और स्नेहाद्रि भाव वाली थी वह तो मुझे अपने सगे भाई की तरह मानने और पुकारने लगी । एक अन्य परिवार था जिनके कोई संतान नहीं थी उस परिवार की मुखिया बहन मुझे अपना पुत्र जैसा समझकर वैसा ही वात्सल्य भाव दिखाने लगी । एक ऐसा भी परिवार था जो ठीक मालदार था परन्तु कोई संतान नहीं थी उसके दिल में यह भाव आने लगा कि अगर यह लड़का किसी ओसवाल का पुत्र हो तो हम अपने गोद रख लें क्योंकि मैं वास्तव में किस जाति का और किसका पुत्र हूँ इसका किसी को भी सही पता नहीं लग रहा था । वह परिवार बारम्बार मुझे भोजन के लिए आमंत्रित करता रहता था परन्तु मेरा मन कुछ और ही चाहता था । मुझे ऐसी बातें सुनकर एक प्रकार से कभी कभी वह अंतविषाद हो जाता था जो मुझे अपनी माता के स्मरण के कारण उमड़ जाता था ।

उक्त प्रकार से मेरा दीक्षित हो जाने का जब निर्णय हो गया तो महाजनों ने गांव के दो-चार ज्योतिषियों को बुलाकर मुहूर्त निकलवाया ज्योतिषियों ने आश्विन शुक्ला १३ का दिन निश्चित किया और तदनुसार दिगठान के जैन भाइयों ने दीक्षा महोत्सव की तैयारी कर आयोजन करना शुरू किया । गांव के भाइयों ने दीक्षा-महोत्सव खूब ठाट से मनाया जाय उसके लिए चन्दा वगैरह करना भी शुरू किया और आसपास के गांवों में उस महोत्सव पर आने के लिए निमंत्रण पत्रिकाएँ भी भेजनी शुरू कीं । कोई दस, बारह दिन पहिले से इस महोत्सव का प्रारम्भ किया गया । रोज मुझे अच्छे अच्छे कपड़े पहनाकर घोड़े पर बैठकर तासा, ढोल वगैरह बाजों के पास एक एक घर पर भोजन के लिए बुलाया जाता था । मेरे साथ पांच-दस लड़के लड़कियाँ भी भोजन के लिए आते और ठाट से भोजन कराया जाता । पान इलायची आदि खिलाए जाते । यह रस्म ठीक उसी तरह मनाई जा रही थी जिस तरह

मालवा मेवाड़ आदि में अच्छे सम्पन्न महाजनों में किसी लड़के का विवाह उत्सव जब शुरू होता है तब लड़के के नजदीकी रिश्तेदार उसको अपने घर बुलाते हैं। और जिसको विनोला कहते हैं। ठीक उसी तरह मेरे ये रोज विनोले निकला करते थे।

विजयादशमी के दिन उत्सव का बड़ा आयोजन किया गया। धार, शहर से जो कि दिगठान का मुख्य राज्य-स्थान था, राज्य का मुख्य हाथी मंगाया गया तथा सरकारी बैंड भी बुलाया गया। ३ दिन तक हाथी की सवारी और (हाथी की सवारी पर) सरकारी बैंड के साथ रात को जुलुस निकलता और सारे गांव में घूमता। आस-पास के गांवों से कोई २-३ हजार जैन भाई-बहिन भी वहां पहुंच गए थे।

इस बीच में एक १५ वर्षीय लड़के को जो जाति से ब्राह्मण बताया जाता है “क्योंकि मैंने सामान्यतः अपने को उस समय एक अनाथ ब्राह्मण के लड़के के रूप में ही प्रकट किया था, उसको जैन साधु अपना चेला बना रहे हैं यह वहाँ के ब्राह्मण वर्ग को कुछ अखरा। यह ब्राह्मण वर्ग दिगठान की जागीरदारी से सम्बन्ध रखता था वहाँ के सरकारी अधिकारी मुख्यतः उसी वर्ग के थे जो मंडलोई कहलाते हैं। और जैन सम्प्रदाय के साथ ब्राह्मण वर्ग का कुछ मनोविरोध रहता ही चला आया है इसलिए उन्होंने मेरी दीक्षा के बारे में भी कुछ आपत्ति उठानी चाही। मुझे उन्होंने एक दिन अपनी कचहरी में भी बुलाया और मुझसे अपने कुटुम्ब आदि के विषय में जानकारी चाही तथा मैं क्यों जैन साधु होना चाहता हूँ इस बारे में भी कई सवालादि पूछे परन्तु उनको मेरे विषय में कोई खास जानकारी न मिली, जानने का कोई साधन भी न ज्ञात हुआ तथा मेरे विचारों से भी उनको कोई आपत्ति खड़ी करने जैसी बात न मिली तो वे इस विषय में चुप हो गए।

आश्विन शुक्ला १३ के दिन दोपहर को १२ बजे गाँव से सारे लवाजमे के साथ और हजारों लोगों के उत्सुकता के साथ दीक्षा का जुलुस निकला, जो गाँव में होता हुआ मांडवगढ़ तरफ जाने वाली सड़क

के रास्ते गांव से आधा मील दूर एक बगीची के पास पहुँचा।* इस बगीची में बहुत से आम के वृक्ष थे उनमें से एक बड़े दरख्त के नीचे लम्बी चौड़ी जाजम बिछा दी गई उसके पास एक लकड़ी का पट्टा रख दिया गया जिस पर साधु महाराज आकर विराजमान हुए मैं हाथी पर सवार था सो बगीची में पहुँचकर नीचे उतरा एक दूसरे बड़े आम के दरख्त के नीचे बैसी ही जाजम बिछाई गई जिस पर बड़ी गद्दी और तकिये आदि रखे गए मुझे पहले उस गद्दी पर बिठाया गया और उस प्रसंग पर आने वाले सैकड़ों भाई बहनों ने आ आकर एक एक रूपया अपने हाथ में लेकर न्योछावर करके वह रूपया मेरे सामने रखी इस प्रकार उस वक्त कोई ५००-७०० रु. इकट्ठे हुए जिनको गरीबों में बांटने के लिए मुखिया श्रावक को दे दिए गए। बाद में मुझे जो बहु-मूल्य (एक राजकुंवर को शोभित) वैसे कपड़े आदि पहनाए गए थे वे उतारे गए। नाई को बुलाकर सिर्फ दस-बीस चोटी के बाल छोड़कर मेरा मस्तक मुंडवाया गया। फिर स्नान हुआ और बाद में जैन साधु भेष के सब कपड़े मुझे पहनाये गए। यह कपड़े कैसे पहनने चाहिए इसका अभ्यास मुझे पहले ही से करा दिया गया था अतः मैंने स्वयं उन सब कपड़ों को यथा योग्य रीति से पहन ओढ़कर मुंह पर पट्टी बांध हाथ में लम्बी डंडी वाला रजोहरण लेकर धीरे धीरे उत्साह और आनन्द के साथ चलता हुआ साधु महाराज के सामने जाकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और वह सूत्र पुकारने लगा जिसमें साधु व्रत दिए जाने का कथन होता है।

साधुजी महाराज ने कुछ पाठ पढ़े और मेरे सिर पर जो चोटी की जगह दस-बीस बाल थे उनको अपने हाथों से उखाड़ कर पास में खड़े हुए श्रावकों के मुखिया को दे दिए। मैंने सामायिक-सूत्र का तीन बार

*इस समय मेरे पास हाथी के हौदे पर ताँबे के पैसों की दो बड़ी-बड़ी थैलियां रखी गई थीं जिनमें से मुट्ठी भर-भर कर मैं रास्ते में दोनों तरफ पैसे उछालता जाता था। ठीक तो याद नहीं परन्तु एक एक थैली पक्के मन वचन के पैसों से भरी हुई होगी।

बार पाठ पढ़ा और फिर उन साधु महाराज को तीन बार घुटने टेक कर नमस्कार किया। बाजे बजे और आए हुए लोगों ने जय-जयकार की ध्वनि की और मेरा दीक्षा-ग्रहण का कार्य सम्पन्न हुआ। आए हुए सब लोगों को जैन समाज की ओर से एक एक नारियल और मुट्ठी भर बतासे बाँटे गए। ४ बजे यह उत्सव पूर्ण हुआ और सब लोग अपने अपने स्थान पर चल निकले क्योंकि जैन साधु आचार का नियम है कि नवदीक्षित को उसी दिन अपने धर्म स्थानक में जाकर नहीं रहना चाहिए इसलिए वह रात दीक्षा देने वाले साधुजी के साथ उसी बगीचे में बने हुए एक छप्पर के नीचे बिताई और दूसरे दिन सवेरे आठ बजे अपने धार्मिक स्थानक में दाखिल हुए।

यह जैन दीक्षा मैंने वि. सं. १९५९ के आश्विन मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन ली थी। इस दिन से मेरे जीवन चक्र ने एक और ही प्रकार के मार्ग में भ्रमण करना शुरू किया। मेरे जीवन में इस दिन एक नया मोड़ प्रारम्भ हुआ। बहुत वर्षों बाद भी इसी आश्विन शुक्ल त्रयोदशी के दिन जीवन का एक और नया मोड़ शुरू हुआ, इसलिए यह आश्विन शुक्ल त्रयोदशी की तिथि मेरे जीवन में एक विशिष्ट स्थान रखती है। वह दूसरा मोड़ कब और कैसे शुरू हुआ इसका वर्णन यथास्थान किया जायगा।

रूपाहेली के स्वर्गवासी वृद्ध ठाकुर साहब श्री चतुरसिंह जी राठौड़ के कुछ पत्र

इस जीवन कथा के चौथे प्रकरण में रूपाहेली के स्वर्गवासी ठाकुर साहब श्री चतुरसिंह जी का वर्णन आया है, मेरे स्वर्गीय पिता वृद्धि सिंह जी का इन ठाकुर साहब के साथ किस तरह और कैसा सम्बन्ध था, इसका भी कुछ परिचय वहाँ पर दिया गया है।

सन् १९२२ में मैं जब अपनी स्वर्गीया माता की खोज निकालने गया, तब इन ठाकुर साहब से जो मेरा विशिष्ट परिचय हुआ, उसका भी कुछ वर्णन वहाँ पर दिया गया है।

उसके बाद समय समय पर ठाकुर साहब से पत्र व्यवहार होता रहा इनमें के कुछ पत्र मेरे पास रखे हुये मिले हैं, वे यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

सन् १९२२ के बाद कोई १८ वर्ष तक पुनः मेरा रूपाहेली जाना न हुआ, सन् १९३० में मैं जर्मनी की यात्रा से वापस भारत में लौट आया तब इच्छा हुई थी कि रूपाहेली जाऊँ और अपनी जन्म भूमि के निवासी-बन्धुओं से मिलूँ। जर्मनी से जब मैंने अपने देश लौटने का विचार किया था तब मन में एक ऐसा भी खयाल था कि अपनी जन्म भूमि में कोई छोटा-मोटा बाल शिक्षा केन्द्र बनाने का प्रयत्न करूँ।

जर्मनी में मुझे एक ऐसी बहन का विशेष परिचय हो गया था जो चाहती थी कि, वह भारत में मेरे साथ आकर कहीं कोई छोटे बच्चों की शिक्षा का कार्य हाथ में ले।

उस दृष्टि से भारत में आने पर रूपाहेली में यदि वैसा कोई बाल शिक्षा केन्द्र स्थापित करने की संभावना है या नहीं? सो जानने की इच्छा से मैंने रूपाहेली जाने की सोची थी और उस विषय में ठाकुर साहब को किञ्चित् संकेत भी किया था, परन्तु भारत में आने के बाद तत्काल ही महात्मा गांधीजी से मुलाकात हुई और लाहौर की कांग्रेस में स्व-राज्य प्राप्ति के निश्चय का जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और तदनुसार महात्मा जी ने जब देश के सम्मुख नमक सत्याग्रह का अद्भुत आन्दोलन चलाने का कार्यक्रम उपस्थित किया, तब मैं भी उस आन्दोलन में शामिल हो गया और अन्यान्य हजारों देश बन्धुओं के साथ मैं भी अंग्रेजी शासन के कारागार का आनन्द लेने चला गया।

उसके बाद जेल में से निकलने पर गुरुदेव रवीन्द्र नाथ के आमंत्रण से उनके स्थापित विश्व विख्यात विद्या केन्द्र, “शान्ति निकेतन” के “विश्व भारती” नामक विद्या पीठ में चला गया।

कोई तीन चार वर्ष तक “शान्ति निकेतन” में साहित्यिक और शैक्षणिक कार्य में व्यस्त रहने से रूपाहेली जाने का उक्त मनोरथ सफल नहीं हुआ।

सन् १९३९ में उदयपुर में सर्व प्रथम “राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन” का विशिष्ट अधिवेशन हुआ, तब उसके अध्यक्ष के रूप में मेरा उदयपुर आना हुआ। उस अधिवेशन में ठाकुर साहब स्वयं उपस्थित होना चाहते थे, परन्तु शारीरिक अस्वस्थता के कारण जब उनको वहाँ आना संभव नहीं लगा तो उन्होंने अपने एक पौत्र श्रीमान् रघुवीर सिंह जी को अपने प्रतिनिधि के रूप में वहाँ भेजा और मुझे उदयपुर से लौटते हुये रूपाहेली आने का आग्रह पूर्वक आमंत्रण दिया।

तदनुसार मैं उदयपुर सम्मेलन से लौटता हुआ, अपने साथी कुछ भाई बहिनों के साथ रूपाहेली एक दिन ठहरा और ठाकुर साहब से अच्छी

तरह मिलना हुआ । उन दिनों ठाकुर साहब काफी वृद्ध हो चुके थे और शरीर भी उनका बहुत थका हुआ था ।

उसके बाद सन् १९४२ में उनका स्वर्गवास हो गया ।

ठाकुर साहब चतुर सिंह जी एक बड़े सज्जन और साधु चरित पुरुष थे वे बहुत ही सदाचारी और विद्यानुरागी थे । राजस्थान के अनेक विद्वानों के साथ उनका घनिष्ठ परिचय रहा । इतिहास विषय पर उनकी बहुत अधिक रुचि थी और इस विषय की पुस्तकें आदि वे सदा पढ़ते रहते थे ।

मेरा जो विशेष सम्बन्ध उनसे रहा और मुझ पर जो उनका विशिष्ट अनुराग रहा वह भी मुख्य करके इस इतिहास विषयक रुचि का ही परिणाम था । मेरी लिखी हुई पुस्तकें पढ़कर उनकी यह रुचि बढ़ी थी, उनकी इस रुचि का आभास उनके लिखे गये इन पत्रों में से मिलता है ।

पत्रांक १

रूपाहेली (मेवाड़)

ता: २५-२-१९२३

श्रीमान परम पूज्य भारत भूषण मुनिराज जिन विजया चार्य जी के चरण कमलों में—

अशशंतत्रास्तु आपका कृपा पत्र तथा तीन पुस्तकें और (बीरबर) कल्ला का उपन्यास मिला, उसकी पहुँच उसी समय लिखता, परन्तु कुछ तो मेरे कनिष्ठ पुत्र के कुछ रोग हो गया था और मुख्य कारण यह कि आपकी प्रदान की हुई पुस्तकों को पढ़कर उसका धन्यवाद भी साथ ही अर्पण करूँ । इसी कारण विलम्ब हुआ सो क्षमा करें ।

आपकी प्रदान की हुई तीनों पुस्तकें साद्यन्त पढ़ ली हैं । अब गुजंर अक्षर और भाषा का ज्ञान भी मुझको ठीक हो गया है । केवल कोई-कोई अपरिचित शब्द समझने में कठिनाई पड़ती है ।

आर्य विद्या व्याख्यान माला की पुस्तक तथा त्रैमासिक पत्रिका पुरातत्त्व में एक से एक बढ़कर विद्वानों के ऐतिहासिक निबन्ध हैं, विशेष कर चाणक्य योग दर्शन, प्राकृत भाषा अने साहित्य, तलाजानो प्राचीन बिहार, कोटिल्यनु अर्थशास्त्र, माठर वृत्ति को समय, महाकवि श्री पाल आदि निबन्ध सर्वोत्तम और चित्ताकर्षक पुरातत्त्व सम्बंधी नवीन आविष्कार है—सबसे बढ़कर आपका व्याख्यान पुरातत्त्व तो पूर्व इतिहास अत्यन्त हृदयग्राही है—अंग्रेजी भाषा तो मैं पढ़ा नहीं कदाचित्त उक्त भाषा की पुस्तकों में होगा परन्तु हिन्दी भाषा में तो रमेशचन्द्र कृत भारतीय प्राचीन सभ्यता का इतिहास और पंडित गौरीशंकर जी ओझा आदि विद्वानों ने उक्त विषय पर अपनी अपनी पुस्तकों में लिखा है उनको देखा, परन्तु आपके व्याख्यान की समानता नहीं कर सकते । मेरे पास काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका का ऐतिहासिक त्रैमासिक अंक भी आता है परन्तु आपका त्रैमासिक पुरातत्त्व उससे अनेक अंशों में बढ़कर है । अतः मैं ग्राहक होता हूँ सो कृपा कर मेरा नाम ग्राहक श्रेणी में लिखवा दें । और क्रमशः भेजने की कृपा करें । परन्तु बी. पी भेजना चाहिये अब मैं बिना मूल्य स्वीकार किये अंक नहीं लूंगा, क्योंकि ऐसी देशोपकारी संस्था की आर्थिक सेवा करना तो दूर रहा उल्टी आर्थिक हानि पहुँचाना हमारे लिये कलंक और घोर पाप है ।

आज भाई पनेसिंह जी आये, आपका कृपा पत्र दिया तथा यह भी कहा कि कुछ समय पश्चात् आप महोदय की पुनः इस भूमि को पावन करने की इच्छा है । अतएव पुनः दर्शन मिलने की उत्कंठा से बड़ा आनन्द हुआ । परम् पिता जगदीश्वर शीघ्र आपका दर्शन करावे ।

आपकी और हमारी इस जन्मभूमि में एक पाठशाला बनाने की जो आपकी पवित्र इच्छा है । इसलिये निवेदन है कि यहाँ पर जितनी भूमि है । वह सब आपकी ही समझे । आप आज्ञा करेंगे उसी जगह स्कूल बना दिया जावेगा, दूसरा एक निवेदन यह भी है कि क्षत्रिय महासभा

राजस्थान के उपदेश से एक स्कूल क्षत्रिय बालकों के पढ़ाने के निमित्त यहाँ रूपाहेली में स्थापित करने का विचार किया गया है और स्कूल का मकान भी हमारे ठिकाने की तरफ से बनवा दिया गया है। जो पूर्ण होने ही वाला है इसके अतिरिक्त एक सहस्र रुपया भी उनके निर्वाह के लिये हमारी ओर से दिया गया है तो भी धन की फिर भी आवश्यकता है। इसलिए निवेदन है कि यह स्थान आपकी जन्म भूमि है और आपका पवित्र शरीर भी इसी क्षत्रिय वर्ण में उत्पन्न हुआ था। अतः आप उचित समझें तो इस जातीय स्कूल में भी सहायता देकर मातृभूमि की सेवा करने में यशस्वी हो सकते हैं। और अनेक क्षत्रिय बालक पढ़कर विद्वान होते रहेंगे और आपको आजन्म आशीर्वाद अर्पण करते रहेंगे। हमारा भी निवेदन यही है कि इस जन्म भूमि के जिस वर्ण में आपका अवतरण हुआ है। उसी वर्ण के स्कूल को सहायता मिले तो अत्युत्तम है।

यदि सर्व साधारण के बालकों के निमित्त प्रथक् ही स्कूल बनवाने की इच्छा हो तो वैसा भी हो सकता है। उपर्युक्त दोनों बातों में जो आप उचित समझें वैसा ही हम सहर्ष करने को प्रस्तुत हैं। उचित उत्तर से अनुग्रहित करें।

वि. सं. १९७९ फाल्गुन शु. १०

अब गुर्जर भाषा तथा अक्षरों का कुछ ज्ञान होने से गुजराती — ऐतिहासिक पुस्तकें भी कुछ काल में मंगवाऊँगा, सो वी. पी. से भेजने की कृपा करें।

विनीत उत्तराभिलाषी

ठा. चतुरसिंह वर्मा

रूपाहेली, मेवाड़।

पत्रांक २

रूपाहेली (मेवाड़)

ता: १४-२-१९३०

परम पूज्य, महा माननीय
श्रीमान मुनि जिनविजय जी
महाराज की पुनीत सेवा में सादर प्रणाम

अत्रशम् तत्रास्तु-कृपा पत्र श्रीमानों का ता: ११-२-३० का आज ही मिला। अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई। विशेषतः युरोप की सुदूर यात्रा सकुशल करके लौटने से हुई। आपने जब युरोप को प्रस्थान किया था, उन दिनों में ही समाचार-पत्रों द्वारा हमको ज्ञात हो गया था क्योंकि आपके समान प्रसिद्ध विज्ञ पुरुषों की विदेश यात्रा छुपी नहीं रह सकती। इस यात्रा से ज्ञान वृद्धि के साथ अनेक प्रकार के विद्वानों का सम्मिलन तथा बहुत से दर्शनीय पदार्थों का अवलोकन का भ्रवसर प्राप्त हुआ ही होगा।

आगामी मास में हम लोगों को दर्शन प्रदान करने और राजपूताने में भ्रमण की इच्छा प्रकट की, इस बात से हम लोगों को असीम आनन्द हुआ है। कृपया शुभागमन की निश्चित तिथि की सूचना लिखावें। मेरे लिये आपने पिता तुल्य शब्द का प्रयोग अनुचित किया है। मैं तो आपका तुच्छ सेवक और शिष्य हूँ। राजपूताने का और क्षत्रिय जाति का तथा इस आपकी जन्म भूमि का विशेष उपकार आपके हाथ से होने की पूर्ण आशा है।

आपने कई पुरातत्त्व संबन्धी ग्रंथ प्रकाशित किये हैं, उनकी एक एक प्रति इस सेवक को प्रदान करने के लिये साथ लावें तो बड़ी कृपा होगी। क्योंकि मेरे को ऐतिहासिक पुस्तकों को देखने की बड़ी अभिलाषा रहा करती है।

आपकी दया से यहां सर्व प्रकार आनन्द है 'मेयो कालेज, अजमेर'

का जुबली उत्सव ता: ७-८ मार्च को वाइसराय द्वारा सम्पन्न होगा । कई नरेश भी आवेंगे । पुराने सब छात्रों को भी बुलाया है । मैं जीवित छात्रों में सबसे पुराना हूँ, इसलिए अधिक आग्रह से मुझको भी बुलाया है स्वास्थ्य ठीक रहा तो जाना होगा । अतः निवेदन है कि उक्त तारीख से कुछ दिनों पहले अथवा पश्चात् आपका शुभागमन हो तो उत्तम होगा ।

हमारे चारों पुत्र और इस ग्राम के परिचित निवासी आपके चरण कमलों में सादर प्रणाम करते हैं वह स्वीकृत हों । शेष कुशल—मेरे योग्य सेवा लिखावें ।

वि. सं. १९८६ फाल्गुन कृ. १

भवदीय दर्शनाभिलाषी
ठाकुर चतुरसिंह वर्मा
रूपाहेली (मेवाड़)

पत्रांक ३

बड़ी रूपाहेली (मेवाड़)

ता: ४-१-४० ईस्वी

“ओउम् उद्गीन प्रणवर्चति:

श्री मत्परम् पूज्य, विविध विद्या विचार वाचस्पति, पुरावृत्तज्ञपयो-
विधि—श्री मान गुरुदेव

मुनि महाराज श्री श्री जिनविजय जी के पुनीत चरणाम्बुजों में
सादर कर बद्ध सविनय प्रणाम

अत्रशमत्त्रास्तु—बहुत वर्षों के पश्चात् आपके हस्ताक्षरी पत्र ता: २२-१२-३९ ई. के अलभ्य दर्शन हुये हैं । इसको साद्यन्त अवलोकन करके अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई और स्वयं आपके चरण सरोजों के पुनीत दर्शन हों, उतना आनन्द मिला । आपके पवित्र पत्र का उत्तर देने में इस कारण विलम्ब हुआ है कि शीतकाल में सर्दी लग जाने से तीव्र

ज्वर हो गया था। दस दिन उपरान्त स्वास्थ्य ठीक हुआ। मेरा अस्सी (८०) वर्ष का वृद्ध शरीर है और ६६ वर्षों से इस ठिकाना रूपाहेली का अधिकारी माना जाता हूँ अतः अनुमान है और पूर्ण आशा है कि उत्तर लिखने के इस विलम्ब को क्षमा प्रदान करेंगे। इस वृद्ध शरीर को मंदाग्नि हो जाने से २४ वर्षों से सात्विक लघु भोजन अर्थात् ३) रूपयों भर तंदुल मुद्गयूष में मिलाकर ग्रहण करता हूँ। और ऊपर से ४०) ६० भर गौ दुग्ध पीता हूँ। बस यही मेरा प्रातः और संध्या का भोजन है। और कुछ भी ग्रहण नहीं करता बस यही दिनचर्या है। उक्त क्रिया से शरीर स्वास्थ्य सम्पन्न बना रहता है। अब आगे आपके कृपा पत्र का संक्षिप्त रूप से उत्तर निवेदन किया जाता है।

पहले आप अहमदाबाद में पुरातत्व मंदिर का निर्माण करके वहां पर अधिक विराजते थे तब तो परस्पर पत्र व्यवहार होता ही था। फिर समाचार पत्रों आदि से विदित हुआ कि आप योरोप आदि देशों में यात्रार्थ पधार गये हैं। बहुत काल उपरान्त जब आप पीछे पधारे तो काँग्रेस में सम्मिलित होकर देश सेवा में लग गये। और भिन्न भिन्न स्थानों में भ्रमण करने से आपका स्थायी पता भी नहीं मिलता था।

इन कारणों से पत्र व्यवहार बन्द हो गया था। अब आप भारतीय विद्या भवन “बम्बई” में अधिक विराजते हैं तो अब मैं उक्त पते पर कभी कभी निवेदन पत्र भेंट करता रहूँगा। एक साग्रह निवेदन है कि आप अनेक प्रकार के देशोपकारी कार्यों में लगे रहते हैं परन्तु कभी अवकाश प्राप्त करके दो दिन के लिये अवश्य पधारें, और इस वृद्ध शरीर को अन्तिम दर्शन प्रदान करें तो बड़ी बात होवे और आप अपनी जन्म भूमि को भी दर्शन देकर उसका भी गौरव बढ़ावें क्योंकि, आपके समान महापुरुषों के जन्म लेने से इस भूमि का महत्व बढ़ गया है। फिर आपके शुभागमन से इस भूमि का गौरव बहुत बढ़ जावेगा। यद्यपि यह वृद्ध मनुष्य आयु में आप से अधिक बड़ा अवश्य है परन्तु विद्या बुद्धि, अनेक शास्त्रों का ज्ञान, इतिहास संशोधन, ईश्वर चिन्तन

आदि अनेक प्रकार की विद्याओं तथा गुणों की तुलना में आपसे मेरी लघुता सहस्रत्रांश से भी न्यून है। इसलिये आप हमारे परम् पूज्य गुरुदेव हैं।

चार पाँच वर्ष पहले उदयपुर आपका पधारना हुआ और तीन चार मास पर्यन्त वहाँ पर बिराजे थे। उसी समय प्राचीन स्थानों के निरीक्षण के निमित्त मेरा भी चित्तौड़ जाना अवश्य हुआ था परन्तु आपके पधारने का मुझको संकेत भी नहीं था। यदि आपका एक भी पत्र मिल जाता तो दर्शनार्थ उदयपुर अवश्य आता। अथवा रूपाहेली स्टेशन पर ही आपके चरण स्पर्श करता परन्तु ईश्वरेच्छा बलवान है। आगे आपने पत्र में लिखा है कि “गुजरात के जैन भण्डारों में अपार ऐतिहासिक सामग्री दबी पड़ी है। उसको शोध कर प्रकाश में ला रहा हूँ। बहुत से लेख, व्याख्यान, निबन्ध और हमारी रची हुई अनेक पुस्तकें आदि प्रकाशनों को तुमने देखा ही होगा। उक्त समस्त पुस्तकों में एक संस्कृत प्रशस्ति छपी हुई है। जिसमें हमारी जन्मभूमि रूपाहेली आदि का वर्णन है। वह तुमने देखा ही होगा आदि आदि” इस पर निवेदन है कि बम्बई गुजरात आदि का साहित्य और समाचार पत्र हमारे यहाँ नहीं आते हैं। हमारे ठिकाने में केवल देहली, आगरा, अजमेर तथा उदयपुर के ही दैनिक और साप्ताहिक पत्र प्रायः आते हैं, इनके अतिरिक्त “काशी नागरी प्रचारिणी त्रैमासिक पत्रिका” उसके उत्पत्ति काल से ही आती है। जिसका मैं आजीवन सदस्य हूँ। हमारे आने वाले पत्रों में कभी कभी आपके व्याख्यान तथा पुरावृत्त शोध संबन्धि महान् प्रशंसा आ जाती है। परन्तु हमारे दुर्भाग्य से आपकी रचि हुई कोई भी पुस्तक आज पर्यन्त देखने में नहीं आई और न ही उक्त संस्कृत प्रशस्ति को ही देखा। इसलिये साग्रह निवेदन है कि आपकी रचि हुई 2-3 ऐतिहासिक पुस्तकें जिनको आप भेजना उचित समझें उनकी एक एक प्रति श्री. पी. द्वारा शीघ्र भेजने की कृपा करें। यदि कोई ग्रंथ गुजराती में होगा तो वह भी अवश्य पढ़ लिया जायगा

परन्तु अपरिचित गुजराती शब्द कहीं कहीं पर समझ में नहीं आता है । हिन्दी भाषा की पुस्तकें हो तो बहुत उत्तम होगा । उक्त पुस्तकों के साथ स्वरचित ग्रंथों की सूची हो तो वह भी अवश्य भेजें यथावकाश वह भी अवश्य भेजवाता रहूँगा । भारतीय विद्या ग्रंथावली की सूची तो इसी त्रैमासिक पत्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर छपी हुई है । उसकी आवश्यकता नहीं । आप बम्बई गुजरात आदि जैन भण्डारों की शोध कर रहे हैं जो आपका इस अमूल्य निधि के लिये भागीरथ प्रयत्न है । इसी प्रकार पूज्यवर ओभाजी के कथानानुसार बीकानेर और जैसलमेर के जैन भण्डारों में भी अपार पुरातन साहित्य भरा पड़ा है । जिसको जैन मता-वलम्बी के अतिरिक्त किसी को दिखाते भी नहीं हैं । कभी उक्त भण्डारों का निरीक्षण करना चाहिये । मेरा इतिहास प्रेम जब कि मैं 18 वर्ष की अवस्था में मेयो कोलेज अजमेर में पढ़ता था हो गया जो दिन दिन बढ़ता गया । और राजस्थान तथा अन्य प्रान्तों के बीसों प्रकाण्ड सुप्रसिद्ध पुरावृत्तवेत्ताओं से पूर्ण मैत्री हो गई थी अर्थात् स्व. काशी प्रसाद जी जायसवाल (पटना) बाबू हीरालाल जी, अनेक विरुद्ध प्राप्त पूज्य वर पं. गौरी शंकर जी ओभा, हरविलास जी शारदा, (अजमेर) स्व. मुंशी देवी प्रसाद जी, पं. विश्वेश्वर नाथ जी रेऊ, पं. रामकरण जी आसोपा, जगदीश सिंह जी गहलोत (जोधपुर), रामनारायण जी दूधड़ आदि आदि इन महानुभावों में से 5-6 विद्वान तो पूज्य ओभा जी, मुंशी देवी प्रसाद जी, जगदीश सिंह गहलोत आदि तो कई बार रूपाहेली भी आते रहे हैं और पत्र व्यवहार होता रहा । मेरी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार काशी ना. प्र. पत्रिका सरस्वती, माधुरी, आदि पत्रिकाओं में कई ऐतिहासिक लेख, निबन्ध आदि भी प्रकाशित कराये हैं । हमारे संग्रह में लगभग 150 ऐतिहासिक ग्रंथ होंगे ।

आपने भारतीय विद्या नामक पत्रिका का प्रथम अङ्क प्रदान किया । उसको साद्यन्त 2-3 बार पढ़ा । इसकी प्रशंसा कहाँ तक निवेदन की जावें । आपके तीन लेख हिन्दी के और दो गुजराती में हैं । उक्त पाँचों

निबन्धों को तो सर्वोत्तम कहना चाहिये । उनको बार २ पढ़ने पर भी तृप्ति नहीं होती है । उक्त लेखों की समालोचना तो कोई प्रकाण्ड पण्डित और असाधारण इतिहास मर्मज्ञ ही कर सकता है ।

हमारे समान अल्पज्ञों की तो यही बड़ी बात होगी की उक्त निबन्धों के आशय को पूर्ण रूप से समझ लिया जाय । आप तो भारतवर्ष के महान् विद्वानों में अग्रणी है । और संसार भर के ऐतिहासिक विद्वान आपके पुनीत नाम से परिचित है । फिर भी अपनी जन्मभूमि रूपाहेली के साथ मेरा तुच्छ नाम भी आपने भूमण्डल के साक्षर विद्वानों में प्रसिद्ध कर दिया । अतःएव आपके चरणाम्बुजों में कोटिशः धन्यवाद अर्पण किये जाते हैं । आपके अपूर्व निम्बन्धों में सम्पादकीय अग्र वचन, जिसमें अमृत शब्द की श्रुतिशास्त्र सम्मत असाधारण विवेचन है । राज-स्थान की समालोचना और चामुण्ड राज चौलुक्यनु ताम्र पत्र (गुजराती) में आदि लेख सर्वोत्तम है । विस्तार भय से अधिक नहीं लिख सकता । इसी प्रकार हेमचन्द्राचार्य की प्रमाण मीमांसा भी उत्तमनिम्बन्ध है क्योंकि इस छोटे से लेख में अनेक प्रकार के दर्शन शास्त्रों का परिचय मिल जाता है । इसी प्रकार चामुण्ड राज के ताम्र पट का विवेचन भिन्न-भिन्न प्रकार से आपने बड़ी योग्यता से किया है । और गुप्त संवत् अने विक्रम संवत् संबन्धी नवीन समस्या भी अपूर्व है । परन्तु हमारी तुच्छ बुद्धि के विचार से ऐसा लगता है कि ताम्र लेख निर्माता ने भूल या प्रमाद से विक्रम संवत् के स्थान में शक संवत् का नाम 17 वें पद्य में रख दिया होगा । क्योंकि इस एक प्रमाण द्वारा उक्त दोनों संवत्तों का अनेक प्रमाणों से निश्चित किये हुये, काल क्रम में किस प्रकार परिवर्तन हो सकता है । तथापि पुरावृत्त वेत्ताओं के विवाद करने की सामग्री इस लेख में अवश्य है ।

मेरे चार पुत्र थे जिनमें से जेष्ठ पुत्र कुँवर लक्ष्मण सिंह और उससे कनिष्ठ गजसिंह दोनों क्रमशः 57 और 46 वर्ष की अवस्था में परलोक

वासी हो गये हैं। यह भयानक आघात मेरे वृद्ध शरीर पर बड़ा ही विकट हुआ। परन्तु जगदीश्वर की महान् बलवान इच्छा पर किसी का वश नहीं चलता है। यों तो मेरे चार पुत्र और तीन पुत्रियों की संतति अर्थात् पुत्र-पुत्रियाँ पौत्र, पौत्रीयाँ, दोहित्र, दोहित्रीयाँ, प्रदोहित्र, प्रदोहित्रीयाँ आदि मिलाकर 60 से अधिक विद्यमान होगा। परन्तु दोनों पुत्रों का संताप असह्य था तथापि संसार का ऐसा ही अचल नियम है। अब पत्र के अन्त में उपर्युक्त दोनों निवेदनों का पुनः स्मरण दिलाया जाता है। अर्थात् एक तो मेरे जीवन काल में आपकी जन्मभूमि में अवश्य भव पधारिये और द्वितीय आपकी रची हुई अनेक पुस्तकों में से 2-3 उत्तम ऐतिहासिक ग्रंथ तत्काल ही भेज देने की कृपा करें साथ ही कृपा पत्र भी प्रदान करावें। वर्तमान वर्ष में हमारे मेदपाट देश तथा प्रायः समग्र राजस्थान में महा दुःभिक्ष का भयानक प्रकोप है। अधिकतर ग्राम निर्जन पड़े हैं। विदेशों में गरीब जनता व पशु चले गये। वि. सं. 1956 के समान ही यह 96 का साल बड़ी हानि पहुँचावेगा। ईश्वरेच्छाबलियसि इत्यलम्।

(विशेष टिप्पणी)

मेरे योग्य सेवा कार्य सदा लिखाते रहे। यह निवेदन पत्र स्वयं मैंने हाथों से लिखा है। यद्यपि वृद्धावस्था से मन्द दृष्टि आदि के उपरांत वर्तमान तीव्र ज्वर की निर्वलता से यह पत्र दो दिन में पूर्ण हुआ है। परन्तु आपके समान गुरुवर्य की दया से उत्साहित होकर किसी लेखक की सहायता नहीं ली गई है। इसलिये निवेदन पत्र में कोई त्रुटि रह गई हो तो कृपया क्षमा प्रदान करें और उत्तर भी लिखावें। वि. सं. 1996 पोष कृष्णा 10 गुरे। ता: 4 जनवरी, सन् 1940 ईस्वी।

भवदीय चरणसरोरुहों का विनित सेवक एवं उत्तराभिलाशी
 क्षत्रिय राष्ट्रकूट कुलोद्भव ठाकुर चतुरसिंह वर्मा राज०
 रूपाहेली, मेवाड़ (राजपूताना) पो. आ. रूपाहेली खुद
 और बी. बी. एण्ड सी. आई-रेल्वे स्टेशन।

पत्रांक ४

ता: ५-१-१९४०

आपको हमारा वंश परिचय पूर्ण रूप से नहीं होगा, इसलिये अत्यन्त संक्षिप्त रूप से नीचे लिखा जाता है ।

जोधपुर राजधानी के निर्माता राव जोधाजी राठोड़ के 14 राज-कुमार थे । उनमें से चौथे कुमार दूदाजी व छठे बीकाजी बड़े बलवान थे । दूदा जी ने मेड़ता विजय कर स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया, और बीका जी ने बीकानेर । फिर दूदा जी के राव बीरमदेव जी और उनके जेष्ठ पुत्र भारत प्रसिद्ध राव जयमल्ल जी मेड़ता राज्य के स्वामी हुये । जयमल्ल जी के पिता चित्तौड़ प्रसिद्ध राणा सांगा जी की भगिनी ब्याहे थे और मेड़ता नरेश जयमल्ल जी की जेष्ठ बहिन जगत्प्रसिद्ध श्रीमती मीराँ बाई को महाराणा सांगा जी के मुख्य युवराज भोजराज जी को ब्याही थी । इसलिये संबन्धों के कारण मेड़ता नरेश मेवाड़ के समस्त संग्रामों में सहायता देते रहे । जब सम्राट अकबर ने विक्रम संवत् 1624 में चित्तौड़ पर विशाल सेना से चढ़ाई की तब महाराणा उदयसिंह जी ने तो सकुटुम्ब विकट पर्वतों का आश्रय लिया और मेड़ता नरेश राव जयमल्ल को चित्तौड़ दुर्ग का मुख्य सेनापति और अपना प्रतिनिधि बना गये । अकबर के अनेक प्रलोभन देने पर भी दुर्ग नहीं सौंपा । अन्त में सवा छः मास घोर समर करके हजारों वीरों सहित गढ़ के द्वार खोलकर सैकड़ों राज महिलाओं को चित्ता में भस्म करके हजारों शत्रुओं को मारकर के वीर गति प्राप्त की । उक्त वृत्तान्त आपने अनेक इतिहासों में देखा ही होगा । उनकी असाधारण वीरता और स्वदेश भक्ति आदि पर मोहित होकर मुगल सम्राट ने आगरा दुर्ग के मुख्य द्वार पर राव जयमल्ल व राव पत्ता की गजारूढ़ वीर प्रतिमाएँ स्थापित की । फिर शाहजहां ने दिल्ली दुर्ग बनाकर राजधानी बनाई तो वही वीर मूर्तियाँ यत्न से मंगवाकर देहली के राज द्वार पर लगाई । उसका अनुकरण करके नेपाल, माँण्डू, बीकानेर आदि कई राज्यों ने उक्त वीरों की गजा-

रुढ़ प्रतिमायें राज द्वार पर लगवायी जो आज भी दृष्टि गोचर होती है। परन्तु देहली की मूर्तियाँ धर्म द्वेशी आलमगीर ने 102 वर्ष पश्चात् तुड़वा दी।

राव जयमल राठौड़ के वंशज सैकड़ों सामान्त ठिकाने मारवाड़, मेवाड़ आदि देशों में फैले हुये हैं। उनमें से एक रूपाहेली भी 50 सहस्र आय का है। भगवती मीराँ बाई के कनीष्ठ भ्राता राव जयमल्ल का 11 वां वंशज स्वयं मैं हूँ। अनेक सामन्त ठिकानों में 16-18 20 तक जयमल से पीढ़ीयाँ हो चुकी है परन्तु हमारे ठिकाने में अधिक जीवनी शक्ति के कारण 11 पुस्त ही हुये हैं। क्योंकि हमारे पुर्वजों की औसत 34-35 वर्षों की आती है। जो ऐतिहासिक नियमों से भी बहुत अधिक है। श्रीमती मीराँ बाई जैसी सुप्रसिद्ध ईश्वर भक्त महिला और वीर शिरोमणी इतिहास प्रसिद्ध राव जयमल्ल के समान पुरुष से उनके वंशज सहस्रों में मेड़ता राठौड़ों को महान् गौरव प्राप्त है। आज भी मेरतिया राठौड़ों के अधिकार में अनुमान 30 लाख वार्षिक आय की भूमि है। परन्तु स्वतन्त्र राजधानी मेड़ता राव जयमल्ल के काम आते ही विनिष्ट हो गई और मुगल साम्राज्य में मिला ली गई। मेड़ता राज्य अजमेर के निकट होने से विनिष्ट हो गया। परन्तु बीकानेर दूर मरुस्थल में होने से आज भी वर्तमान है।

यही संक्षिप्त हमारा वंश परिचय है।

पत्र और यह परिचय लिखने में 3 दिन लगे हैं।

विनित निवेदक

ठा: चतुर सिंह

ता: 5 जनवरी 1940 ई०

पत्रांक ५

रूपाहेली मेवाड़

संवत् 1996 मिति पौष सुद 9

ता: 19-1-1940

परम् पूज्य गुरुवर्य
पुरातन वृत्तपयोनिधि

मुनि महाराज श्री श्री जिनविजय जी की पुनीत सेवा में सादर
प्रणाम ।

अत्रशम् तत्रास्तु । इस वृद्ध शिष्य ने आपकी पवित्र सेवा में निवेदन पत्र लिखा 6-7 दिन के उपरान्त ही “अनेकान्त बिहार” शान्ति नगर पो० सावरमती अहमदाबाद से एक बड़ा रेल्वे पारसल आया । जिसमें बड़ी छोटी 9 पुस्तकें थी । हमने केवल दो या तीन पुस्तकें वी. पी. द्वारा भेजने के लिये निवेदन लिखा था । परन्तु आपने कृपा करके 9 पुस्तकें भेज दी । इस अनुग्रह के निमित्त आपकी सेवा में अनेक धन्यवाद हैं । पुस्तकें मिलने के चार पाँच दिन उपरान्त अब रसीद भेजता हूँ, क्योंकि, मेरा विचार था कि कुछ पुस्तकों को पढ़कर फिर पत्र लिखूँगा परन्तु इसमें अधिक विलम्ब होने के भय से आज ही सेवा में पत्र भेजा है ।

अब तक हमने “प्राचीन गुजरात नी सांस्कृतिक इतिहास नी साधन सामग्री, गुजरातनी इतिहास संशोधन प्रवृत्ति नो इतिहासावलोकन और कुछ भाग प्रबन्ध चिन्तामणि का, अवलोकन किया है । इसमें आपकी रचि हुई उपर्युक्त दोनों गुजराती भाषा की छोटी पुस्तिकाओं की जहां तक प्रशंसा की जावे न्यून है । पुरातत्व संबन्धि ज्ञान की वृद्धि करने वाली ऐसी पुस्तकें हमारे देखने में नहीं आई । प्रस्तनवृत्त के प्रकाण्ड पण्डित पूज्यवर ओभा जी आदि 3-4 विद्वानों की “प्राचीन भारत के इतिहास की सामग्री” नामक छोटी पुस्तकें देखने में आई हैं । परन्तु आपकी इन दोनों प्रतियों की सम्मानता करने वाली एक भी नहीं है ।

आपने बड़ी भारी योग्यता से लिखी है। यदि कोई साधारण पढ़ा हुआ मनुष्य भी उक्त दोनों पुस्तकों को मनोयोग पूर्वक पढ़ेगा तो वह पूर्ण इतिहासवेत्ता हो सकता है। इसलिये आपके चरण कमलों में पुनः धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

आपकी मातृ भूमि वास्तव में राजस्थान (मेवाड़) होने पर भी गुजरात के दत्तक पुत्र होना स्वीकार कर लिया है, यह तो सर्वथा उचित है किन्तु इसके साथ ही भिल्लमाल, आबू पर्वत की संसार प्रसिद्ध अमूल्य निधि विमल शाह तथा वस्तुपाल तेजपाल के मंदिरों को भी जन्मभूमि से छिनकर वर्तमान निवास भूमि गुजरात में ले जाना ठीक नहीं है। क्योंकि किसी प्राचीन काल में उपर्युक्त स्थान गुजरात में अवश्य थे परन्तु अब तो कई शताब्दियों से राजस्थान का बहुमूल्य धन हैं। वास्तव में देखा जावे तो समस्त प्राचीन वस्तुएँ एक भारत वर्ष की ही हैं।

आपकी कृपा से यहाँ सब प्रसन्न हैं, केवल महादुर्भिक्ष का प्रबल प्रकोप है। आपकी भेजी हुई सब पुस्तकों का अक्लोकन करने के पश्चात् फिर पत्र सेवा में अर्पण करूँगा।

यद्यपि साद्यन्त पुस्तकें तो ऊपर लिखी उनको ही देख पाया हूँ, परन्तु हिन्दी भाषा के प्रस्तावना तो प्रायः सभी ग्रंथों का देख लिया है। इसके अतिरिक्त आपकी संस्कृत प्रशस्तियाँ, पूज्यवर देवीहंस जी महाराज तथा मेवाड़ के ग्रंथ समर्पण आदि श्लोक भी सब देख लिये हैं। श्रीमानों ने अपनी जन्मभूमि के साथ इस तुच्छ वृद्ध शरीर का नाम भी अमर कर दिया है। “प्रबन्ध चिन्तामणि” के प्रस्तावना से आपके जीवन चरित्र देशाटन, विद्याभ्यास आदि पर भी पूर्ण प्रकाश पड़ता है। मेरे योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ॥इति॥

श्री मानों का आज्ञाकारी एवं कृपाभिलाषी
ठा: चतुरसिंह वर्मा, रूपाहेली, (मेवाड़)
पो. रूपाहेली।

पत्रांक ६

रूपाहेली (मेवाड़)

ता: २०-१-१९४०

संवत् १९९६ मि. पोष सुद १०

परम् पूज्य गुरुदेव श्री जिनविजय जी मुनि

आपकी भेजी हुई 9 पुस्तकों के पहुँचने की रसीद का पत्र ता: 19 जनवरी को पूर्ण किया ही था कि डेढ़ घन्टे बाद आपका दूसरा कृपा पत्र विस्तृत रूप से फिर मिला इसलिये इसका भी उत्तर संक्षिप्त इसी के साथ भेट किया जाता है। सबसे प्रथम निवेदन तो यह की जाती है कि आपके दोनों कृपा पत्रों में मुझ तुच्छ मनुष्य को पितृतुल्य प्रभृति आदर भूचक शब्द लिखना अनुचित है। क्योंकि आप संसार त्यागी महर्षि होने से जगत् पूज्य हैं। इसलिये समस्त भारतवर्ष आपको गुरुवत् मानती है। फिर मैं कौन वस्तु हूँ, वास्तव में सबके पूज्य पिता तो आप हैं।

आपने 15 दिन अहमदाबाद सिद्धपुर आदि की यात्रा से पत्र विलम्ब से लिखा यह कोई बड़ी बात नहीं है। महान् पुरुषों को देशोपकारी कार्यों से अवकाश बहुत ही कम मिलता है। परन्तु हमको तो सबसे अधिक प्रसन्नता इस बात से हुई है कि आपने अपनी जन्मभूमि को पावन करने तथा हम लोगों को दर्शन देकर कृतार्थ करने की स्वकृति लिख कर दे दी है। फाल्गुन अथवा—चैत्र मास में जब अवकाश मिले तब ही प्रतिज्ञा पूर्ण की जावे, क्योंकि अब आप वचनबद्ध हैं। आशा है कि हमारी इच्छा पूर्ण होगी।

“अठारो” के राजपुत्र, ब्राह्मण, वैश्य बालकों को विद्या दान प्रदान किया उसी प्रकार जन्मभूमि रूपाहेली की भी इच्छा प्रकट की। इस पर निवेदन है कि हमारे 10 पौत्र हैं उनमें से 6-7 का तो विवाह भी हो चुका है। तीन पौत्र मेरे पढ़ने योग्य हैं। उनमें से एक या दो आपकी इच्छा होगी तो सेवा में भेज दिया जावेगा। आपका यहाँ पर शुभागमन

होगा तब उनका अवलोकन करके, जिसकी आज्ञा देंगे उसी को साथ ही भेज दिया जावेगा। ये सब आपकी ही सन्तान हैं।

आपने लिखा है कि जन्मभूमि में हनको पहचान ने वाला कोई रहा नहीं होगा? इस पर निवेदन है कि कम से कम 8-10 पुरुष और इतनी ही स्त्रीयां अब तक भी अवश्य हैं जो आप से परिचित हैं।

मेरी सन्तानों में से दोनों बड़े पुत्र जिन्होंने आपकी सेवा की थी, वे दोनों परलोक वासी हो गये अब हमारा जेष्ठ पौत्र (उत्तराधिकारी) आयुष्मान प्रताप सिंह है। और हमारा तीसरा पुत्र विजय सिंह चौथा अमर सिंह नाम का है। इन चारों पुत्रों की सन्तान श्रेष्ठ है वे सब जब कि आपका शुभागमन होगा तब चरण स्पर्श करके जीवन को सफल करेंगे।

अधिक वृत्तांत आपकी समस्त पुस्तकों को पढ़कर इसके पश्चात् लिखूंगा। यहां पर जब आपका शुभागमन हो तब चार पांच दिन पहले पत्र द्वारा सूचित करें। ताकि सवारी (मोटर) आदि का प्रबन्ध किया जावे।

विनित निवेदक श्री मानों का सेवक

ठा: चतुर सिंह वर्मा

रूपाहेली (मेवाड़)

पत्रांक ७

ठि. रूपाहेली

(मेवाड़)

ता: 2-10-40 ई.

परम् श्रद्धास्पद गुरुवर्य

मुनि महाराज श्री श्री जिनविजय जी के चरणाम्बुजों में सादर प्रणाम।

कृपा-पत्र आपका अहमदाबाद (शान्ति नगर सावरमती) से ता: 29-9-40 का लिखा प्राप्त हुआ, जिससे आपके पुनीत दर्शनों के समान अकथनीय आनन्द हुआ। आपकी दया से हम लोग सपरिवार आनन्द में हैं।

विशेष निवेदन है कि, उदयपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन होने का वृत्तान्त कई मास से सुना जाता है, परन्तु श्रीमानों के सभापति के सर्वोच्च पद पर आसीन होने का शुभ सन्देश समाचार पत्रों द्वारा 15-20 दिन से ही प्रसिद्ध हुआ है। तब से ही उदयपुर पहुँचकर पुनीत दर्शनों की पूर्ण लालसा बढ़ गई थी और दृढ़ विचार भी कर लिया था परन्तु दुर्भाग्य से एक सप्ताह हुआ है कि अधिक वृद्धावस्था के कारण मंदाग्नि, बद्ध कोष्ठ, अनाह आदि कष्ट हो गये, इसलिये विवश होकर ठहरना पड़ा, फिर आपका भी पत्र द्वारा आश्वासन मिल गया कि स्वजन्म भूमि में पदार्पण करके हम लोगों को दर्शनों से कृतार्थ करेंगे, जिससे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका स्वास्थ्य भी ठीक न होने का वृत्तान्त पढ़कर बड़ी चिन्ता हुई है। परमात्मा आपके समान महान् आत्मा को शीघ्र ही स्वास्थ्य सम्पन्न करेंगे।

आपकी आज्ञानुसार हमारे स्वकुटुम्बीजन प्रतिनिधि होकर महा-सम्मेलन में उपस्थित होंगे तथा आपके भी पावन चरण कमल स्पर्श करके विशेष निवेदन करेंगे।

कृपया श्री मान का रूपाहेली पदार्पण हो, जिसके निश्चित समय की आज्ञा चिरायु रघुवीर सिंह आदि को दो दिन प्रथम ही कर दें, ताकि सवारी वगैरा का यहाँ उचित प्रबन्ध कर दिया जावे। शेष कुशलम।

हस्ताक्षर : ठा. चतुर सिंह
रूपाहेली (मेवाड़)

पत्रांक ८

ठिकाना रूपाहेली कलाँ

ता: 14-10-41 ई.

श्री मान परम् पूज्य गुरुदेव मुनि जी महाराज श्री जिनविजय जी की पुनीत सेवा में सादर प्रणाम

अत्र: शम् तत्रास्तु: कृपा पत्र आपका बहुत दिनों के उपरान्त प्रदान हुआ। जिसे पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मेरी तरफ से भी पत्र लिखने की भारी भूल हुई इस अपराध की क्षमा करावें क्योंकि आपके तो अनेक प्रकार के कार्य लगे ही रहते हैं। इसलिये अवकाश मिलना ही कठिन है। मुझे तो सदा अवकाश ही था इससे अधिकतर मेरी ही भूल हुई सो क्षमा करें।

आपने लिखा है कि मेरी जन्मभूमि में एक बार और आने की इच्छा है। इसलिये निवेदन है कि अवश्य ही आप अपने मानसिक विचार की पूर्ति के साथ साथ इस भूमि को भी पवित्र करने की कृपा करावें और यहाँ पदार्पण होने की नियत तिथि की शीघ्र ही सूचना प्राप्त करें कि यहाँ से सवारी आदि का प्रबन्ध ठीक समय पर किया जा सके।

मेरा पौत्र आयुष्यमान भंवर प्रताप सिंह आजकल उदयपुर ही में उपस्थित हैं। उन्हें भी पत्र लिखा गया है सो दर्शनार्थ वह भी वहाँ उपस्थित होयेगा। विशेष वृत्तांत दर्शन होने पर निवेदन किया जायगा। यहाँ आपकी अतुल कृपा से आनन्द मंगल है।

श्रीमानों का दर्शनाभिलाषि

ठा. चतुरसिंह वर्मा

बड़ी रूपाहेली-मेवाड़

पत्रांक ६

ठिकाना : रूपाहेली (मेवाड़)

ता: 18-3-1942

श्री मान् परम् पूज्य मुनि महाराज की पवित्र सेवा में—

करीब 6-7 माह पूर्व आपका यहां पदार्पण हुआ उस समय के दर्शनों से परम् मुग्ध हूँ, तत्पश्चात् कोई पत्र करतलगत नहीं हुआ सो बक्षाय जावे, आशा है आपका शरीर स्वस्थ व आप प्रसन्न हृदय होंगे ।

जोधपुर में होने वाले वार्षिकोत्सव में कई सज्जनों ने आपको सभापति चुनने की प्रार्थनाएँ व अनुरोध किया, लेकिन आपके अस्वीकृत कर देने से वो प्रस्ताव स्थगित हुआ अतएव एक भालावाड़ के पण्डित जी को चुने जाना समाचार पत्रों से विदित हुआ है। अब इस महोत्सव में आपका पधारना हो सकेगा या नहीं ? लिखाया जावे ।

ऋठाणा वाला रामचन्द्र इसकी बहिन की शादी वगैरह के सिलसिले में यहां आया, जिसके जरिये आप के प्रमुखी समाचार पाकर खुशी हुई है। यहाँ आपकी कृपा से सब कुशलता है ।

भवदीय सेवक

ठा. चतुर सिंह

रूपाहेली (मेवाड़)

विशेष टिप्पणी

स्व० ठाकुर साहब श्री चतुर सिंह जी के इन पत्रों के पढ़ने से विज्ञ पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि वे एक कितने अच्छे विद्या विलासी, इतिहास रसिक, सुसंस्कार सेवी और सुचिप्रिय सरदार थे। राजस्थान के सामन्ती सरदारों में उनके जैसा और कोई व्यक्ति हुआ हो ऐसा मुझे ज्ञात नहीं। उनके लिखे पत्रों की भाषा और भावना से यह स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि वे कितने विद्यानुरागी और सदाचरणशील सज्जन पुरुष थे। उनके इन गुणों का जब मुझे विशेष परिचय हुआ तो उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। मैं उनको अपने पिता के तुल्य आदर की भावना से देखने लगा और एक-आध पत्र में मैंने उनको ऐसा लिख भी दिया। इसको पढ़कर उनके मन में जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई उसको उन्होंने अपने पत्रांक नं० ६ में व्यक्त की है।

मेरे लिखे कुछ ऐतिहासिक लेखों को वे कितनी गहराई से पढ़ते थे और उसमें प्रतिपादित नूतन तथ्य आदि के बारे में उनका जो अभिमत बनता था वह भी वे स्पष्ट रूप से मुझे लिख दिया करते थे। गुजरात के चामुण्डराज का जो एक ताम्रपत्र मैंने अपने संपादित 'भारतीय विद्या' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। उसमें गुप्त संवत् और विक्रम संवत् विषयक जो भ्रान्तिजनक उल्लेख मिला और उसके विषय में मैंने जो स्पष्टीकरण किया उसे उन्होंने बहुत ही ध्यानपूर्वक पढ़ा और उस विषय में अपना जो विचार था वह उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा।

ठा० श्री चतुरसिंह जी आर्य संस्कृति के बड़े प्रेमी थे और वे आर्य भाषाशैली संस्कृतनिष्ठहिन्दी भाषा के बहुत पक्षपाती थे। अपनी भाषा में वे विदेशी शब्द प्रयोग करना पसन्द नहीं करते थे। वे सनातन धर्म के प्राचीन विचारों के उपासक थे तथापि महर्षि स्वामी दयानन्द

जी द्वारा प्रतिष्ठित नूतन आर्य समाज के प्रमुख प्रशंसक और समर्थक बन गये थे । मेरे पिताजी भी महर्षि दयानन्द जी के प्रभाव से आर्य समाज के विचारों के अनुयायी से बन गये थे । इसलिये ठाकुर साहब का स्नेह भाव उन पर बराबर बढ़ता रहा । परन्तु पिताजी का देहान्त बहुत पहले हो गया और ठाकुर साहब का जीवन-काल यथेष्ट दीर्घ रहा अतः उनका जीवन क्रमशः प्रगति करता और विकास की दिशा में उत्तरोत्तर बढ़ता गया ।

ठा: चतुरसिंह जी हिन्दी के अच्छे लेखक थे तद्उपरान्त वे संस्कृत भी ठीक-ठीक जानते थे और गुजराती भाषा भी अच्छी तरह पढ़ समझ लेते थे । अंग्रेजी की शिक्षा उन्होंने अजमेर के मेयो कॉलेज में पाई थी और राजस्थान के सरदारों में से सर्व प्रथम मेट्रीक की परीक्षा पास करने वालों में प्रमुख व्यक्ति थे । वे हिन्दी, डींगल और संस्कृत के पद्यों की रचना भी करते थे ।

महात्मा गाँधी जी ने सन् १९२० से देश की स्वतन्त्रता के लिये जो अहिंसक असहयोग आन्दोलन शुरू किया तब ठा: चतुरसिंह जी भी उससे बहुत प्रभावित हुये थे । यद्यपि इसमें किसी प्रकार का प्रत्यक्ष योग दे सकें ऐसी उनकी परिस्थिति नहीं थी तथापि वे इस आन्दोलन के प्रति पूरी सहानुभूति रखते थे । उन्होंने अपने क्षत्रिय बन्धुओं को उद्दिष्ट कर कुछ पद्य लिखे हैं । जिनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप ३-४ पद्य यहाँ उद्धृत करना चाहते हैं—

धर्म जाति बरण, तज ध्यान, भूस्वामी सब भारती ।
मिलकर रचो महान्, सेना अगणित सात्विकी ॥
सविनयऽवज्ञानित, असहयोग अनशन प्रभृति ।
ऐसा युद्ध अजीत, मोहनास्त्र से जय करो ॥
धर्म अहिंसक धार, रोकें कृषि वाणिज्य श्रम ।
निज महि बल अनुसार, जब जनता होवेगा विवश ।
सकल निवेदन सार, परिचय इस पद्यार्द्ध में ।
दुःख भय संकट हार, अजय दुर्ग है एकता ॥

पद्य ३ में जो मोहनास्त्र शब्द का प्रयोग किया है उसमें महात्मा जी के मोहनदास नाम का संकेत गर्भित है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उनके दिल में देश भक्ति के भाव भरे हुए थे।

उन्होंने अपने जीवन काल के अन्तिम वर्षों में अपना एक वसीयत-नामा भी सुन्दर ढंग से लिखा है जो रूपाहेली के वर्तमान ठाकुर साहब से मुझे देखने को मिला। मैं इस वसीयत नामा को पढ़कर बहुत ही मुग्ध और चकित हुआ। यह केवल वसीयतनामा ही नहीं है अपितु इसमें उन ठाकुर साहब के विद्यानुरागी और सदाचारी जीवन का उत्तम रेखा चित्र भी अंकित हुआ है।

इस वसीयतनामों में उनके कुशल व्यावहारिक जीवन के चित्रण के साथ उनके उदात्त धार्मिक विचार एवं आन्तरिक आध्यात्मिक लक्ष्य का भी सुन्दर परिचय मिलता है। इन ठाकुर साहब को पुरावृत्त का भी बहुत शौक था। इसलिये अपने वसीयत नामों के अन्तिम भाग में स्वकीय राठौड़ कुल के पूर्वजों का संक्षिप्त परिचय भी ऐतिहासिक खोज के आधार पर लिख दिया है और अपने जीवन के अन्तिम समय की प्रतीक्षा करते हुये उन्होंने जो भाव प्रकट किये हैं वे बहुत ही मनन करने लायक हैं। हम यहाँ पर उनके लिखे उक्त वसीयतनामा का अन्तिम प्रकरण तद्वत् उद्धृत कर देना चाहते हैं। इससे उनके आन्तरिक विचार और जीवन विषयक कामना का ठीक परिचय मिल सकेगा।

“हमारे पूर्वजों का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखने के उपरान्त स्वयं मेरी (चतुरसिंह की) सूक्ष्मतर घटना का परिचय देकर इस इहलौकिक व्यर्थ कथा की समाप्ति करके इस धृष्ट लेखनी को सदा के लिये विश्राम दूँगा।

विक्रम संवत् १६२० पीप कृष्णा १४ को मेरा जन्म हुआ और वि. सं. १६२६ भाद्रपद कृष्णा १३ को इस ठिकाने का अधिकारी माना गया। जब मेरी आयु पूरी २६ वर्ष की हुई तब जन्म दिन से १० दिन पूर्व उदयपुर में भूल से विष प्रयोग हो गया। जिससे मृत्यु काल की सब

घटना मैंने देखली और दस दिन पश्चात् सं. १६४६ पौष कृष्ण १४ को जन्म दिन पर प्राणी मात्र को मारना त्याग दिया है। हमारी आधुनिक क्षत्रिय जाति में दुर्भाग्य से नाशकारी मदिरा पीते और ३०-३५ जाति के जीवों का मांस खाया जाता है। अतः प्रतिवर्ष जन्म दिन पर एक २ जाति के प्राणी का मांस खाना भी छोड़ता गया और १६७६ के जन्म दिन पर चतुराश्रम धर्मशाला भी पूर्ण हुई थी और मुझको ठिकाने का अधिकारी हुए पूरे ५० वर्ष हो चुके थे जिसको अंग्रेज लोग स्वर्ण (गोल्ड) ज्युबिली कहते हैं।

उक्त अवसर पर मद्य और मांस सदा के लिये त्याग दिया है। इसी प्रकार वि. सं. १६८६ भाद्रपद में ६० वर्ष पूर्ण हुए जिसको योरुप वासी डायमंड ज्युबिली (हीरक ज्युबिली) मानते हैं, उक्त अवसर पर “धर्म वर्धनी सभा” नियत करके नियम बना दिये और इसी दिन ७५१) रु. कलदार देकर उसके सूद से कई पशु पक्षियों के चुगाने का प्रबन्ध कर दिया है। अब सं. १६६५ के भाद्रपद (प्रोष्ट पद) शुक्ला १३ को हमारे समस्त पूर्वजों से अधिक ६७ वाँ वर्ष आरम्भ हो जाने के कारण उपर्युक्त ऐतिहासिक लेख लिखा गया है। मेरा २५ वर्ष से ३) रु. भर चावल और ४०) रु. भर दूध मुद्गयूष के साथ, सात्विक भोजन है।

इस मृत्यु व्यवस्था की पुस्तक में मैंने बहुत कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त संवत् १६६५ के भाद्रपद में लिख दिया है। यह बात वास्तव में सर्वथा अनुचित ही हुई है क्योंकि देश, काल, वंश, जाति और इतिहास का संबन्ध तो केवल इसी देह के जीवनकाल में रहता है। मृत्यु के उपरान्त मेरे इस जीव का न तो राठीड़ वंश से संबन्ध रहेगा, न क्षत्रिय वर्ण से, न मेवाड़ आदि देशों से और न मनुष्य, पशु, पक्षी आदि किसी जाति से संबन्ध रहेगा। यह अविनाशी अजर, अमर जीव कहाँ से तो आया है और अब कहाँ पर जावेगा, यह अज्ञात वृत्तान्त केवल सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर के अतिरिक्त और किसी को भी ज्ञात नहीं है। वही इन सूक्ष्म जीवों को उनके कर्मानुसार सुख दुःख सुगति, दुर्गति प्रदान करता है,

इसलिये मेरा यह पुरावृत लिखना सर्वथा अनुचित है। यह बात जानते हुये भी निम्नोक्त तीन कारणों से मुझको विवश होकर लिखने की धृष्टता करनी पड़ी है। अर्थात्—प्रथम तो, परमात्मा ने मेरी आयु स्वइच्छा से भी कई वर्ष बढ़ा दी जिससे अवकाश मिला। द्वितीय मेरा पुरातत्व विद्या संबन्धी प्रेम आयु पर्यन्त अधिकाधिक बढ़ता रहने से उत्साह मिला और तीसरा मुख्य कारण यह था कि हमारे समस्त पूर्वजों की वंशावली में इस तुच्छ जीव का शासन काल सबसे अधिक अर्थात् ६७ वां वर्ष आरंभ हो गया है।

उक्त कारणों के उत्साह ने इस अल्पज जीव को विवश कर दिया जिससे यह अनुचित ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखना पड़ा है। पूर्ण विश्वास है, विद्वान पाठक—वृन्द मेरी इस अयोग्य धृष्टता के कारणों पर दृष्टीपात करके क्षमा प्रदान करेंगे और क्षमाशील कहुणासिन्धु जगदीश्वर मेरे आन्तरिक भावों को जानने वाले हैं। वे भी मेरी अनुचित धृष्टता पर दया करेंगे। (इत्योम्)

विश्वानि देव सवितुर्दुरितानी परासुवः यद्भद्रं तन्न आसुवः ॥
॥ओम् उद्गीथः प्रणवश्चेति ॥

इत्योश्म इति श्री श्रीमन्नृपति विक्रमादित्योत्पादित कालातीत सम्बत्सरमेकोनविंशतिशतेषु पञ्चनवत्यधिकेषु वर्षे (ईश्वरु रत्नेन्दु हायने) अत्रांकतोऽपि विक्रम् संवत् १६६५ ली० प्रावृत्तश्रुत्वान्तर्गतेः प्रोष्टपद (भाद्रव) मासोत्तमे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ चतुर्दश्यां गुरुवासरे— इति ॥ ओम् उद्गीथः प्रणवश्चेति ॥

स्वहस्ताक्षरोयं लिपिकार परलोक पथिक प्रवासी क्षत्रिय वर्णान्तर्गत् राष्ट्रकूट कुलोद्भव श्रीमान ठाकुर बलवन्तसिंहात्मज ठाकुर चतुरसिंह वर्मा भेदपाट देशान्तर्गत् बृहत्, रुपाहेली सुस्थानेश सामन्त वर्ग स्थिते ।

सुप्रसिद्ध भक्त शिरोमणि मीरां बाई द्वारा पूजित श्री गिरधरगोपाल की मूर्ति की स्थिति के विषय में स्व० ठाकुर श्री चतुरसिंहजी का प्रामाणिक अभिमत—

कुछ समय पहले राजस्थान के कतिपय राजकीय पुरुषों एवं विचारकों के बीच यह प्रश्न चर्चा का विषय हो गया था कि भक्त कवि श्रीमती मीरांबाई श्री गिरधर गोपाल की जिस मूर्ति की उपासना किया करती थी वह मूर्ति अब कहाँ पर है ? परंपरा से चली आई जनश्रुति एवं वृद्धजनों की मान्यता मुताबिक वह मूर्ति उदयपुर के महाराणा साहब के महलों में जो पीताम्बरजी का देवगृह है उसमें विराजमान है और इस मान्यता के अनुसार कुछ सज्जनों का यह प्रयास रहा कि उस मूर्ति को चित्तौड़ के किले में मीरांबाई के मंदिर के नाम से जो मंदिर विद्यमान है और जिसमें कोई देवमूर्ति विराजित नहीं है, उसमें उस गिरधर गोपाल की मूर्ति को लाकर प्रतिष्ठित की जाय । इस विषय में यथेष्ट प्रयत्न किया गया, पर कुछ विचारकों ने किन्हीं अज्ञात कारणों से मूर्ति की वास्तविक स्थिति के बारे में मतभेद खड़ा कर दिया ।

इस विषय में, राजस्थान के इतिहास का एक अभ्यासी होने के नाते हमसे भी कई लोगों ने पूछताछ की और जानकारी चाही । खास करके राजस्थान के स्वर्गवासी, कर्मठ, राजकीय वयोवृद्ध नेता और परम् पुरुषार्थी श्री माणिक्यलालजी वर्मा (जो स्वयं इस हिलचाल के अर्थात् उदयपुर के महाराणा के महलों से गिरधर गोपाल की मूर्ति को, बड़े उत्सव के साथ चित्तौड़ के किले के मीरांबाई वाले मंदिर में स्थापित कराने की प्रवृत्ति के प्रमुख नेता थे) हम से चन्देरिया आश्रम में मिलने आये । हमने अपनी जो कुछ जानकारी इस विषय में था उनको दी । तब उन्होंने हमसे कहा कि, आप अपने ये सब विचार एक पत्र के रूप में हमें लिख भेजें, जिससे हम इसको देशव्यापी प्रसिद्धि का रूप दे दें और लोगों को वास्तविक तथ्य का ज्ञान हो जाय । तदनुसार हमने स्वर्गीय श्री वर्मा जी को उद्दिष्ट करके जो पत्र लिखा

था वह यहाँ उदृत किया जाता है। इस पत्र से ज्ञात होगा कि उक्त गिरधर गोपाल की मूर्ति के बारे में हमें विशिष्ट ज्ञातव्य स्व० श्री ठाकुर चतुरसिंहजी से ही प्राप्त हुआ था। चूं कि ठा. श्री चतुरसिंहजी स्वयं मेड़तिया राठीड़ों के मुख्य वंशजों में से थे और दूसरी बात यह कि वे अपने पूर्वजों के बारे में ऐतिहासिक दृष्टी से तथ्य प्राप्त करने सदा तत्पर रहते थे।

मीरांबाई की उपास्य देवता मूर्ति के बारे में हमको जो तथ्य उक्त ठाकुर साहब से ज्ञात हुए वे संक्षेप में नीचे दिये गये पत्र में उल्लिखित हैं—

सर्वोदय साधना आश्रम
पो० चन्देरिया
चित्तौड़गढ़ (राज०)
दिनांक २४-७-६७

प्रिय श्री वर्मा जी

कुछ दिनों पहले आप तथा श्रीमान् डेबर भाई चन्देरिया पधारे थे, तब आपने जिक्र किया था कि उदयपुर में महाराणा सा० के महलों में भक्त शिरोमणी मीरां बाई द्वारा पूजित तथा इष्टदेव के रूप में उपासित भगवान् स्वरूप श्री गिरधर गोपालजी की मूर्ति सुरक्षित है। उस भगवत् मूर्ति को चित्तौड़ के इतिहास प्रसिद्ध किले में मीरां बाई द्वारा बनाये गये देव मन्दिर में पुनः स्थापित करने का जो आप तथा ठाकुर साहब श्री लालसिंहजी शक्तावत द्वारा महत् प्रयत्न हो रहा है, उसे जानकर मुझे बहुत हर्ष और आनन्द हुआ है।

आपने इस शुभ कार्य में मेरी जो भी सेवा लेने की इच्छा प्रदर्शित की है, मैं उसके लिये आपका बहुत आभारी हूँ और जो कुछ सेवा मुझ से हो सकेगी उसे देने में मैं अपने आपको धन्य समझूँगा। इस सिलसिले में अभी दो दिन पहले श्री ठाकुर साहब लालसिंहजी भी यहाँ चन्देरिया पधारे थे और उनसे इस विषय की सारी जानकारी विशेष रूप से प्राप्त हुई है।

भगवत् गिरधर गोपालजी की मूर्ति के विषय में श्री लालसिंहजी ने जो जानकारी दी है, मैं अपने अनुसंधान के द्वारा भी उन्हीं तथ्यों को मान रहा हूँ ।

मैंने स्वयं बहुत वर्षों से भक्त शिरोमणी मीराबाई के जीवन का और उनके रचित पदों आदि का अध्ययन और अनुसंधान चालू कर रक्खा है । मीराबाई के जीवन और साहित्य के विषय में जयपुर के सुप्रसिद्ध राजपुरोहित स्व० श्री हरिनारायणजी ने बहुत परिश्रम करके मीरा के विषय में बहुत सामग्री संकलित कर रक्खी थी । मीरा के पदों का एक प्रमाणिक संकलन वे स्वयं प्रकाशित करना चाहते थे परन्तु उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण वे अपने जीवन में इस महत्वपूर्ण कार्य को प्रकाश में न ला सके । प्रसंगानुसार मुझे जयपुर में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के मूल संस्थापक एवं अध्यक्ष के रूप में रहते हुये पुरोहित श्री हरिनारायणजी की उक्त सब सामग्री को देखने का सौभाग्य मिला । उनके सुपुत्रों ने यह इच्छा व्यक्त की, कि किसी तरह पुरोहितजी द्वारा संकलित सामग्री प्रकाश में लाई जाय तो बहुत अच्छा होगा । तदनुसार मैंने स्वयं उस सामग्री का संकलन एवं सम्पादन करना स्वीकृत किया और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा उसे प्रकाशित करने का भी आयोजन किया गया । वह सब सामग्री तैयार हो चुकी है और थोड़े ही समय में उसे प्रकाश में रख देने का मेरा प्रयत्न चालू है ।

पुरोहित श्री हरिनारायणजी ने रूपाहेली निवासी स्वर्गीय ठाकुर श्री चतुरसिंहजी के साथ विशेष पत्रव्यवहार भी किया था, क्योंकि रूपाहेली का ठिकाना मेड़तिया राठौड़ों के सीधे वंश में है और स्व० ठाकुर श्री चतुरसिंहजी अपने घराने के इतिहास का अनुसंधान करने में बड़ी रुचि रखते थे और इस विषय में उन्होंने “चतुर कुल चरित्र” नामक अपने ठिकाने का इतिहास भी संकलित कर प्रकाशित करवाया था ।

चूँकि वे मेड़तिया राठौड़ों के मुख्य वंशज हैं इसलिये उनके घराने में मीरांबाई के विषय की प्राचीन परम्परागत बातें अक्सर चली आई थी। इसलिये मैं जब उदयपुर में सर्वप्रथम होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में आया था, तब वापस लौटते हुये ठाकुर चतुरसिंहजी का बहुत आग्रह होने से उनसे मिलने रूपाहेली गया था, तब प्रसंगवश उनके घराने में मीरांबाई की जीवन कथा के विषय में परम्परागत जो बातें चली चली आई थी उनकी भी उन्होंने बहुत जानकारी दी, और मैंने कुछ उसके नोट्स भी लिये।

ठाकुर चतुरसिंहजी के साथ जो बहुत सी बातें हुई उनमें मीरांबाई द्वारा पूजित गिरधर गोपाल की मूर्ति का भी विशेष रूप से जिक्र हुआ। इसके पहले मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि मीरांबाई द्वारा पूजित वह मूर्ति कहाँ विराजमान है। इसके पूर्व चित्तौड़ किले पर स्थित मीरांबाई के मन्दिर का मैंने अपनी दृष्टि से अवलोकन किया था परन्तु उस समय उसमें कोई मूर्ति विराजमान नहीं थी। इस प्रसंग को लेकर स्व० ठाकुर श्री चतुरसिंहजी ने मुझ से कहा कि, मीरांबाई जब चित्तौड़गढ़ छोड़ कर तीर्थयात्रा के लिये निकली और मेड़ता होकर वृन्दावन गई तब वह मूर्ति उनके साथ थी और वृन्दावन में उन्होंने कई वर्ष व्यतीत किये, गिरधर गोपाल की मूर्ति के सम्मुख ही वह सदैव अपनी भक्ति एवं उपासना करने में तल्लीन रहती थी। वहीं उन्होंने भगवान गिरधर गोपाल के प्रतीक सम्मान उस देवता मूर्ति को लक्ष्य कर अपने सब पद व भजन बनाये। वृद्धावस्था अधिक होने के कारण मीरांबाई की अंतिम इच्छा हुई कि भगवान श्री कृष्ण का पार्थिव विलय जिस सौराष्ट्र के द्वारका नामक स्थान में हुआ है, मैं भी उसी स्थान में वहाँ पर विराजमान भगवान श्रीकृष्ण के प्रतीक रणछोड़ राय जी के मूर्तस्वरूप के सानिध्य में मेरे पार्थिव रूप का भी विलय करूँ तो उत्तम होगा।

अतः मीरा बाई वृन्दावन का प्रवास करती हुई द्वारका पहुँची और वहाँ पर रणछोड़ राय जी के मंदिर में अपनी सदैव की उपास्य

मूर्ति गिरधर गोपाल जी को भी स्थापित कर वहाँ पर सतत् भजन कीर्तन किया करती थी। इन्हीं वर्षों में महाराणा उदयसिंह जी ने जब अपनी नई राजधानी उदयपुर बसाई तब अपने बड़े भाई भोजराज जी की विधवा पत्नी, जो कि अपनी भक्ति और उपासना के कारण सारे भारतवर्ष में बहुत बड़ी भक्तिमती महासाध्वी के रूप में प्रसिद्ध हो गई थी और जिनके कारण मेवाड़ का राजघराना भी लोगों की दृष्टि में अधिक आदरणीय और सम्मानीय हो रहा था, महाराणा ने मीरांबाई को अपनी नवीन राजधानी में पधारने का बहुत आग्रह पूर्वक आमन्त्रण भेजा। कई दिनों तक बड़े दरबारी लोग उनके लिये द्वारका में डेरा डाले रहे और बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक मीरांबाई को आग्रह करते रहे कि अब आप वृद्धावस्था के इन अन्तिम दिनों में मेवाड़ के राजकुल को अलंकृत करने के लिये उदयपुर पधारें, परंतु मीरांबाई को कुछ आभास हो रहा था कि अब यह पार्थिव शरीर अधिक दिनों तक नहीं रहने वाला है इसलिये श्री रणछोड़राय जी की शरण में ही विलीन होना अभिष्ट है। कुछ ही समय बाद मीरांबाई रणछोड़राय जी के मंदिर में जहाँ पर उनके सदैव उपासनीय गिरधर गोपाल विराजमान थे, भगवान की उपासना करते करते अन्तर्ध्यान हो गई।

इसके समाचार जब महाराणा ने सुने तो उन्हें बड़ा खेद हुआ और कई दिन राजघराने में शोक मनाया गया। बाद में महाराणा साहब ने अपने जिन दरबारियों को मीरांबाई को लेने द्वारका भेजा था, उन्हें आदेश दिया कि वे अब मीरांबाई द्वारा पूजित गिरधर गोपाल को बड़े राजकीय लवाजमें के साथ उदयपुर ले आवें। तब आदेशानुसार भगवान गिरधर गोपाल की वह मूर्ति उदयपुर लाई गई और महाराणा ने विधि पूर्वक गिरधर गोपाल को अपने राजघराने के मुख्य देवता पिताम्बरराय जी के सानिध्य में स्थापित करवाया।

तब से ही वह मूर्ति अब तक उदयपुर के राजमहलों में पूजित हो रही है। इस मूर्ति का उल्लेख स्वर्गीय महाराणा स्वरूपसिंह जी ने जब अपने राजघराने के देवताओं की यादी (रेकॉर्ड) तैयार करवाई तब इस यादी में इस मूर्ति का उल्लेख किया गया था और उदयपुर राजवंश के पिताम्बरराय जी की सेवा पूजा करने वाले जो मुख्य ब्राह्मण कुल है उनके वंशज आज भी उदयपुर में विद्यमान हैं और उनके पूर्वज सदैव पिताम्बरराय जी एवं गिरधर गोपाल की पूजा सेवा आदि करते रहे हैं।

यह उपरोक्त जानकारी मुझे सर्वप्रथम स्वर्गस्थ ठा० चतुरसिंहजी से २८ वर्ष पहले हुई थी और इसी जानकारी का समर्थन ठा० श्री लालसिंह जी द्वारा अब प्राप्त हो रहा है। अतः इससे यह निश्चय होता है कि मीरां बाई द्वारा पूजित गिरधर गोपाल की वास्तविक मूर्ति उदयपुर के राजमहलों में विराजमान हैं।

अब इस भगवत् मूर्ति को पुनः चित्तौड़ गढ़ में लाकर उसी मीरा बाई के प्राचीन एवं मूल मंदिर में स्थापित करने का जो शुभ प्रयत्न किया जा रहा है वह केवल उदयपुर के राजवंश के लिये ही नहीं परंतु सारे राजस्थान एवं सम्पूर्ण भारतवर्ष की धार्मिक जनता के लिये बहुत ही आनन्द और हर्ष का प्रसंग होना चाहिये और इस कार्य में सभी देशवासियों को यथाशक्ति सहयोग देना चाहिये।

निवेदक,

मुनि जिनविजय

पुरातत्वाचार्य

आनरेरी डायरेक्टर प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान

राजस्थान सरकार, जोधपुर



